इकाई-1 जनसंख्या
(Population)

1.1प्रस्तावना (Introduction)
1.2उद्देश्य (Objectives)
1.3जनसंख्या एवं आर्थिक विकास (Population and Economic Development)
1.3.1जनसंख्या का आर्थिक विकास पर प्रभाव (Impact of Population on Economic Development)
1.3.1.1जनसंख्या के आकार का प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव (Effect of Population Size on Per Capita Income)
1.3.1.2जनसंख्या में वृद्धि दर का प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव (Effect of Population Growth Rate on Per Capita Income)
1.3.1.3जनसंख्या और पूंजी निर्माण (Population and Capital Formation)
1.3.1.4मानवीय संसाधनों का आर्थिक विकास में उपयोग (Use of Human Resources in Economic Development)
1.3.1.4.1 रेगनर नर्क्स की विचारधारा (Ideology of Ragnar Nurkse)
1.3.1.4.2आर्थर लुईस की विचारधारा (Ideology of Arthur Lewis)
1.3.1.4.3प्रो. लैबिन्स्टीन की विचारधारा (Ideology of Prof. Leibenstein)
1.3.1.4.4जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धान्त (Theory of Demographic Transition)
1.3.1.4.5भारत में जनसंख्या का आकार और वृद्धि दर (Population Size and Growth Rate in India)
1.3.2आर्थिक विकास का जनसंख्या पर प्रभाव (Effect of Economic Development on Population)
1.3.2.1जनसंख्या और राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दर (Population and Growth Rate of National and Per Capita Income)
1.3.2.2जनसंख्या और खाद्य संभरण (Population and Food Supply)
1.3.2.3जनसंख्या और बेरोजगारी (Population and Unemployment)
1.3.2.4जनसंख्या और शिक्षा , डाक्टरी सहायता तथा आवास का भाग (Population and Share of Education, Medical Aid and Housing)
1.3.2.5जनसंख्या वृद्धि और पूंजी निर्माण (Population Growth and Capital Formation)
1.4जनसंख्या नीति (Population Policy)
1.4.1आपात काल के दौरान जनसंख्या नीति (Population Policy during Emergency)
1.4.2राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (National Population Policy)
1.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1.6सारांश(Summary)

1.7 शब्दावली(Glossary)

1.8 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

1.9 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

1.10 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

1.11निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी देश के लिए उसकी जनसंख्या उसके आर्थिक विकास का 'साधन' तथा 'साध्य' दोनों होती है। समस्त उत्पादन का मूल साधन मनुष्य ही है। वही अपनी शारीरिक और बौद्धिक शक्ति तथा भौतिक साधनों का प्रयोग करके, नई रीतियों और प्रक्रियाओं की खोज करके, उत्पादन की प्रक्रिया को जन्म देता है और आर्थिक विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। मानव ही सभी साधनों को जुटा कर उन्हें समन्वित करता है और सेवा तथा माल में परिवर्तन करके राष्ट्रीय धन के अधिकाधिक उत्पादन में सहायक बनता है। किसी देश के प्राकतिक साधन अत्यंत ही पर्याप्त हों, तो भी वह देश गरीब ही रह सकता है, यदि उसके जनसमूह पर्याप्त एवं कार्य-कुशल न हों।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझ सकेंगें:

- जनसंख्या और आर्थिक विकास में अंतर्सबंध ।
- कुल जनसंख्या का प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव ।
- मानवीय संसाधनों का आर्थिक विकास में महत्त्व
- मानवीय संसाधनों का आर्थिक विकास में उपयोग।
- आर्थिक विकास में जनसंख्या का योगदान ।
- आर्थिक विकास की प्रक्रिया में मानवीय संसाधन के कार्यों का संपादन।।

1.3 जनसंख्या एवं आर्थिक विकास (Population and Economic Development

जनसंख्या और आर्थिक विकास में घनिष्ठ अंतर्सबंध है। इनके अंतर्सबंधों को हम निम्नलिखित दो शीर्षकों के अंतर्गत अध्ययन कर सकते हैं:

1. जनसंख्या का आर्थिक विकास पर प्रभाव
2. आर्थिक विकास का जनसंख्या पर प्रभाव

1.3.1जनसंख्या का आर्थिक विकास पर प्रभाव (Impact of Population on Economic Development)

साधारणतया आर्थिक विकास की माप राष्ट्रीय आय के संदर्भ में की जाती हैं , परंतु राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास के स्तर उचित संकेतक नहीं है , क्योंकि इसमें जनसंख्या संबंधी पहलू पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से यह संभव है कि जनसमूह की निर्धनता बढ़ जाये। ऐसा उस समय होता है जब जनसंख्या में वृद्धि की गति राष्ट्रीय आय में वृद्धि की गति से अधिक तेजी से होती है। अतः आर्थिक विकास की माप अधिक अच्छा निर्देशांक प्रति व्यक्ति आय है, जो कि कुल राष्ट्रीय आय की जनसंख्या से भाग देने से प्राप्त होती है।

प्रति व्यक्ति आय=(सकल राष्ट्रीय आय)/(जनसंख्या)

यदि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती जाती है , तो इसका अभिप्राय यह है कि देश का आर्थिक विकास होता जा रहा हैं। अतः जनसंख्या के प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन के द्वारा हम यह जान सकते हैं कि जनसंख्या आर्थिक विकास को किस प्रकार प्रभावित कर रही है। जनसंख्या के प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से विश्लेषण कर सकते हैं:

1.3.1.1 जनसंख्या के आकार का प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव (Effect of Population Size on Per Capita Income):-

कुल जनसंख्या का प्रति व्यक्ति आय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता हैं। यदि देश विशेष की जनसंख्या यथास्थिर रहती है, तो राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ साथ प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती जाएगी। यदि जनसंख्या के आकार में वृद्धि होती है, तो हो सकता है कुल राष्ट्रीय आय बढ़ने पर प्रति व्यक्ति आय समान रहे या कम हो जाये। इस तथ्य को तीन काल्पनिक अर्थव्यवस्थाओं में निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है:

सारणी 1: जनसंख्या आकार का प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव

सन् 1994 सन् 2004

जनसंख्या(करोड में) । कुल वास्तविक (आय करोड़ (रू0 में) प्रति व्यक्ति आय(रू 0 में) जनसंख्या(करोड में) । कुलवास्तविक (आय करोड़ (रू 0 में) प्रति व्यक्ति आय(रू 0 में)

A30	3000	100	36	4200	120
B45	5400	120	48	5760	120
C60	8400	140	75	9750	130

ऊपर के उदाहरण में A, B और C तीनों ही अर्थव्यवस्थाओं में सन् 1994 की कुल राष्ट्रीय आय सन् 2004 की आय से अधिक है, परंतु जनसंख्या में वृद्धि हो जाने के कारण A अर्थव्यवस्था में प्रति व्यक्ति आय बढी है. B में स्थिर रही है और C में घटी है। अतः अर्थव्यवस्था A की प्रगति ऊपर चढ़ रही है , अर्थव्यवस्था B स्थैतिक है, और अर्थव्यवस्था C की प्रगति नीचे गिर रही है। अतः जनंसख्या के आकार का प्रति व्यक्ति आय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या में वृद्धि के कारण ही अर्द्धविकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की अपेक्षा कम बनी रहती है। सारणी 2 के अंको से स्पष्ट होती है कि यद्यपि अर्द्धविकसित देश और विकसित देश दोनों में वार्षिक राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर समान रहती है , परन्तु अर्द्धविकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि की दर तीव्र रहने के कारण प्रति व्यक्ति आय न्यून बनी रहती है।

सारणी 2: जनसंख्या और आय का विकास-विकास की औसत वार्षिक प्रतिशत दरें

	विकसित देश	अर्द्धविकसित देश
कुल आय	4.4	4.0
जनसंख्या	1.3	2.6
प्रति व्यक्ति आय	3.1	1.5

इस संदर्भ में सर्वोत्तम जनसंख्या के सिद्धान्त की चर्चा उपयुक्त होगी। सर्वोत्तम जनसंख्या की धारणा जनसंख्या के उस आकार (मात्रा) को बताती है , जिससे किसी देश का एक समय विशेष पर प्राकृतिक साधनों का समुचित दोहन हो सके, जिससे प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है।

अतः सर्वोत्तम जनसंख्या वह जनसंख्या है , जो प्रति व्यक्ति अधिकतम आय देती है। चित्र में जनसंख्या वक्र पर बिंदु सर्वोत्तम जनसंख्या का सूचक है, क्योंकि इस 'P' बिंदु पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम है।

आदर्श जनसंख्या के बिंदु से कोई भी विचलन जनाभाव या जनाधिक्य को बताता है। यदि देश की जनसंख्या आदर्श (सर्वोत्तम) जनसंख्या से कम है , तो यह 'जनाभाव' कहलाता है और इस जनाभाव को दूर करने के लिए जनसंख्या में वृद्धि वांछनीय होती है। जब वास्तविक जनसंख्या आदर्श जनसंख्या से अधिक हो जाती है , तब

दोनों का अंतर जनाधिक्य कहलाता है और इस जनाधिक्य को दर करने के लिए जनसंख्या में कमी वांछनीय होती है।
सर्वोत्तम जनसंख्या से वास्तविक जनसंख्या की कमी या अधिकता को कुसमंजन करते हैं, जो निम्नलिखित सूत्र से जाना जाता है:

अनुकूलतमजनसंख्या (M)=(वास्तविक जनसंख्या (A)-आदर्श जनसंख्या(O))/(आदर्श जनसंख्या (O))

परंतु यह सिद्धांन व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि यह इस धारणा पर आधारित है कि 'सर्वोत्तम जनसंख्या' पहले से ही ज्ञात रहती है , जो कि वास्तव में मालूम नहीं रहती। इस 'आकस्मिक और प्रतिक्षण परिवर्तनीय संसार में वस्तुतः अनुकूलतम जनसंख्या की खोज मृगतृष्णा की भाँति है, जो कि हमेशा हमारी समझ को छल करके निकल जाती है। पुनः ऐसा प्रतीत होता है कि यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि प्रति व्यक्ति आय या उत्पादन जनसंख्या के आकार पर निर्भर रहता है , जनसंख्या के प्रकार पर नहीं। यदि देश की जनसंख्या में अपेक्षित गुणों का अभाव होगा , तो भी उस देश की प्रति व्यक्ति आय अधिकतम नहीं हो सकती। किसी देश के विकास के लिए स्वस्थ, शिक्षित बुद्धिमान तथा उच्च नैतिक स्तर की जनसंख्या का होना भी अति आवश्यक है।

1.3.1.2जनसंख्या में वृद्धि दर का प्रति व्यक्ति आय पर प्रभाव(Effect of Population Growth Rate on Per Capita Income) :-

यदि जनसंख्या के विकास की दर अधिक है , तो प्रति व्यक्ति आय के विद्यमान स्तर को बनाए रखने के लिए अधिक पूंजी अथवा विनियोग की आवश्यकता पड़ेगी। उदाहरणार्थ , कल्पना कीजिए कि A देश में जनसंख्या की वृद्धि प्रतिवर्ष 1 प्रतिशत की दर से होती है और B देश में 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से। अब यदि यह मान लें कि दोनों देशों में पूंजी-उत्पादन अनुपात 3 : 1 हैं इसका अर्थ है उत्पादन की एक इकाई वृद्धि के लिए 3 इकाई पूंजी आवश्यक है, तो A देश को अपनी प्रति व्यक्ति आय को बनाए रखने के लिए चालू उत्पादन का 3 प्रतिशत भाग विनियोग मे लगाना होगा, जबकि B देश को 9 प्रतिशत। अगर B देश अपने चालू उत्पादन का इतना भाग

विनियोग नहीं कर सकता , तो इसका अर्थ यह है कि वहां देश के निवासियों की प्रति व्यक्ति आय में कमी आ जाएगी। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने के लिए शीघ्र बढ़ने वाली जनसंख्या की तुलना में अधिक विनियोग की आवश्यकता होती है। इस तथ्य को हम एक संख्यात्मक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर सकते है।

मान लीजिए : जनसंख्या की वृद्धि दर = 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष

पूंजी निर्माण की दर = 6 प्रतिशत (वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन का अंश)

पूंजी उत्पादन अनुपात = 3 : 1

ऐसी परिस्थिति में वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन में वार्षिक वृद्धि दर 2 प्रतिशत होगी, क्योंकि प्रति 100 इकाइयों में 6 इकाइयां पूंजीगत वस्तुओं की होंगी (क्योंकि पंजी निर्माण की दर 6 प्रतिशत है)। पूंजी की प्रति तीन इकाइयों से उत्पादन में 1 इकाई की वृद्धि फलित होगी। अतः पूंजी की 6 अतिरिक्त इाकइयों के कारण उत्पादन में 2 इकाइयों की अतिरिक्त वृद्धि होगी। इस प्रकार हमारे वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन में वार्षिक वृद्धि 2 प्रतिशत से होगी और चूंकि जनसंख्या भी इसी गति से बढ़ रही है , इसलिए जीवन स्तर में कोई सुधार न होगा। आर्थिक विकास होगा, परंतु प्रति व्यक्ति आय पूर्ववत् ही रहेगी। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि तभी संभव है जब पूंजी निर्माण की दर 6 प्रतिशत से अधिक हो।

प्रो. नर्क्स ने जनसंख्या में वृद्धि के प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव को बड़े सुंदर ढंग से इस प्रकार समझाया है: “यदि किसी अर्थव्यवस्था में जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती , तो वह अपनी अतिरिक्त पूँजी (पूँजी-निर्माण) को विद्यमान श्रमिकों को अच्छे उपकरण , मशीनें, शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्रदान करने में प्रयुक्त करेगी। इसे गहन विनियोग कहते हैं। इससे न केवल राष्ट्रीय आय बढ़ेगी , बल्कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होगी। पर यदि जनसंख्या बढ़ेती जाती है, तो समस्त अतिरिक्त पूंजी अथवा इसका कुछ अंश अतिरिक्त श्रमिकों (जो जनसंख्या में वृद्धि के कारण फलित होंगे) को वर्तमान उपकरणों को उपलब्ध कराने में लगाना पड़ेगा। अधिक श्रमिकों को चालू प्रकार के उपकरण उपलब्ध कराना विस्तीर्ण विनियोग कहलाता है। अतः यदि जनसंख्या में वृद्धि इतनी तेज है कि समस्त अतिरिक्त श्रमिकों को वर्तमान उपकरणों को उपलब्ध कराने मे ही लग जाती है , तो राष्ट्रीय आय बढ़ेगी, परंतु प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ेगी।'

इस प्रकार जनसंख्या में वृद्धि दो तरह से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। एक तो यह अतिरिक्त पूंजी के उस अंश को हड़प लेती है , जिसे विद्यमान जनसंख्या की सज्जा सुधारने (अर्थात् उन्हें अच्छे उपकरण , मशीनें, शिक्षा आदि उपलब्ध कराना) में प्रयुक्त होता है , और दूसरी ओर शेष पूजी को अधिक श्रमिको को उपकरण उपलब्ध कराने में लगाना पडता है। इस दष्टिकोण से जनसंख्या में प्रत्येक वद्धि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर को कम करती है। एक अनुमान के अनुसार विभिन्न देशों को अपने राष्ट्रीय उत्पादन का निम्नलिखित प्रतिशत अपनी वर्तमान आय बनाने के लिए विनियोजित करना पड़ता है:

सारणी 3 : विभिन्न देशों द्वारा अपने राष्ट्रीय उत्पादन का अपनी वर्तमान आय में किया गया विनियोग

कुल राष्ट्रीय उत्पादन का भाग	देश
10 प्रतिशत से अधिक	कोलम्बिया , भारत, ब्राजील, घाना, ट्यूनीशिया
7.5-10 प्रतिशत	मलेशिया, पेरू, संयुक्त गणतंत्र अरब, थाईलैण्ड, मैक्सिको
5-7.5 प्रतिशत	फिलीपाइंस , टर्की

5 प्रतिशत से कम सूडान , पाकिस्तान, नाइजीरिया, इंडोनेशिया, चाइल,यूथोपिया, अमरीका, नार्वे, फ्रांस, स्वीडन, डेनमार्क, पूर्व पश्चिमीजर्मनी, इटली, ब्रिटेन, बेलिजयम, ग्रीस, पुर्तगाल।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या प्रति व्यक्ति आय को कम कर देती है। पूंजी निर्माण की गति को तीव्र करके और प्राविधिक विकास द्वारा प्रति व्यक्ति आय को गिरने से रोका जा सकता है , परंतु अंततः उत्पत्ति ह्रास-नियम क्रियाशील हो जाएगा और प्रति व्यक्ति आय घटने लगेगी। कारण यह है कि उत्पादन विभिन्न उत्पत्ति के साधनों (जैसे-भूमि , श्रम, पूंजी आदि) के संयोग से किया जाता है।

अतः यदि देश में जनसंख्या बढ़ती जाती है, तो श्रम अन्य उत्पत्ति के साधनों अर्थात् भूमि तथा पूंजी की अपेक्षा बहुत अधिक हो जात है। परिणामस्वरूप कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है। इसका अर्थ यह है कि भूमि, श्रम एवं पूंजी के बीच प्रतिस्थापन की लोच असीमित नहीं है- भूमि को स्थिर रखकर श्रम एवं पूंजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग एक सीमा तक ही किया जा सकता है। यदि ऐसा नहीं होता, तो भूमि के एक टुकड़े पर ही श्रम एवं पूंजी की अधिकाधिक इकाइयों के प्रयोग द्वारा हम संपूर्ण विश्व की जनसंख्या के भोजन के लिए खाद्यान्न उपजा सकते थे और भूमि के बदले में पूंजी तथा श्रम की इकाइयों को लगाकर गगनचुम्बी इमारत बनाकर आश्रय प्रदान कर सकते थे, किन्तु ऐसा संभव नहीं है। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अर्थव्यवस्था में उत्पादन ह्रास नियम लागू होने लगता है।

कीन्सियन अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि दीर्घकालीन गतिरोध से बचने के लिए जनसंख्या का तीव्र विकास दर लाभकारी है, क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या वस्तुओं और सेवाओं के प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि करेगी और उसके द्वारा पूंजी की सीमांत उत्पादकता में वृद्धि होगी , पूंजी की सीमांत उत्पादकता अर्थात् भावी आय में वृद्धि के कारण अधिक से अधिक पूंजी निर्माण एवं पूंजी विनियोजन के लिए प्रोत्साहन प्राप्त होगा। फलतः रोजगार उत्पादन और आय में वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त बढ़ती हुई जनसंख्या उद्योग के वर्तमान क्षमता के शोषण में भी सहायक होती है, परंतु यह तर्क विकसित देशों के संदर्भ में ही ठीक है। परंतु जहां भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों का प्रश्न है , बढ़ती हुई जनसंख्या पूंजी निर्माण के लिए हानिकारक सिद्ध होगी , क्योंकि वहां मांग की समस्या नहीं है, बल्कि उत्पादन के साधनों के अभाव की समस्या है और इसलिए उनके वृद्धि करने की समस्या है। अतः अद्धविकसित देशों में अधिक उपभोग नहीं , वरन् अधिक बचत को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। अधिक बचत के लिए अधिक आय , कम व्यय और कम जनसंख्या आवश्यक है। अन्य शब्दों में , "अधिकांश व विकासोन्मुख देश घने बसे हुए है और बढ़ती हुई जनसंख्या वहां के आर्थिक विकास में न केवल प्रति व्यक्ति आय में कमी लाती है बल्कि निम्नलिखित रूपों में भी बाधक होती है।

ज्ञानचन्द्र के अनुसार, "1900 ई0 से 1934 ई0 के बीच देश की जनसंख्या में 21 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, जबकि कृषि की जाने वाली भूमि के क्षेत्र में केवल 11 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई।"श्री 0 पी0 के0 वत्तल के अनुसार "1913-14 से 1934-35 के बीच जनसंख्या में प्रायः प्रति वर्ष औसत रूप से 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई, किन्तु खाद्यान्नों के उत्पादन में केवल 0.65 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई। भारतीय योजना आयोग के शब्दों में , "हमारी खाद्य समस्या का प्रमुख कारण खाद्यान्न की मांग तथा पूर्ति का तत्कालीन असंतुलन नहीं , वरन् देश में खाद्यान्न की तुलना में जनसंख्या में निरंतर अत्यधिक वृद्धि है।"

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अर्द्धविकसित देशों में प्रति व्यक्ति कृषि क्षेत्र क्रमशः कम होता जाता है। खाद्यान्न की मांग की लोच अधिक होने के कारण आय में यदि कोई वृद्धि होती है , तो खाद्यान्न की मांग बढ़ती जाती है। फलतः विदेशों से भारी मात्रा में खाद्यान्न आयात करने में सीमित विदेशी विनिमय खर्च करना पड़ता है। यदि विदेशों से खाद्यान्न न आयात करना पड़ता , तो अर्द्धविकसित देश इसी विदेशी विनिमय से आर्थिक विकास के लिए आवश्यक मशीनों तथा अन्य पूंजीगत सामग्री को विदेशों से मांगकर अपने विकास की गति तीव्र कर सकते थे। अतः अत्यधिक जनसंख्या मशीनों को खाद्यान्न उपलब्ध कराने में देश की पूंजी का एक बड़ा भाग उत्पादन कार्यों में प्रयुक्त नहीं हो पाता और स्वभावतः विकास की गति अवरूद्ध हो जाती है।

1.3.1.3 जनसंख्या और पूंजी निर्माण(Population and Capital Formation):

पूंजी निर्माण का अर्थ है-संपत्ति का सृजन। यदि किसी देश के लोग एक वर्ष मे जितना धन उत्पन्न करते है तथा उस सबका उपभोग कर डालते है, तो वहां उस वर्ष में पूंजी निर्माण नहीं होगा। अतः पूंजी निर्माण के लिए बचत आवश्यक है और उस बचत का पूंजीगत वस्तुओं अर्थात् कारखानों , मशीनों, उपकरणों, बांध, सड़को, रेल, संदेशवाहन के साधन और शक्ति आदि के निर्माण मे विनियोजन आवश्यक है। प्रो. नर्क्स के शब्दों में , "आर्थिक विकास की प्रक्रिया का तात्पर्य वर्तमान समाज के उपलब्ध साधनों के कुछ भाग को पूंजीगत वस्तुओं के कोष में वृद्धि के लिए लगाना है, जिससे कि भाविष्य में उपभोग की वस्तुओं का विस्तार संभव हो सके।"

अद्धविकसित देशों जैसे- भारत में तेजी से बढ़ने वाली जनसंख्या पंजी निर्माण के लिए हानिकारक होती है , क्योंकि उच्च जन्म दर तथा अति जनसंख्या का अर्थ है-बढ़ता हुआ उपभोग। तेजी से जनसंख्या बढ़ने वाले देश में उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होगी। प्रति व्यक्ति उपभोग स्थिर रहने पर भी देश में कुल उपभोग अधिक होगा। अद्धविकसित राष्ट्रों में प्रति व्यक्ति आय से कम होने से बचत तथा पूंजी निर्माण की क्षमता पहले से ही कम होती है। बढ़ता हुआ उपभोग बचत की सीमा को और अधिक नीचे गिरा देता है , जिससे पंजी निर्माण की दर कम हो जाती है। वास्तव में पंजी निर्माण की दष्टि से अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं मे तीन तरह की कमी पाई जाती है। प्रथम, उनकी राष्ट्रीय आय कम है , द्वितीय, वे उसका कम प्रतिशत भाग संचित करते हैं तथा तृतीय उनकी जनसंख्या तुलनात्मक रूप से अधिक है। इन तीनों बातों का संयुक्त परिणाम यह है कि उनकी प्रति व्यक्ति पूंजी निर्माण की दर बहुत ही कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक सर्वेक्षण, 1956 में विभिन्न देशों की पूंजी निर्माण की दरें इस प्रकार दी गयी है:

सारणी 4: पूंजी निर्माण की दर

देश	घरेलू पूंजी निर्माण(आय का प्रतिशत)	देश	घरेलू पूंजी निर्माण(आय का प्रतिशत)
सिंगापुर	33%	जर्मनी	21%
आस्ट्रेलिया	25%	कांगो	8%
जापान	29%	केंया	15%
स्विट्जरलैंड	20%	भारत	24%

गांधी जी ने ठीक ही कहा है ,"जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ते रहते आयोजित विकास करना बहुत कुछ ऐसी भूमि पर मकान खड़ा करने के समान है, जिसे बाढ़ का पानी बराबर बहा ले जा रहा हो। मैं कहूंगी कि यह बालू

की नींव पर मकान खड़ा करने जैसा है। आयोजना और औद्योगिक तथा कृषि विकास के द्वारा जो भी उन्नति होती है, वह आबादी की वृद्धि में डूब जाती है। फलतः जनता के रहन-सहन के स्तर में कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं दिखाई पड़ती। वस्तुतः मुझे अंदेशा है कि हमारे सामाजिक ढांचे के निचले तबकों के लोगों के रहन-सहन में गिरावट आयी है। सामर्थ्य से अधिक बच्चों वाले परिवार की सहायता के लिए कोई भी नहीं दौड़ता , क्योंकि इसे विपत्ति नहीं माना जाता , भले ही इन बच्चों को भोजन और वस्त्र के अभाव में नंगा और भूखा ही क्यों न रहना पड़ता हो। यह स्थिति उस तरह की सहानुभूति अथवा भावना को जन्म नहीं देती , जो उदाहरण के लिए विदेशी आक्रमण के समय पैदा होती है। फिर भी यदि कुछ वर्षों के अंदर आबादी की बढ़ोत्तरी पर अंकुश नहीं लगा , तो हम अपने को एक ऐसी स्थिति में पाएंगे , जिससे शायदईश्वर ही हमें उबार सकेगा। जरा 100 करोड़ की आबादी-एक अरब-लोगो की कल्पना कीजिए।"

1.3.1.4 मानवीय संसाधनों का आर्थिक विकास में उपयोग (Use of Human Resources in Economic Development):

आर्थिक विकास की दृष्टि से मानवीय संसाधनों के उपयोग हेतु विभिन्न विकासवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा भिन्न भिन्न उपाय बताए गये हैं। इन सभी विकल्पों का अंतिम उद्देश्य उपलब्ध जनशक्ति के सर्वोत्तम उपयोग द्वारा वांछित आर्थिक विकास को प्राप्त करना है। इस संबंध मे कुछ महत्वपूर्ण विचारधाराएं निम्नलिखित है:

1.3.1.4.1 रेगनर नर्क्स की विचारधारा (deology of Ragnar Nurkse):-

प्रो. नर्स का मत है कि अर्द्धविकसित देशों में औसत रूप से कुल जनसंख्या का लगभग 25 प्रतिशत अदृश्य बेरोजगारी से ग्रस्त है। नर्क्स का कथन है कि 'घनीभूत श्रम' ही पूंजी होती है। अतः अदृश्य बेरोजगारी में निहित श्रम के अपव्यय का पूंजी निर्माण मे उपयोग किया जा सकता है। अतः यह उचित है कि अदृश्य बेरोजगार श्रमिकों को कृषि से हटाकर सिंचाई , रेल, सड़क, मकान आदि विशेष सामाजिक सेवाओं के निर्माण में लगाया जाये। नर्क्स के शब्दों में , "अतिरिक्त श्रमिकों को भूमि से हटाया जाना संभव है। ऐसे लोग जिस भी वस्तु का निर्माण करेंगे, उससे वास्ताविक राष्ट्रीय अया मे वृद्धि होगी। किंतु पूंजी के बिना वे क्या उत्पादन करेंगे? संभवतः बहुत कम । अतः उन्हें वास्तविक पूंजी के उत्पादन में क्यों न लगाया जाये। " अतिरिक्त श्रम शक्ति को भूमि से हटाकर पूंजीगत परियोजनाओं में लगाने में दो समस्याएं

(अ) उपकरणों की उपलब्धि और

(ब) योजनाओं का वित्त प्रबंध

जहां तक अतिरिक्त कृषि श्रम को पूंजीगत योजनाओं में कार्य करने के लिए

उपकरणों तथा अन्य सामान्य उपलब्ध कराने की समस्यां है , उसको हल करना अधिक सरल है। इस संबंध में नर्क्स का सुझाव है कि

(अ) जहां तक संभव हो उत्पादन कार्य में श्रम–प्रधान तकनीक का उपयोग किया जाना चाहिए, जैसे जंगल साफ करने में पेड़ों को गिराने का कार्य श्रमिकों द्वारा होना चाहिए, न कि बुलडोजरों द्वारा,

(ब) कृषि क्षेत्र से अतिरिक्त श्रमिकों के स्थानांतरण से कृषि में प्रयोग किए जा रहे उपकरण जैसे-टोकरियों , बेलचों व हथौड़ों आदि में भी बचत होगी। अतिरिक्त श्रमिक इन फालतू उपकरणों को पूंजीगत योजनाओं में प्रयोग के लिए ले जा सकते हैं।

(स) विकास की प्रारंभिक अवस्था में बहुत ही साधारण किस्म के औजार तथा उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है।

जहां तक दूसरी समस्या की बात है यदि हम परिस्थिति पर ध्यानपूर्वक दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि इन श्रमिकों की 'उपजीविका कोष' वहीं उपलब्ध है , केवल इसे पूंजी निर्माण के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा रहा है। ये अतिरिक्त श्रमिक जब तक परिवार में रहते है।, वे भी वस्तुओं का उपभोग करते है, यद्यपि वे वस्तुतः उत्पादन में कोई योगदान नहीं करते। दूसरे शब्दों में , परिवारों के उत्पादक सदस्य अर्थात् वस्तुतः कार्यरत सदस्य जो कुछ उत्पादन करते हैं वह पूर्ण परिवार को प्राप्त होता है और इसका उपभोग परिवार के सभी उत्पादक एवं अनुत्पादक सदस्य करते हैं, चाहे उत्पादन में कोई अंशदान हो या न हो। यदि परिवार यह निर्णय करता है कि अनुत्पादक अतिरिक्त श्रमिकों को , जहां भी वे कार्य करेंगे , उनके हिस्से का अन्न पंहुचा दिया जाएगा , तो जिन श्रमिकों को कृषि से पूंजीगत योजनाओं में स्थानांतरित किया जाएगा , उनके पालन-पोषण की समस्या दूर हो जाएगी। नर्क्स के शब्दों में , "इस प्रकार पूंजी संचय के लिए अदृश्य बेरोजगारी का उपयोग करने के लिए व्यवस्था अपने भीतर से ही वित्त प्रबंध कर सकती है। भूमि पर ही काम करने वाले किसानों को पहले की अपेक्षा कम खाने के लिए कहना व्यर्थ है। आवश्यकता इस बात की है कि शेष रहने वाले उत्पादक किसान अपने पर निर्भर उन लोगो के लिए भोजन की व्यवस्था करते रहें , जो कृषि छोड़कर पूंजीगत योजनाओं में कार्य करने लगते है। इन सबका अर्थ तो पूंजी निर्माण के अर्थ में श्रम का पुनः बंटवारा ही है।" यही नर्क्स की थीसिस है। इस सिद्धांत की सफलता के लिए आवश्यक है कि

(i) कृषि क्षेत्र में बची हुई जनसंख्या के उपभोग स्तर में परिवर्तन नही होना चाहिए

(ii) कृषि क्षेत्र में जिन श्रमिकों को स्थानांतरित किया जाये , उनके लिए तुरन्त वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए।

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से प्रो 0 नर्क्स का सिद्धांत अत्यंत महात्वपूर्ण है। अर्द्धविकसित देशों में पाए जाने वाले श्रम अतिरेक का उपयोग उत्पादक कार्यो में किया जा सकता है। विकास की प्रारंभिक अवस्था में अर्द्धविकसित देशों को बाध्य सहायता पर आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इस सिद्धान्त के अनुसार देश में अंतर्निहित संभाव्य बचत का प्रभावशाली ढंग से उपयोग करके आर्थिक विकास को संभव बनाया जा सकता है। लेकिन जहां तक सिद्धान्त के अनुसार देश में अंतर्निहित संभाव्य बचत का प्रभावशाली ढंग से उपयोग करके आर्थिक विकास को संभव बनाया जा सकता है। लेकिन जहां तक सिद्धांत की व्यवहारिता का प्रश्न है, अदृश्य बेरोजगारी की सही माप अतिरिक्त श्रम को पूंजीगत परियोजनाओं में स्थानांतरित करना , पर्याप्त मात्रा मे मशीन , औजारों और उपकरणों की व्यवस्था करना साधनों की सही दिशा में गतिशीलता आदि अनेक समस्याएं पूंजी निर्माण मे सभाव्य बचत के योगदान को सीमित कर देती है।

1.3.1.4 .2 आर्थर लुईस की विचारधारा(Ideology of Arthur Lewis)

प्रो. विलियम आर्थर लुईस नमे अपने लेख में एक मॉडल के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि श्रमकी असीमित पूर्ति के बावजूद भी तीव्र आर्थिक विकास संभव है। लुईस का यह विश्वास है कि अद्धविकसित देशों में असीमित मात्रा में श्रमिकों की पूर्ति जीवन निर्वाह मजदूरी स्तर पर उपलब्धि है। ऐसी स्थिति में "आर्थिक विकास उस समय होता है जबकि जीवन निर्वाह क्षेत्र से अतिरिक्त श्रमिकों को निकालकर पंजीवादी क्षेत्र में लगाने के कारण पूंजी का संचय का निर्माण होता है।" लुईस का मत है कि अर्द्धविकसित देशों में मानवीय श्रम सस्ता होता है और उसकी पूर्ति आसानी से हो जाती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि जीवन निर्वाह

क्षेत्र से अधिकाधिक मात्रा में मानवीय श्रम प्राप्त किया जाये और उन्हें ऊंची मजदूरी का प्रलोभन देकर औद्योगिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित किया जाये। लुईस के मॉडल की तीन प्रमुख बातें ये है:

(अ) ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा औद्योगिक क्षेत्र में मजदूरी की दर चाहे थोड़ी अधिक हो, पर निश्चित हो।

(ब) औद्योगिक श्रम में विनियोग अधिक किया जाये, भले ही वह जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में न हो, तथा

(स) श्रमिकों को प्रशिक्षित करने की लागत पूरे समय तक समान बनी रहनी चाहिए। यदि हम लुईस के विचार को स्वीकार कर लें तो विकास प्रक्रिया की स्थिति चित्र के अनुसार होगी।

चित्र में, द द रेखा औसत जीवन निर्वाह आय और व व रेखा पूंजीवादी मजदूरी दर है। शुरू में अ क श्रमिकों के लिए औद्योगिक अथवा पूंजीवादी क्षेत्र में श्रम की उत्पादकता क प है। स्पष्ट है कि प्रचलित मजदूरी के ऊपर व प क अतिरेक है। जब इस अतिरेक को पुनः विनियोजित कर दिया जाता है तो उत्पादकता बढ़कर ख र हो जाती है। और अ ब श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होता है। अब पूंजीवादी क्षेत्र में अतिरेक की मात्रा व र ख है, जो पहले से अधिक हैं इसका पुनः विनियोजन उत्पादकता वक्र तथा रोजगार मे वृद्धि लाएगा और यह क्रिया तब तक चलती जाएगी, जब तक श्रम अतिरेक समाप्त नहीं हो जाएगा।

इस प्रकार पूंजीवादियों द्वारा अर्जित लाभों में से पूंजी का निर्माण होता है। परंतु कृषकों और श्रमिकों की प्रति व्यक्ति आय अपरिवर्तित बनी रहती है और विकास के संपूर्ण लाभ पूंजीपतियों को ही प्राप्त होते हैं।

लुईस का मत है कि आर्थिक विकास की ऐसी प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती। इस प्रक्रिया के रूक जाने के संबंध में लुईस ने अग्रलिखित दशाएं बताई है:

1. यदि पूंजी निर्माण के परिणामस्वरूप कोई अतिरिक्त श्रम न बचे।

2. जबकि पूंजीवादी क्षेत्र का विस्तार इतनी तीव्र गति से हो , जिससे पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र या निर्वाह क्षेत्र में जनसंख्या बहुत कम रह जाने से इसकी सीमांत उत्पादकता बढ़ जाये , जिसके फलस्वरूप निर्वाह क्षेत्र और पूंजीवादी क्षेत्र दोनों में मजदूरी का स्तर ऊंचा हो जाये।

3. जबकि निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन की नई प्रविधि अपनाई जाये, जिससे पूंजीवादी क्षेत्र में भी वास्तविक मजदूरी बढ़ जाये।

4. जबकि पूंजीवादी क्षेत्र का निर्वाह क्षेत्र की तुलना में तेजी से विस्तार होने पर खाद्यान्न आदि की कीमतें बढ़ जाने के कारण व्यापार की शर्ते पूंजीवादी क्षेत्र में प्रतिकूल हो जाएं और उन्हें श्रमिकों को अधिक मजदूरी देनी पड़े।

5. जबकि पूंजीवादी क्षेत्र में श्रमिक ऊंची मजदूरी के लिए आंदोलन करें और उसमे सफल हो जाएं। उपर्युक्त परिस्थितियों में पूंजीवादी क्षेत्र का आधिक्य , जो अर्द्धविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति के कारण उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और पूंजी निर्माण की दर कम हो जाती है। लुईस के शब्दों में , “विकास की यह प्रक्रिया उस समय समाप्त हो जाएगी और वह नीति उस समय प्रभावपूर्ण नहीं होगी , जबकि पूंजी निर्माण की वृद्धि, मात्रा व दर, जनसंख्या व दर, जनसंख्या की वृद्धि दर के बराबर हो जाएगी। अगर मजदूरी बढ़ने दी गयी तो यह नीति और पहले ही प्रभावहीन हो जाएगी।"

प्रो0 लुईस के मॉडल का प्रधान गुण यह है कि यह बहुत स्पष्ट ढंग से विकास प्रक्रिया की व्याख्या करता है और यह स्पष्ट करता है कि उन अद्धविकसित देशों में पूंजी निर्माण किस प्रकार होता है , जहां श्रम का बाहुल्य और पूंजी की दुर्लभता होती है।

1.3.1.4.3 प्रो. लैबिन्स्टीन की विचारधारा(Ideology of Prof. Leibenstein)

प्रो. हार्वे लैबिन्स्टीन ने पुस्तक में अर्द्धविकसित देशों के संबंध मे एक वाद या थीसिस को जन्म दिया है , जिसे 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नवाद ' कहते हैं। अपने इस ग्रंथ में लैबिन्स्टीन ने भारत , इंडोनेशिया आदि उन अर्द्धविकसित देशों की समस्याओं का अध्ययन किया है , जिनमें जनसंख्या का घनत्व अधिक है। लैबिन्स्टीन का मत है कि अर्द्धविकसित देशों में केवल प्रति व्यक्ति आय बढ़ने पर ही जन्म दर कम होगी अर्थात् पहले आर्थिक विकास होगा फिर जन्म दर घटेगी। लैबिन्स्टीन के शब्दों में , "बिना आर्थिक विकास के कोई भी प्रत्यक्ष तरीके जन्म दर नियंत्रण में सफल नहीं हो सकते।' वास्तव में उनके यह विचार माल्थस के विचारों के ठीक विपरीत है। लैबिन्स्टीन का मत है कि अधिक जनसंख्या वाले अर्द्धविकसित देशों मे तीव्र आर्थिक विकास तभी संभव हो सकता है, जबकि शुरू में अधिक आय उत्पन्न करने वाले विनियोग कार्यक्रमों को शुरू किया जाय। वैसे भी अर्द्धविकसित देशों के प्रारंभिक विकास काल में बड़ी मात्रा में विनियोग करने की आवश्यकता होती है , ताकि राष्ट्रीय आय में तीव्र गति से वृद्धि हो सके। अतः इस दृष्टि से किये गये प्रयासों के दो लाभ होंगेः (अ) जनसंख्या वृद्धि की दर गिरेगी और, (ब) फलस्वरूप इस प्रथम अवस्था के बाद आर्थिक विकास का कार्य सुगम हो जाता है।

प्रो0 लैबिन्स्टीन का विचार आर्थिक जगत में 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धान्त ' से जाना जाता है। स्पष्टतः लैबिन्स्टीन के मतानुसार जनसंख्या की इस ऊंची दर को नियंत्रित करने और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करके जनसंख्या वृद्धि की दर को घटाने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नों की आवश्यकता है। इसी तथ्य को नीचे चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है:

चित्र में

(i) व, ब, रेखा उत्तेजक तत्व को प्रदर्शित करती है जो प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाते हैं , अर्थात् आय वृद्धि रेखा या विकासवर्द्धक रेखा है।

(ii)अ, अ, रेखा पीछे धकेलने वाले तत्व को प्रदर्शित करती है अर्थात् जनसंख्या रेखा बाधक रेखा है।

(iii) अ प स्तर जीवन निर्वाह स्तर है , अर्थात् ट बिंदु पर अ , वक्र और ब , वक्र बराबर है तथा अर्थव्यवस्था आर्थिक दुश्चक्र के चंगुल में फंसी रहती है।

(iv) अगर आय में वृद्धि होती है , जैसे अ प से बढ़कर अ म हो जाती है , जो न्यूनतम आवश्यकता प्रयत्न के अनुरूप नहीं हैं, तो जनसंख्या वृद्धि इस आय को समाप्त कर देगी और अर्थव्यवस्था पुन: जीवन निर्वाह स्तर पर आ जाएगी, क्योंकि यहां पर आय में वृद्धि करने वाली शक्तियों की अपेक्षा आय को घटाने वाली शक्तियाँ अधिक प्रभावपूर्ण हैं। जब प्रति व्यक्ति आय अ म हो जाती हैं , तो इस बिन्दु पर आय बढ़ाने वाली शक्ति केवल क फ है , जबकि आय घटाने वाली शक्तियां ख फ हैं। इसलिए आय घटकर ट बिन्दु अर्थात जीवन साम्य बिन्दु पर पुनः आ जाती है।

(v) इस समस्या के हल के लिए प्रति व्यक्ति आय की दर इतनी बढ़नी चाहिए कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर , जनसंख्या वृद्धि दर को पीछे छोड़ दे। ऐसा प्रति व्यक्ति आय के स्तर को अ न से अधिक होने पर ही हो सकता है। अतः अगर हम प्रथम बार में ही इतना न्यूनतम आवश्यक मात्रा मे विनियोग कर दें कि प्रति व्यक्ति आय अ न स्तर तक पहुंच जाए , तो हम आर्थिक दुश्चक्र के जाल से निकल जायेंगे। यहाँ से जनसंख्या में वृद्धि की दर कम होना शुरू हो जाती है , अर्थात् च बिंदु के बाद जनसंख्या रेखा पीछे की ओर मुड़ने लगती है। अतः निरंतर आर्थिक विकास की स्थिति मे अर्थव्यवस्था को पहुंचाने के लिए यह आवश्यक है कि पूंजी विनियोग ही निश्चित न्यूनतम स्तर से अधिक हो, जो स्वयं प्रेरित आय घटाने वाली शाक्तियों पर काबू पाने योग्य प्रति व्यक्ति आय का उच्चस्तर प्रदान करे । प्रो0 लैबिन्स्टीन के न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के सिद्धांत ने अर्थशास्त्रियों और अद्धविकसित देशों में योजना बनाने वालो का ध्यान आकर्षित किया है। यह सिद्धांत अधिक व्यावहारिक है क्योंकि अर्द्धविकसित देशों में औद्योगीकरण के लिए पूंजी की कमी के कारण एक बार ही बड़ा धक्का देना कठिन होता है, जबकि अर्थव्यवस्था को सतत् विकास के मार्ग पर लाने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धांन उचित ढंग से समय समय पर थोड़ा थोड़ा विकास करने का समर्थन करता है। यह सिद्धांत प्रजातंत्रात्मक योजना से भी मेल खाता है , जिससे अधिकाशं अर्द्धविकसित देश सम्बद्ध हैं। परंतु यह सिद्धांत भी बहुत व्यावहारिक नहीं है। अर्द्धविकसित देशों मे न्यूनतम स्तर के आवश्यक प्रयत्नों हेतु वांछिज मात्रा में विदेशी सहायता , प्रशिक्षित श्रम व विकसित तकनीक आदि उपलब्ध न होने के कारण ये देश आवश्यक औद्योगिक विनियोग करने में भी असमर्थ

रहते हैं। इसके अतिरिक्त कोई भी अर्द्धविकसित देश जन्म दर को घटाने के लिए प्रति व्यक्ति आय में न्यूनतम आवश्यक स्तर से अधिक वृद्धि होने तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि हो सकता है तब तक देश में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो जाये। इतना ही नहीं लैबिन्स्टीन ने जनसंख्या को एक विशुद्ध आर्थिक घटक माना है, जो कि त्रुटिपूर्ण है। कारण यह है कि अर्द्धविकसित देशों में जनसंख्या एक सामाजिक व धार्मिक समस्या है , जिस पर रीति-रिवाज, धर्म व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों आदि का प्रभाव पड़ता है। जिस देश में " पुत्र पैदा होने पर पिता को सब कष्टों से छुटकारा मिल जाता हो , पोते के जन्म से वह अमर हो जाता हो और परपोते के अवतार लेते ही व स्वर्ग का अधिकारी बन जाता हो', भला ऐसे देश में आय वृद्धि किस प्रकार जनसंख्या वृद्धि को सीमित कर सकती है।

1.3.1.4.4 जनांकिकीय संक्रमण कासिद्धान्त(Theory of Demographic Transition)

जनांकिकीय संक्रमण के सिद्धान्त में आर्थिक विकास से सम्बन्धित जन्म और मृत्यु दरों की तीन अवस्थाएं स्वीकार की गई हैं: जनांकिकीय संक्रमण की प्रथम अवस्था इस सिद्धान्त के अनुसार घटिया भोजन , अविकसित सफाई व्यवस्था और प्रभावशाली डाक्टरी की सहायता के अभाव के कारण कृषि अर्थव्यवस्था की प्रथम अवस्था में मृत्यु-दर ऊंची होती है। इस अवस्था में व्यापक निरक्षरता , परिवार नियोजन के तरीकों के विषय में ज्ञान के अभाव, छोटी आयु में विवाह परिवार के आकार के विषय में दृढ़ सामाजिक विश्वासो और प्रथाओं तथा बच्चों के प्रति मनोभाव इत्यादि के कारण जन्म-दर ऊंची होती है। इसके अतिरिक्त आदिमकालीन समाज में बड़े परिवार के आर्थिक लाभ भी होते हैं , "बच्चे छोटी अवस्था से ही काम में हाथ बटाने लगते हैं और माता-पिता के लिए उनके बुढ़ापे में सुरक्षा का परम्परागत स्त्रोत होते हैं। मृत्यु की , विशेषतः शिशु मृत्यु की ऊंची दर से यह संकेत मिलता है कि अधिक बच्चे उत्पन्न करके ही उक्त सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है।" ऐसे समाज मे जनसंख्या वृद्धि दर वास्तव में अधिक ऊंची नहीं होती क्योंकि उच्च जन्म-दर को उच्च मृत्यु-दर संतुलित कर देती है। यह अवस्था अधिक जनवृद्धि की संभावना की अवस्था है किन्तु इसमें वास्तविक वृद्धि कम होती है। जनांकिकीय संक्रमण की द्वितीय अवस्था । आय के स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनता अपने भोजन में सुधार करने के योग्य हो जाती है। आर्थिक विकास के कारण सर्वांगीण सुधार होता है जिसमें परिवहन का सुधार भी समाविष्ट है। परिवहन के कारण मृत्यु-दर में कमी के कारण प्रथम अवस्था की उच्च-वृद्धि संभावना द्वितीय अवस्था में उच्च वास्तविक वृद्धि बनकर प्रकट होती है। उच्च जन्म-दर और घटती हुई मृत्यु-दर के कारण द्वितीय अवस्था में परिवार का औसत आकार बड़ा हो जाता है। जनांकिकीय संक्रमण की तृतीय अवस्था ठसके अतिरिक्त आर्थिक विकास के कारण अर्थव्यवस्था का स्वरूप कषक से परिवर्तित होकर अंशतः औद्योगिक हो जाता है। औद्योगीकरण में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों से औद्योगिक और वाणिज्यिक केन्द्रों की ओर स्थानान्तरित होने लगती है। शहरी जनसंख्या में वृद्धि और "स्त्रियों के लिए घर से बाहर आर्थिक कार्यों के विकास के परिणामस्वरूप आथिक गतिशीलता की संभावना बढ़ जाती है जिसे छोटे परिवारों के सहारे भली-भांति प्राप्त किया जा सकता है। परिणामतः बड़े परिवार की आर्थिक लाभकारिता कम हो जाती है। आर्थिक विकास का एक लक्षण विशेष रूप से बढ़तस हुआ नगरीकरण है और ग्रामों के विपरीत नगरों में बच्चे अमूल्य निधि नहीं , भार समझे जाते हैं।" उचित जीवन-स्तर बनाये रखने की चेतना औद्योगिक अर्थव्यवस्था में परिवार छोटा करने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार तृतीय अवस्था की विशेषताएं हैं: निम्न जन्म-दर , निम्न मृत्यु-दर, छोटा परिवार और जनसंख्या वृद्धि की निम्न दर। यह जनसंख्या में कमी की अवस्था है। इन तीनों अवस्थाओं से उच्च जन्म-दर और उच्च मृत्यु दर वाली अर्थव्यवस्था में रूपान्तर व्यक्त होता है। जब कोई अर्थव्यवस्था जनांकिकीय संक्रमण की प्रथम अवस्था से द्वितीय अवस्था में प्रवेश करती है तो घटती हुई मृत्यु दर किन्तु अपेक्षाकृत स्थिर जन्म-दर के कारण उनमें

असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह देखा गया है कि मृत्यु-दर का नियंत्रण अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि मृत्यु-दर घटाने के उपाय बहिर्जात होने के कारण जनता उन्हें तत्परातपूर्वक स्वीकार कर लेती है। किन्तु जन्म-दर में कमी के लिए अन्तर्जात तत्वों को परिवर्तित करना पड़ता है। इसीलिए जनांकिकीय विकास की दूसरी अवस्था को जनसंख्या विस्फोट की अवस्था कहा गया है। विकासमान अर्थव्यवस्था के लिए यह अवस्था सर्वाधिक संकटमय होती है। इसलिए द्वितीय अवस्था में मृत्यु-दर मे कमी होने के कारण असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है जिसे सुधारने के लिए संक्रमण की अवधि अपेक्षित होती है। इस प्रकार इस सिद्धान्त को जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त कहा गया है:
संक्रमणकाल मे जनांकिकीय तत्वों में असामंजस्य उत्पन्न हो जाता है। नए जनांकिकीय तत्वों उपस्थित होते है जो समाज का स्वरूप परिवर्तित कर देते है। जन्म-दर और मृत्यु-दर निम्न स्तर पर सन्तुलित हो जाती है जिसके परिणास्वरूप जनसंख्या वृद्धि की दर भी कम हो जाती है। इस प्रकार किसी समाज के जनांकिकीय विकास का निर्णय परिवार के आकार और जनसंख्या में वृद्धि की दर के सम्बन्ध मे जन्म और मृत्यु-दर के स्तर और परिवतेनों के रूप में किया जा सकता है।

1.3.1.4.5 भारत में जनसंख्या का आकार और वृद्धि दर (Population Size and Growth Rate in India)

आज भारत के पास विश्व के कुल भू-क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत भाग है किन्तु उसे विश्व की कुल जनसंख्या के 16 प्रतिशत का पालन-पोषण करना पड़ता है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ पर भारत की जनसंख्या 23.6 करोड़ अनुमानित की गई और 1981 की जनगणना के अनुसार यह 68.3 करोड़ आंकी गई। 1991 तक भारत की जनसंख्या 84.4 करोड़ और 2008 में 115.4 करोड़ हो गयी।

तलिका 1: भारत में जनसंख्या की वृद्धि दर |

जनगणना वर्ष	जनसंख्याकरोडों में	10 वर्षीय वृद्धि या कमीकरोडों में	दशक में प्रतिशतवृद्धि या कमी	
1891	23.6			
1901	23.6	0.0	0.0	
1911	25.2	+1.6	+5.7	
1921	25.1	-0.1	-0.3	
(1891-1921)			+1.5	+0.19
1931	27.9	+2.8	+11.0	
1941	31.9	+4.0	+14.2	
1951	36.1	+7.2	+13.3	
1921-1951			+11.0	+1.22
1961	43.9	+ 7.8	+21.5	
1971	54.8	+10.9	+24.8	
1981	68.3	+13.5	BB+24.7	
1951-1981			+32.4	+2.14
1991	84.6	+16.1	+23.9	

2001	102.9	+18.3	+21.5
2011	121.0	+18.1	+17.6
1981-2011		52.7	+1.91

जनसंख्या वृद्धि दर (वार्षिक)

1891-1921	0.19
1921-1951	1.22
1951-1981	2.15
1981-1991	2.11
1991-2001	1.93
2001-2011	1.64

भारत की जनसंख्या की वृद्धि दर को चार अवधियों में विभक्त किया जाता है

1891-1921 अवरूद्ध जनसंख्या

1921-1951 : मर्यादित वृद्धि

1951-1981 : तीव्र ऊंची वृद्धि दर

1981-2011: उच्च वृद्धि परन्तु मन्द होने के स्पष्ट चिन्ह

30 वर्षों की पहली अवधि (1891 से 1921) के दौरान भारत की जनसंख्या जो 1891 में 23. 6 करोड़ थी , बढ़कर 1921 में 25.1 करोड़ हो गई इस काल के दौरान जन्म-दर एवं मृत्यु-दर लगभग बराबर थी। इस काल में भारत जनांकिकीय संक्रमण की प्रथम अवस्था में था। 30 वर्षों की दूसरी अवधि में भारत की जनसंख्या जो 1921 में 25.1 करोड़ थी , बढ़कर 1951 मे 36.1 करोड़ हो गई अर्थात् इसमें 11 करोड़ की वृद्धि हुई। जनसंख्या की चक्रवृद्धि दर 1. 22 प्रतिशत प्रति वर्ष थी जो मर्यादित ही समझी जा सकती है। जनसंख्या की वृद्धि दर में उन्नति का मुख्य कारण मृत्यु –दर का 49 प्रति हजार से गिरकर 27 प्रति हजार हो जाना था। मृत्यु-दर में कमी का मुख्य कारण व्यापक महामारियों अर्थात् प्लेग, चेचक, हैजा आदि पर नियंत्रण था जो बड़े पैमाने पर मौतों का कारण बनती थीं। इस काल में भारत ने जनांकिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था में प्रवेश करना आरंभ कर दिया था। 30 वर्षों की तीसरी अवस्था 1951 से 1981 के दौरान, भारत की जनसंख्या जो 1951 में 36. 1 करोड़ शब्दों में इन तीस वर्षों की अवधि में जनसंख्या में 32.2 करोड़ की वृद्धि का रिकार्ड कायम हो गया। इस अवधि में जनसंख्या चक्रवृद्धि दर 2.14 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जो पिछली अवस्था से लगभग दुगुनी थी। आयोजन के प्रारंभ के साथ, अस्पतालों और चिकित्सा सुविधाओं का बड़े पैमाने पर विस्तार किया गया और मृत्यु-दर नियंत्रण के उपायों ने मृत्यु-दर को और तेजी से कम किया और यह 15 प्रति हजार हो गयी , परन्तु जन्म-दर बड़ी सुस्ती से 40 से 36 प्रति हजार ही कम हुई। परिणामतः इस अवधि में जनसंख्या विस्फोट हआ। 1981 और 2001 के दौरान , भारत जनसंख्या वृद्धि के चौथे चरण मे प्रवेश कर गया है। भारत की कुल जनसंख्या जो 1981 में 68.3 करोड़ थी बढ़कर 2001 में 102.7 करोड़ हो गयी जो 20 वर्षों की अवधि में

लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाती है। 1981-2001 के दौरान जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धि दर 2.05 प्रतिशत थी। 1991-2001 के दौरान जनसंख्या की वृद्धि दर कम होकर 1.93 प्रतिशत हो गयी। 2001-2011 के बीच यह दर घटकर 1.64 प्रतिशत प्रतिवर्ष ही रह गई।

तलिका 2:भारत में औसत जन्म व मृत्यु-दर

अवधि	जन्म-दर(प्रति हजार)	मृत्यु-दर (प्रति हजार)
1889-1901	45.8	44.4
1901-1911	48.1	42.6
1911-1921	49.2	48.6
1921-1931	46.4	36.3
1931-1941	45.2	31.2
1941-1951	39.9	27.4
1951-1961	740.0	18.0
1961-1971	41.2	19.2
1971-1980	37.2	15.0
1985-1986	32.6	11.1
2009-2010	22.1	7.2

भारत मे जनसंख्या वृद्धि की तीव्र गति की व्याख्या जन्म और मृत्यु की दर के परिवर्तन के आधार पर की जा सकती है। भारत में जन्म-दर और मृत्यु-दर निम्नलिखित रही हैं

तलिका 2 से स्पष्ट हो जाता है कि 1921 से पूर्व भारत में विद्यमान जन्म और मृत्यु की ऊंची दर के कारण जनसंख्या वृद्धि नियंत्रित थी। 1901-1921 के बीच जन्म-दर 46 और 49 के बीच तथा मत्य-दर 42 और 49 के बीच घटती-बढती रही। तदनरूप जनसंख्या वृद्धि बहुत कम या नगण्य नही। किन्तु 1921 के पश्चात् मृत्यु-दर में स्पष्ट गिरावट हुई। 1911-21 में मृत्यु-दर के विपरीत जन्म-दर जन्म-दर में बहुत थोड़ी कमी हुई है। परिणामतः समय के साथ साथ उच्च जन्म-दर और गिरती हुई मृत्यु-दर के बीच अन्तर बढ़ गया जो उच्च जीवित-शेष दर के रूप में प्रकट हुआ। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि की ऊंची दर की व्याख्या जन्म की निरन्तर उच्च दर किन्तु मृत्यु की अपेक्षाकृत तेजी से गिरती हुई दर के आधार पर की जा सकती है। परिवार नियोजन अभियान के परिणामस्वरूप, जन्म-दर सन् 2009-10 तक गिर कर 22.1 प्रति हजार हो गयी। इसी काल के दौरान मृत्यु-दर गिर कर 7.2 प्रति हजार के स्तर पर पहुंच गयी। परिणामतः समय के साथ-साथ उच्च जन्म-दर ओर गिरती हुई मृत्यु-दर के बीच अन्तर बढ़ गया और इसके फलस्वरूप जीवित-शेष दर में उच्च वृद्धि हुई। अतः जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर की व्याख्या उच्च जन्मदर एवं गिरती हुई मृत्युदर के रूप में की जा सकती है। चूंकि मृत्यु-दर उन्नत सफाई व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य उपायों और "इन्लुएंजा , हैजा, प्लेग जैसी महामारियों के नियंत्रण आदि बाहिर्जात तत्वों पर निर्भर रहती है, अतः इसका नियंत्रण अपेक्षाकृत सरलता से किया जा सकता है किन्तु इसकी तुलना में जन्म-दर अन्तर्जात तत्वों पर , यथा विवाह विषयक दृष्टिकोण , परिवार का आकार, गर्भनिरोधकों का

प्रयोग, नौकरी मे सन्तोष और यौन सम्बन्धों आदि पर निर्भर करती है। अतः परिवार नियोजन कठिन समस्या है तथा जन्म-दर मे कमी के लिए दीर्घ अवधि और निरन्तर प्रयत्न की आवश्यकता होती है। 1921 से पूर्व भारत जनांकिकीय संक्रमण की प्रथम अवस्था मे था , किन्तु 1921 के पश्चात् भारत जनांकिकीय संक्रमण की दसरी अवस्था में प्रवेश कर चुका है। इस अवस्था में जनसंख्या की उच्च वृद्धि की संभावना वास्तविक वृद्धि के रूप में प्रकट हो रही है। यह आशा की जा रही है कि थोड़े समय के पश्चात् भारत जनांकिकीय संक्रमण की तीसरी अवस्था में प्रवेश कर जाएगा। राज्यों से सम्बन्धित जन्म तथा मृत्यु-दर सम्बन्धी आंकड़ों से पता चलता है कि केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात मे जन्म-दर 25 प्रति हजार से कम हो चुकी है। इस प्रकार से ये राज्य जनांकिकीय संक्रमण की तृतीय अवस्था में प्रवेश कर गए हैं। इसके विरूद्ध, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार और मध्य प्रदेश में जन्म-दर 31-34 प्रति हजार के उच्च स्तर पर कायम है। ये राज्य जनांकिकीय संक्रमण की द्वितीय अवस्था में है परन्तु इनमें भारत की कुल जनसंख्या का 44 प्रतिशत निवास करता है। जब तक इन राज्यों में परिवार नियोजन कार्यक्रमों का प्रभाव व्यक्त नहीं होता , तब तक समग्र भारत जनांकिकीय संक्रमण की तृतीय अवस्था में प्रवेश्ज्ञ नहीं कर सकता। यह बड़ी अजीब बात है कि हरियाण जो प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से दो नम्बर पर है, वह भी जन्म-दर को कम करने में काफी पीछे है।

1.3.2 आर्थिक विकास का जनसंख्या पर प्रभाव (Effect of Economic Development on Population)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में किसी देश की श्रम शक्ति द्वारा अपने यहां के भौतिक संसाधनों का उपयोग सन्निहित रहता है ताकि देश की उत्पादन संभावना सिद्ध की जा सके। इसमे सन्देह नहीं कि विकास प्रयत्नों में देश की श्रम-शक्ति का सक्रिय योगदान रहता है किन्तु यह भी उतना सत्य है कि तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या विकास प्रक्रिया को मन्द कर देती है। बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक संसाधनों के लिए अनेक रूप में बाधक सिद्ध होती है। इस सम्बन्ध में समस्या का अध्ययन रोचक विषय होगा।

1.3.2.1 जनसंख्या और राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दर (Population and Growth Rate of National and Per Capita Income)

1980-81 और 2000-01 के दौरान, शद्ध राष्ट्रीय उत्पादन की औसत वार्षिक वद्धि दर 5.4 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति उत्पाद आय की वृद्धि दर 3.4 प्रतिशत थी। यह आशा की जा रही है कि आगामी तीन दशकों में जनसंख्या की वृद्धि दर और गिर कर 1.5 प्रतिशत प्रति वर्ष हो जाएगी। परिणामतः प्रति व्यक्ति आय की शुद्ध वृद्धि बढ़ जाएगी। जनसंख्या की उच्च वृद्धि दर पिछले वर्षों में प्रति व्यक्ति आय के स्तर को ऊंचा उठाने में अवरोधक ही रही है।

1.3.2.2 जनसंख्या और खाद्य संभरण (Population and Food Supply)

जबसे माल्थस ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ “ऐसे ऑन पापुलेशन' रचा तब से जनसंख्या बनाम खाद्य संभरण की समस्या पर ध्यान केन्द्रित हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि भारत में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य क्षेत्र क्रमशः कम होता जा रहा है। 1921 से 2001 के बीच प्रति व्यक्ति कृषि क्षेत्र 1.11 एकड़ से घटकर 0.32 एकड़ रह गया जिसका अभिप्राय 71 प्रतिशत की कमी है। आगामी दशकों में जीवित-शेष दर बढ़ने के कारण प्रति व्यक्ति कृषि भूमि काफी कम हो जाएगी। परिणामतः कृषि भूमि व्यक्ति कृषि भूमि काफी कम हो जाएगी। परिणामतः कृषि भूमि-व्यक्ति अनुपात में कमी की क्षतिपूर्ति के लिए उत्पादिता बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना अनिवार्य होगा।

तालिका 10

वर्ष जनसंख्या(करोड़ में) खाद्यान्नों का शुद्ध उत्पादन(करोड़ टन) प्रति व्यक्ति उत्पादन (ग्रामों में) प्रति व्यक्ति उपलब्धि(ग्रामों में)

1961	439	82.0	512	469
1971	543	108.4	547	469
1981	683	129.6	520	455
1991	846	176.4	571	510
2001	1029	196.8	524	146
2011	1210	235.0	532	NA

1956 और 1997 के बीच चाहे खाद्यान्नों का शुद्ध उत्पादन 627 लाख टन से बढ़कर 1,770 लाख टन हो गया अर्थात् इसमे 182 प्रतिशत वृद्धि हुई परन्तु खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि 431 ग्राम से बढ़कर 509 ग्राम हो गई अर्थात् इसमें 41 वर्षों में केवल 18 प्रतिशत की नाममात्र वृद्धि हुई। चूंकि 1997-2002 के दौरान खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर मन्द रही , इसलिए 2011 में खाद्यान्नों का प्रतिव्यक्ति उपभोग कम हो कर 436 ग्राम हो गया। प्रति व्यक्ति उपलब्धि में नाममात्र वृद्धि का कारण जनसंख्या की वृद्धि है। 2011 में खाद्यान्नों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धि और कम हो कर 436 ग्राम हो गयी , चूंकि अधिक जनसंख्या वृद्धि गांवो में होती है , इस कारण कुल खाद्य उत्पादन में पारिवारिक उपभोग का भाग बढ़ जाएगा जिसके परिणाम के तौर पर विक्रय अतिरेक काफी कम बचेगा। इन आशंकाओं के कारण परिवार –परिसीमन की आवश्यकता और अधिक प्रबल प्रतीत होती है। उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1961 और 2011 के बीच खाद्यान्नों (अन्य एवं दालों) का कुल उत्पादन 820 लाख टन से बढ़ कर 2350 लाख टन पहुंच गया , यानि 187 प्रतिशत की वृद्धि। लेकिन इसी कालखंड मे जनसंख्या भी 43.9 करोड़ से बढ़कर 121 करोड़ तकपहुंच गयी , यानि 176 प्रतिशत की वृद्धि । इसलिए कालखंड में प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों का उत्पादन 512 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन से बढ़कर मात्र 532 ग्राम तक ही पहुंच पाया। लेकिन यह प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता का सूचक नहीं है। प्रति व्यक्ति उपलब्धता जानने के लिए हमें उत्पादन में आयातों को जोड़ना होगा और सरकारी भंडारों में पड़े खाद्यान्न को घटाना होगा, इसके साथ ही साथ 12.5 प्रतिशत खाद्यान्न पशओं के चारे. बीज और अन्य उपयोगों मे आते हैं , जो खाद्यान्न उपलब्धता में शामिल नहीं होते। इसलिए प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता मात्र 436 ग्राम की आंकी गई है।

1.3.2.3 जनसंख्या और बेरोजगारी (Population and Unemployment)

बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ-साथ समाज की श्रम-शक्ति में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप , बेरोजगारी की समस्या और अधिक जटिल हो जाती है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 55 वें रौंद के आधार पर यह पता चला है कि बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या जो 1993-94 में 2013 लाख थी बढकर 1999-2000 में 265.8 लाख हो गयी। श्रम-शक्ति के अनुपात के रूप में , बेरोजगारी दर जो 1993-94 में 6.0 प्रतिशत थी, बढ़ कर 1999-2000 में 7.32 प्रतिशत हो गयी। दसवीं योजना की मध्यावधि समीक्षा के अनुसार 2004-05 में बेरोजगारी की दर बढ़ कर 8.3 प्रतिशत हो गयी है। परम एवं सापेक्ष दोनों रूपों में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि से जाहिर

होता है, कि आयोजन के पिछले 50 वर्षों में अवशिष्ट बेरोजगारों को तो समोने की बात ही क्या. पंचवर्षीय योजनाएं श्रम शक्ति में शुद्ध वृद्धि को खपाने में भी असमर्थ रही है। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय साधनों का एक बड़ा अंश रोजगार के अवसरों का विस्तार करने में व्यय हो जाएगा ताकि जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के अनवरत दबाव के परिणामस्वरूप श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या और अवशिष्ट बेरोजगारों को काम में लगाया जा सके।

1.3.2.4 जनसंख्या और शिक्षा , डाक्टरी सहायता तथा आवास का भाग (Population and Share of Education, Medical Aid and Housing)

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बालकों की संख्या में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा पर अधिक व्यय आवश्यक हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा पर किया गया व्यय मनुष्यों पर किया गया ऐसा व्यय है जो अन्ततः श्रमिकों की उत्पादिता में वृद्धि करता है किन्तु इस बात पर बल देना होगा कि इस सम्बन्ध में समयान्तर काफी लम्बा होने के कारण विनियोग की प्रति इकाई द्वारा उत्पाद मे वृद्धि पर प्रभाव बहुत कम पड़ता है। प्रत्येक छात्र पर 144 रूपये वार्षिक व्यय का अनुमान लगाया गया है। 1991 में 5 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग में 2,090 लाख व्यक्तियों के होने के कारण शिक्षा व्यय में 3,010 करोड़ रूपये वार्षिक वृद्धि होगी। इसके साथ-साथ यदि माध्यमिक स्तर के स्कूलों से निकलने वाले छात्रों के दबाव के परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय शिक्षा पर व्यय में होने वाली वृद्धि को भी जोड़ लिया जाए , तो शिक्षा पर व्यय में वृद्धि और भी अधिक हो जाएगी। इसके अतिरिक्त, डाक्टरी देखभाल और सर्वजानिक स्वास्थय पर भी और अधिक विनियोग करना पड़ेगा। केवल इतना ही नहीं, अतिरिक्त जनसंख्या के लिए आवास की व्यवस्था भी करनी होगी।

1.3.2.5 जनसंख्या वृद्धि और पंजी-निर्माण (Population Growth and Capital Formation)

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के विद्यमान स्तर को बनाए रखने के लिए रय आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय में उसी दर से वृद्धि हो जिस दर से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। भारत में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक वर्तमान दर 1.5 प्रतिशत है। प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के विद्यमान स्तर को स्थिर रखने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीयआय में 1.5 प्रतिशत वार्षिक दर से वद्धि हो। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए पंजी निवेश आवश्यक है। भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजी-उत्पाद अनुपात 4.1 आंका गया है जिसका अर्थ यह है कि उत्पाद की एक इकाई की वृद्धि के लिए 4.1 इकाई पूंजी आवश्यक है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय में 1.5 प्रतिशत की दर से वृद्धि के लिए 6.2 प्रतिशत (अर्थात् 1.5 x 4.1) पूंजी-संचय आवश्यक है। इस विवेचन से स्पष्ट रूप में यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि जनसंख्या में 1.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि संदर्भ में लगभग 6.2 प्रतिशत दर से निवेश अपेक्षित है। इसका अर्थ यह है कि जनता का जीवन स्तर उन्नत करने के लिए बहुत कम पूंजी शेष रह जाती है। इन सब बातों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विकास के लाभ भारत की गरीब जनता तक नहीं पहुंच पाते। इसके लिए बहुत से कारण उत्तदायी ठहराये जा सकते है, जैस भूमि तथा अन्य सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्यायपर्ण ढांचा. समाज के निर्धन वर्गों के उत्थान के लिए निर्देशित उपायों पर कम बल और भारत में पिछले दो दशकों के दौरान आर्थिक विकास की धीमी गति। परन्तु इस सब कारणों के साथ जनसंख्या की वृद्धि भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

1.4 जनसंख्या नीति (Population Policy)

जनसंख्या वृद्धि की अधिकता का निर्मण इस तथ्य से किया जा सकता है कि इसमें 1991-2001 में लगभग 18.3 करोड़ की वृद्धि हुई। 2001 में भारत वी जनसंख्या लगभग 102.7 करोड़ हो गई। जनसंख्या वृद्धि की चिन्तनीय दर को देखते हुए यह आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि की दर को कम करने के लिए ठोस जनसंख्या-

नीति अपनाई जाए। परिवार नियोजन कार्यक्रम और पंचवर्षीय योजनाएं चाहे भारत पहला देश था जिसने 1952 में परिवार नियोजन कार्यक्रम को औपचारिक रूप में स्वीकार किया , परन्तु जनसंख्या वृद्धि पर गंभीर चिन्तन तीसरी योजना में आरंभ हुआ और जनसंख्या वृद्धि की दर को उचित समय-अवधि के अन्दर सीमित करने का निर्णय किया गया। इसके पश्चात् विभिन्न नीति सम्बन्धी प्रलेखों में लक्ष्य निर्धारित किए गए। तालिका 12 में निश्चित लक्ष्य और वास्तविक उपलब्धि का सारांश दिया गया है। 1983 में राष्ट्रीय स्वास्थय नीति की घोषणा में सन् 2000 तक रूक्ष जन्मदर को 21, मृत्यु दर को 9 और शुद्ध प्रजनन दर को। तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। इसके साथ-साथ शिशु मृत्यु दर को 60 प्रति हजार से कम करने और परिवार नियोजन उपायों का प्रयोग करने वाली दम्पत्तियों का अनुपात 60 प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य तय किया गया। इस नीति को छठी योजना में 1995 तक के लिए लक्ष्य माना गया। तालिका 11 जनसंख्या सम्बन्धी लक्ष्य और वास्तविक उपलब्धि |

वर्ष	रूक्ष जन्मदर निश्चित लक्ष्य	लक्ष्य प्राप्त करने का निर्धारित वर्ष	वास्तविक उपलब्धि
1962	25	1973	34.6
1968	23	1978-79	33.3
1974	30	1979	33.7
1976	30	1978-79	33.3
1977	25	1983-84	33.7

किन्तु हाल ही में की गयी समीक्षा से संकेत मिला कि यह लक्ष्य 2006-11 की अवधि में पूरा हो सकेगा। केवल आठवीं योजना के दौरान 1997 तक रूक्ष जन्म दर को 26 प्रति हजार तक लाने का लक्ष्य लगभग प्राप्त कर लिया गया। परिवार नियोजन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए गए।

(i) परिवार नियोजन सम्बन्धी जानकारी बढ़ाने के लिए प्रेरणा प्रोग्राम परिवार नियोजन का संदेश प्रत्येक नगर तथा गांव में फैलाने के लिए जन प्रचार के सभी माध्यमों अर्थात् समाचार-पत्रों, रेडियो, टी.वी. फिल्मों आदि का विस्तृत रूप में प्रयोग किया गया ताकि परिवार नियोजन परिसीमन सम्बन्धी चेतना जगाई जा सके।

(ii) ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या के सभी वर्गों को गर्भनिरोधकों का संभरण बढ़ाना।

(iii) वन्ध्यकरण या नसबन्दी करवाने वाले व्यक्तियों को नकद इनामों के रूप में वित्तीय प्रोत्साहन देना।

(iv) पुरूषों एवं स्त्रियों पर वन्ध्यकरण या नसबन्दी का विस्तृत प्रयोग। भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम में किसी एक उपाय का ही आश्रय नहीं लिया गया बल्कि कैफेटेरिया प्रणाली अपनाई गई जिसके अधीन गर्भनिरोधक के विज्ञान द्वारा स्वीकृत सभी उपायों का प्रयोग किया गया। इनमें मख्य उपाय थे. वन्ध्यकरण या नस डी., झिल्ली, मौखिक गोली आदि। इन उपायों के अतिरिक्त कुछ हद तक सरकार शिक्षा और करने में विश्वास रखती थीं जनता के शिक्षा स्तर को ऊंचा करने से जन्म-दर को कम करने पर प्रभाव पड़ता है। ऐसा विशेष रूप में स्त्री-जनसंख्या के शिक्षित होने पर होता है। "भारत मे किए गए अध्ययनों से इस तथ्य का समर्थन हुआ है कि जनन-दर का शिक्षा और आर्थिक विकास से सम्बन्ध है। छोटा परिवार रखने और गर्भनिरोधकों को सफलतापूर्वक अपनाने की प्रेरणा उन वर्गों में सबसे अधिक बलवती है जो शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है।"

1.4.1 आपात काल के दौरान जनसंख्या नीति (Population Policy during Emergency)

16 अप्रैल, 1976 को सरका ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की। इस नीति का आधार यह था कि जनसंख्या विस्फोट एक गम्भीर संकट का रूप धारण कर गया है और जनसंख्या को सीमित करना हमारी सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए सीधा प्रहार करना होगा। इस जनसंख्या नीति के मुख्य लक्षण थे।

(i) सरकार ने विवाह की न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष करने का विधान बनाया।

(ii) चूंकि गरीब वर्गों द्वारा परिवार नियोजन की स्वीकार्यता का मौद्रिक क्षतिपूर्ति से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है , इस जनसंख्या नीति में मई, 2976 से मौद्रिक क्षतिपूर्ति बढ़ा दी गयी।

(iii) जबरन नसबन्दी के प्रश्न पर सरकार का मत था कि वह देशभर के लिए केन्द्रीय अधिनियम द्वारा जबरन नसबन्दी लागू करने का इरादा नहीं रखती किन्तु यदि कोई राज्य सरकार यह निर्णय करे कि इसके लिए उपयुक्त समय आ गया है तो वह ऐसा कर सकती है। राष्टीय जनसंख्या नीति की घोषणा के फौरन बाद सरकार ने देश में आपातकालीन परिस्थितियों का लाभ उठाने हुए जबरन नसबन्दी का महाभियान चलाया। 1976-77 के दौरान, 43 लाख नसबन्दियों के लक्ष्य के विरूद्ध 82 लाख नसबन्दियों की गयी। जबरन नसबन्दी के प्रोग्राम में यह तेजी एक ओ तो जबरी उपयों और दूसरी ओर प्रोत्साहन की सहायता से लायी गयी। आम जनता ने यह महसूस किया कि प्रशासन का बल जबरन नसबन्दी लागू करने के लिए इस्तेमाल किया गया। चूंकि प्रशासन को लक्ष्य-प्रेरित पद्धति पर कार्य करना पड़ता था , इस कारण प्रशासन द्वारा अपनी शक्ति का बड़े पैमाने पर दुरूपयोग किया गया और बड़े पैमान पर "नसबन्दी शिविरों" पर लोगों को जबरदस्ती घेर कर लाया गया। आपात काल के बाद परिवार नियोजन जबरदस्ती के पक्ष को व्यागकर उसे परिवार कत्याण के साथ जोड़ा गया।

1.4.2 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (National Population Policy)

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार ने 15 फरवरी, 2000 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 की घोषणा की जिसका उद्देश्य दो-बच्चों के मानक को प्रोत्साहित करना था ताकि सन् 2046 तक जनसंख्या को स्थिर किया जा सके। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित है:प्रथम सरकार ने यह निर्णय किया है कि संविधान के 42वें संशोधन के अनुसार 1971 की जनगणना के आधार पर लोकसभा के अनुसार 1971 की जनगणना के आधार पर लोकसभा की सीटों पर लगाए गए प्रतिबन्ध को जो सन् 2001 तक मान्य था, सन् 2026 तक बढ़ा दिया जाए। यह इसलिए किया गया कि तमिलनाडु और केरल जैसे राज्यों जिन्होंने छोटे परिवार के मानक का प्रभावी रूप में अनुसरण किया है को दण्डित न किया जाए और उत्तर प्रदेश , बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों को लोकसभा में अधिक सीटें देकर पुरस्कृत न किया जाए। अतः लोकसभा सीटों को सन् 2026 तक जड़ीकृत करने का उद्देश्य जनसंख्या नीति की उपेक्षा करने वाले राज्यों को पुरस्कार न देना है और जो राज्य छोटे परिवार के मानक का सफलतापूर्वक पालन करते रहे हैं , उन्हें दण्ड न देना था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में सन् 2046 तक स्थिर जनसंख्या का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपायों का उल्लेख किया गया है : 1.प्रति 1000 जीवित जन्मे बच्चों के लिए शिशु मृत्युदर को 30 से कम करना,

2.मातृ मृत्युदर को 1, 00,000 जीवित जन्मों के लिए 100 से भी कम करना,

3.सर्वव्यापक प्रतिरक्षण

4. 80 प्रतिशत प्रसवों के लिए प्रशिक्षित स्टॉफ के साथ नियमित डिस्पेन्सरियों , अस्पतालों और चिकित्सा संस्थाओं का प्रयोग करना,

5.एड्स के बारे में सूचना उपलब्ध कराना, संक्रामिक रोगों का प्रतिबंधन और नियंत्रण करना,

6.दो बच्चों के छोटे परिवार के मानक को अपनाने के लिए प्रोत्साहन देना,

7.सुरक्षित गर्भपात की सुविधाओं को बढ़ाना

8.शिशु विवाह प्रतिबन्ध कानून ओर जन्म –पूर्व लिंग-निर्धारण तकनीक कानून का काड़ई से पालन करना ,

9.लड़कियों की विवाह आयु को 18 वर्ष के ऊपर उठाना और बेहतर तो यह है कि इसे 20 वर्ष से भी अधिक करना,

10.ऐसी स्त्रियों को जो 21 वर्ष की आयु के पश्चात् विवाह करें और दूसरे बच्चे के जन्म के पश्चात् गर्भधारण समाप्ति करने के उपाय को स्वीकार कर ले, विशेष पुरस्कार देना,

11.चिकित्सा की भारतीय पद्धति का प्रजनन और बाल स्वास्थ्य सेवाओं का व्यवस्था के लिए समन्वय करना ,

12.गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले ऐसे व्यक्तियों को जो दो बच्चों के पश्चात् बन्ध्यकरण या नसबन्दी करवा लेते हैं, स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध कराना।

13.जनसंख्या नीति के कार्यान्वियन पर निगरानी रखने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में जनसंख्या पर एक राष्ट्रीय आयोग नियुक्त करना। इसका उद्देश्य जनसंख्या नियंत्रण की समस्याओं के बारे में अधिक ध्यान केन्द्रित करना है। चूंकि भारत 100 करोड़ जनसंख्या के निशाने को पहले ही पार कर चुका है इसलिए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति सन् 2010 तक परिवार नियोजन उपायों को तेज कर इसे 110 करोड़ तक सीमित करना चाहती है। अगले 10 वर्षों के लिए इसके लिए जो कार्य-योजना तैयार की गयी है, उसमें निम्नलिखित बातें शामिल की गयी है:क.ग्राम पंचायत स्तर पर स्वयं सहायता समूहों जिनमें अधिकतर गृहणियां शामिल हैं, स्वास्थ्य देखभाल करने वाले कामगारों और ग्राम पंचायतों के साथ विचार-विमर्श करना। ख.प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाना होगा। ग.जन्म और मृत्यु के साथ विवाहों और गर्भ के पंजीकरण को अनिवार्य बनाना होगा। सरकार यह आशा करती है कि सन् 2046 तक जनसंख्या स्थिरीकरण के उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगी। अभी फौरी रूप में आधारसंरचना को उन्नत करने के लिए 3.000 करोड रूपये का अतिरिक्त प्रावधान किया गया है ताकि गर्भ निरोध का अभी तक न पूरी की गयी जरूरतों की ओर ध्यान दिया जा सके। मोटे तौर पर जनसंख्या नीति को सही दिशा में कदम माना गया है। माईकल ब्लैसौफ , यू. एन. एफ. पी. ए. के प्रतिनिधि ने उल्लेख किया है: “यह नीति सरकार की जनसंख्या सम्बन्धी चिन्ताओं का स्पष्ट प्रमाण हैं।' इस नीति में जबरी उपायों का प्रयोग न करके "सकारात्क उपायों" पर अधिक निर्भरता रखी गयी है। किन्तु आलोचकों का आरोप है कि नयी जनसंख्या नीति परिवार–परिसीमन का सारा भारत "स्त्रियों ' पर डाल रही है। भारतीय परिवार नियोजन संस्था की अध्यक्ष डा. नीना पुरी ने सरकार की आलोचना करत हुए कहाः “यह नीति पुरूष-सहयोग पर "नरम" है। नयी नीति का सन्देश यह है कि जनसंख्या नियंत्रण का भार स्त्रियां सहेंगी और पुरूष बड़ी आसानी से इसके द्वारा मुक्त कर दिए गए है।" नीति में केवल स्त्रियों के लिए गर्भधारण की समाप्ति के उपायों को स्वीकार करने के लिए

प्रोत्साहनों की व्यवस्था है। यह कहीं बेहतर होता यदि नीति में दो बच्चों के बाद नसबन्दी कराने के लिए पुरूषों को भी इस प्रकार के प्रोत्साहन उपलब्ध कराए जाते। इस तर्क में काफी बल है और सरकार को प्रोत्साहनों के बारे में संशोधन करना चाहिए ताकि परिवार के दोनों साझीदारों-पुरूष एवं स्त्री पर जनसंख्या नियंत्रण का भार समान रूप से डाला जा सके।

1.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

"अति जनसंख्या वृद्धि आर्थिक प्रगति की समस्याओं में से एक सबसे कठिन समस्या रह जाती है" (डेविड रॉकफैलर) । इस कथन की समीक्षा भारत के संदर्भ में कीजिए।

जनसंख्या और आर्थिक विकास पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

विकासशील देशों के आर्थिक विकास पर जनसंख्या की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

1.6 सारांश (Summary)

1.7 शब्दावली (Glossary)

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

सिन्हा, बी. सी. एंव पुष्पा सिन्हा (2011), "जनांकिकी के सिद्धान्त", मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली।

चौबे, पी. के. (2000), "भारत में जनसंख्या नीति", कनिष्ट प्रकाशन, नई दिल्ली।

मिश्र, प्रकाश (2012), "जनांकिकी', साहित्य भवन पब्लिकेशन, दिल्ली।

Quoted by Bhale Rao in Bhartiya Krishi Arthanshastr.

P.K. Wattal: Population Problem in India.

6.Sax Kaal, The Population, Explosion, Foreeign Policy Association.

1.10 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

अग्रवाल, एस. एन. (1972), "भारत की जनसंख्या समस्या', टाटा मैक्ग्रा हिल कम्पनी, मुम्बई।

दत्त, रूद्र एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), "भारतीय अर्थ व्यवस्था ', एस. चन्द एण्ड कम्पनी , नई दिल्ली।

1.11निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

इकाई-2 जनसंख्याकीगुणवत्ताकीअवधारणा
(Concept of Population Quality)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)
2.2उद्देश्य (Objectives)
2.3 जनसंख्याकीगुणवत्ता: एकपरिचय(Population Quality: AnIntroduction)
2.4जनसंख्याकीगुणवत्ताकीअवधारणा(Concept of Population Quality)
2.5 जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्तामापनेकेसूचकांक (IndicesMeasuringtheQualityofLifeofPopulation)
2.5.1 जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांक (PhysicalQualityofLifeIndex)
2.5.1.1 जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांककानिर्माण(CreationofPhysicalQualityofLifeIndex)
2.5.1.2 जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांककेनिर्माणहेतुउदाहरण(ExampleforConstructionofPhysicalQualityof LifeIndex)
2.5.2 मानवविकाससूचकांक (HumanDevelopmentIndex)
2.5.2.1 मानवविकाससूचकांककानिर्माण(Creationof DevelopmentIndex)
2.5.2.2 मानवविकाससूचकांककेनिर्माणहेतुउदाहरण(ExampleforConstructionof HumanDevelopmentIndex)
2.5.2.3 संयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रमद्वारामानवविकाससूचकांकपरआधारितविभिन्नस्तर(DifferentLevelsbasedonHumanDevelopmentIndexbyUnitedNationsDevelopmentProgram)
2.5.2.4मानवविकाससूचकांककीसीमाएं (Limitationsof HumanDevelopmentIndex)
2.5.2.5 मानवविकासरिपोर्ट:2013 (HumanDevelopmentReport:2013)
2.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
2.7सारांश(Summary)
2.8 शब्दावली(Glossary)
2.9 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)
2.10 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)
2.11 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)
2.12निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

जननांकिकीसेसम्बन्धितयहछठवींइकाईहै।इससेपूर्वकीइकाईकेअध्ययनकेबादआपबतासकतेहैंकिजनसंख्यावृद्धिके विभिन्नघटकक्याहैं ? औरइनकीआपसीनिर्भरताकिसप्रकारकीहै ?
जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकाअर्थव्यक्तियोंएवंसमाजोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनयापनसेलियाजाताहै।यहएकव्यापक अवधारणाहै।इसकेमानकसंकेतकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींबल्किपर्यावरण, शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, मनोरंजन, खुशी, अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनशामिलहैं।प्रस्तुतइकाईमेंजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकीअवधारणा, जीवनकीगुणवत्तामापनकेविभिन्नसूचकांकआदिसेसम्बन्धितबिन्दुओंकाविस्तारसेविश्लेषणप्रस्तुतहै।
इसइकाईकेअध्ययनकेपश्चातआपजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ता, इसकेमापनकेसूचकांकों-जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांकतथामानवविकाससूचकांककानिर्माण, जीवनकीगुणवत्ताकोदेशकेविकाससेसम्बन्धआदिकोसमझसकेंगेंतथाइसकाविश्लेषणकरसकेंगे।

2.2उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुतइकाईकेअध्ययनकेबादआप -

- बता सकेंगे कि जनसंख्या के जीवन की गुणवत्ता से क्या आशय है।
- समझा सकेंगे कि जीवन की गुणवत्ता का विकास में क्या महत्व है।
- बता सकेंगे कि जीवन की गुणवत्ता मापने के लिए सूचकांकों का निर्माण किस प्रकार किया जाता है।

2.3 जनसंख्या की गुणवत्ता: एक परिचय (Population Quality: AnIntroduction)

विश्व का प्रत्येक देश तीव्र आर्थिक विकास का आकांक्षी है।इस आकांक्षा की पूर्ति हेतु देश में दो तत्वों का होना आवश्यक है : प्रथम , प्राकृतिक संसाधन एवं द्वितीय, मानवीय संसाधन।वास्तविक रूप में, आर्थिक विकास में सबसे अधिक योगदान मानवीय संसाधन अर्थात् उस देश में उपलब्ध जनसंख्या का ही होता है। जनसंख्या के सक्रिय सहयोग के बिना आर्थिक उन्नति और विकास के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।प्राकृतिक साधन एवं पूंजी आदि को उत्पादन कार्य में लगाने के लिए मानवीय प्रयत्नों की ही आवश्यकता होती है।मनुष्य अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति से भौतिक साधनों का शोषण करता है, नवप्रवर्तनोंद्वाराउत्पादनप्रक्रियाकोविकसितकरताहैऔरइसप्रकारआर्थिकविकासकेमार्गकोप्रशस्तकरताहै।स्पष्टतःजनसंख्याआर्थिकविकासकासाधनहीनहींवरन्साध्यभीहैऔरयहविकासमेंमहत्वपूर्णभूमिकानिभातीहैपरन्तुवर्तमानसमयमेंतीव्रगतिसेबढ़तीहुईजनसंख्याएवंइसकीनिम्नगुणवत्ताएकप्रमुखसमस्याकेरूपमेंउभरकरसामनेआईहैजिसेआर्थिकविकासकीबाधाकेरूपदेखाजारहाहै।ऐसीस्थितिमेंजनसंख्याआर्थिकविकासमेंबाधानहोकरसहयोगीकीभमिकानिभाये.
इसकेलिएआवश्यकहैकिदेशकीजनसंख्याकेपरिमाणकोनियन्त्रितकियेजानेकेसाथहीइसकीगुणवत्ताकोबढ़ायाजाये।

2.4जनसंख्याकीगुणवत्ताकीअवधारणा(Concept of Population Quality)

रिचर्डटी. गिलकाकथनहैकिआर्थिकविकासएकयान्त्रिकप्रक्रियाहीनहींहैबल्किएकमानवीयउद्यमभीहै।इसकाप्रतिफलअन्तिम रूपसेमानवीयगुणों, उसकीकार्यकुशलतातथाउसकेदृष्टिकोणपरनिर्भरकरताहै।यहकथनस्पष्टकरताहैकिकिसीदेशकाविकासमानवीयप्रया

सोंकाफलहोताहै।गणवानजनसंख्याप्रगतिकेमार्गपरअग्रसरकरसकतीहै।वास्तवमें, जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकाआशयव्यक्तियोंएवंसमाजोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनयापनसेलियाजाताहै।व्यापकअर्थों में, यहअन्तर्राष्ट्रीयविकास, स्वास्थ्यएवंराजनीतिकेक्षेत्रोंआदिसेसम्बन्धितहै।स्वभाविकरूपसेलोगजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकोजीवनस्तर कीअवधारणासेजोडतेहैंजबकियहदोनोंअलग-अलगअवधारणाएंहैं।जहांजीवनस्तरएकसंकचितअवधारणाहैजोप्राथमिकरूपसेआयपरआधारितहै, वहींजीवनकीगुणवत्ताएकव्यापकअवधारणाहै।जीवनकीगुणवत्ताकेमानकसंकेतकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींब ल्किनिर्मितपर्यावरण, शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, मनोरंजन, खुशी, अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनशामिलहै।विश्वमेंलोगोंकोगुणवत्तापूर्णजीवनप्रदा नकरनेकेलिएविभिन्नदेशोंकीसरकारोंकेसाथहीगैरसरकारीसंस्थाएंएवंवैश्विकसंगठनअपनायोगदानदेरहेहैं।विश्वबैंक नेभीदुनियांकोगरीबीमुक्तकरनेकालक्ष्यरखाहैजिससेलोगोंकोभोजन, वस्त्र, आवास, स्वतन्त्रता, शिक्षातकपहुंच, स्वास्थ्यदेखभालऔररोजगारकीसुविधाएंउपलब्धहोंऔरउनकीजीवनकीगुणवत्तामेंसुधारहो।

2.5 जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्तामापनेकेसूचकांक (IndicesMeasuringtheQualityofLifeofPopulation)

किसीभीदेशकीजनसंख्याउसकीवास्तविकसम्पत्तिहोतीहै।विकासकामूलउद्देश्यलोगोंकेलिएएकऐसावातारणतैयार करनाहैजिसमेंवेदीर्घ, स्वस्थएवंसृजनात्मकजीवनकाआनन्दलेसकें।मनुष्योंकेविकासकोमापनेकेलिएसमंकोंकीआवश्यकताहोतीहै।इससन्द र्भमेंएकदेशकीजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकोमापनेहेतुसूचकांकोंकाउपयोगकियाजाताहै, जिनमेंसेदोप्रमुखतःप्रचलितसूचकांकहैं : प्रथम , जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांकतथाद्वितीय, मानवविकाससूचकांक।

2.5.1 जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांक (PhysicalQualityofLifeIndex)

मानवविकासकेसूचककेरूपमेंजीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांक (Physical Quality of Life Index – PQLI) काप्रतिपादनप्रसिद्धसमाजशास्त्रीमौरिसडेविडमौरिसनेसन् 1970 मेंकियाथा।इससूचकांककेअन्तर्गतएकदेशकेतीनमहत्वपूर्णबिन्दुओंकीउपलब्धिकेआधारपरजीवनकाएकसंयुक्तभौति कगुणवत्तासूचकांकनिकालाजाताहै

1. जीवनप्रत्याशा (Life Expectancy): जीवनप्रत्याशासेआशयलागोंकेजीवितरहनेकीऔसतआयुसेहै।यहएकदेशकेनागरिकोंकेस्वास्थ्यतथासभ्यताएवंआर्थि कविकासकासूचकहै।

2. शिशुमृत्युदर (Child Mortality Rate): शिशुमृत्युदरकातात्पर्यएकवर्षकीआयुसेपूर्वप्रतिहजारसजीवजन्मितबच्चोंपरमृतबच्चोंकीसंख्यासेहै।

3. साक्षरता (Literacy):इससेआशयतात्पर्यप्रति 100 व्यक्यिोंपरसाक्षरलोगोंकीसंख्यासेहै।

सामान्यीकरणकीप्रक्रिया(Normalisation Proces) : इससूचकांककानिर्माणकरनेकेलिएसूचकांककेतीनोंसंकेतकों (जीवनप्रत्याशा , शिशुमृत्युदरतथासाक्षरता) कीमापकरकेइनकासामान्यीकरणकियाजाताहै।चूंकियहतीनोंसंकेतकएकप्रकृतिकेनहींहैं, अतःइनकोअलग-अलगमापाजाताहै, जैसे- जीवनप्रत्याशाकोवर्षोंकेरूपमें ,

शिशुमृत्युदरकोप्रतिहजारजीवितजन्मकेरूपमेंतथासाक्षरताकोप्रतिशतकेरूपमेंमापाजाताहै।सामान्यीकरणहेतुमौरिसनेप्रत्येकसंकेतककोअधिकतमएवंन्यूनतममूल्यप्रदानकियाहै।इसेतालिकासेस्पष्टकियाजासकताहै :

तालिका 1 : संघटकसंकेतकोंकेउच्चतमतथान्यूनतममूल्य

संघटकसंकेतक	उच्चतममूल्य	न्यूनतममूल्य	विस्तार
जीवनप्रत्याशा (एकवर्षपर) (LEI)	77	38	39
मौलिकसाक्षरतादर (BLR)	100	0	100
शिशुमृत्युदर (IMR)	229	9	220

तलिका 1 सेस्पष्टहैकिजीवनकेभौतिकगुणवत्तासूचकांक (PQLI) केद्वाराएकदेशकीउपलब्धिको 1 से 100 केपैमानेकेबीचमापाजाताहैअर्थात् PQLI कान्यूनतममूल्य 1 तथाअधिकतममूल्य 100 होगा।जीवनप्रत्याशाके 100 कीऊपरीसीमा 77 वर्षमानीगयीहैजबकि 1 कीनिचलीसीमा 38 वर्षमानीगयीहै।इनदोनोंसीमाओंकेबीप्रत्येकदेशकीजीवनप्रत्याशाको 1 से 100 केबीचमानागयाहै।इसीप्रकार , शिशुमृत्युदरकेलिएउच्चतमसीमा 9 प्रतिहजारतथानिम्नतमसीमा 229 प्रतिहजारनिर्धारितकीगयीहै।साक्षरतादरोंको 1 से 100 केप्रतिशतकेरूपमेंमापागयाहै।स्पष्टहैकिइसपैमानेकेअनुसार 1 कोकिसीदेशकीसबसे 'खराबउपलब्धि' तथा 100 कोसबसेअच्छीउपलब्धि' मानाजाताहै।

2.5.1.1 जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांककानिर्माण(CreationofPhysicalQualityofLifeIndex):-

इससूचकांककेनिर्माणहेतुनिम्नलिखितदोचरणपूर्णकियेजातेहैं :

I चरण: संघटकसूचकांकोंकानिर्माणसूचकांकनिर्माणकेप्रथमचरणमेंतीनसंघटकसूचकांकोंकानिर्माणकियाजाताहै।इसमेंधनात्मकतथाऋणात्मकसंकेतकोंकेउपलब्धिस्तरकोज्ञातकरनेहेतुअलग-अलगसूत्रोंकाउपयोगकियाजाताहै।धनात्मकसंकेतकअर्थात्जीवनप्रत्याशातथामौलिकसाक्षरतादरकीउपलब्धिस्तरकोजाननेकेलिएनिम्नलिखितसूत्रकाप्रयोगकियाजाताहै:

उपलब्धिस्तर=(वास्तविकमूल्य - न्यूनतममूल्यउपलब्धि)/(उच्चतममूल्य - न्यूनतममूल्य)

इसीतरहऋणात्मकसंकेतकअर्थात्शिशुमृत्युदरकेउपलब्धिस्तरकोज्ञातकरनेकेलिएनिम्नलिखितसूत्रकाप्रयोगकियाजाताहै :

उपलब्धिस्तर=(उच्चतममूल्य – वास्तविकमूल्यउपलब्धि)/(उच्चतममूल्य - न्यूनतममूल्य)

II चरण:औसतनिकालना

PQLI

निर्माणकेद्वितीयचरणमेंउपर्युक्ततीनोंसंघटकोंकेव्यक्तिगतसूचकांकबनानेकेबादइनकाऔसतनिकाललियाजाताहै।

PQLI =(LEI + BLI + IMI PQLI)/3

2.5.1.2 जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक के निर्माण हेतु उदाहरण (Example for Construction of Physical Quality of Life Index)

मानलीजिएकिभारतमेंजीवनप्रत्याशा 70 वर्ष , शिशुमृत्युदर 50 प्रतिहजारतथामौलिकसाक्षरतादर 75 प्रतिशतहै।इससे PQLI निर्माणकानिर्माणइसप्रकारहोगा : प्रथमचरण :

वास्तविकमूल्य - न्यूनतममूल्य

1. जीवनप्रत्याशासूचकांक(LEI)=(वास्तविक मूल्य-न्यूनतम मूल्य)/(उच्चतममूल्य -न्यूनतम)

=(70-38)/(77-38)

=32/39

=.82

2. मौलिकसाक्षरतासूचकांक (BLI)=(वास्तविक मूल्य-न्यूनतम मूल्य)/(उच्चतममूल्य -न्यूनतम)

=(70-0)/(100-0)

=75/100

=.75

3. शिशु मृत्युसूचकांक (IMI)=(वास्तविक मूल्य-न्यूनतम मूल्य)/(उच्चतममूल्य -न्यूनतम)

=(229-50)/(229-9)

=179/220

=.81

द्वितीयचरण :

PQLI=(LEI + BLI + IMI)/3

=(.82 + .75 + .81)/3

=(LEI + BLI + IMI)/3

=.79

एकदेशमेंजीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांकऊंचाहोनेकीस्थितिमेंउसदेशकेलोगों (जनसंख्या) कीजीवनकीगुणवत्ताभीऊंचीमानीजातीहै।यहसूचकांकमौरिसद्वाराकियागयाएकमहत्वपूर्णप्रयासहैजोसकलराष्ट्रीय उत्पादतथाअन्यसम्भावितसंकेतकोंकोअनदेखाकरतीनमहत्वपूर्णक्षेत्रों-जीवनप्रत्याशा, साक्षरतादरएवंशिशुमत्यदरपरकेन्द्रितहै।यहजीवनकीगणवत्ताकीअन्यमापोंकीतलनामेंएकसरलमापहै।वर्तमानमेंइसकास्थानमानवविकाससूचकांकनेलेलियाहै।

2.5.2 मानवविकाससूचकांक (HumanDevelopmentIndex)

अन्तर्राष्ट्रीयविकासकीमापमेंसामान्यतयाउपयोगकियेजानेवालेमानवविकाससूचकांक (Human Development Index - HDI) काप्रतिपादनसन् 1990 मेंसंयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रम (UNDP) सेजुड़ेप्रसिद्धपाकिस्तानीअर्थशास्त्रीमहबूब-उल-हकतथाभारतीयअर्थशास्त्रीअमर्त्यसेनआदिनेकियाथा।इससूचकांककेनिर्माणकाउद्देश्यविकासकेअर्थशास्त्रकोराष्ट्रीय आयलेखांकनसेजनकेन्द्रितनीतियोंकीओरकेन्द्रितकरनाथा।यहसूचकांकसंयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रमकेअन्तर्गतबनाये औरप्रकाशितकियेजातेहैं।सन् 1990 सेप्रतिवर्ष UNDP द्वाराएकमानवविकासरिपोर्टजारीकीजातीहैजिसमेंविभिन्नदेशोंकाश्रेणीकरणउनकेमानवविकाससूचकांककेआधार परकियाजाताहै।इससचकांककाउपयोगविकसित. विकासशीलएवंअल्पविकसितदेशों काअन्तरजाननेएवंआर्थिकनीतियोंकाजीवनकीगुणवत्तापरप्रभावकीमापकरनेकेलिएभीकियाजाताहै।मानवविकास प्रतिवेदन 1990 केअनुसार, विकासकेवललोगोंकीआयतथापूंजीकाहीविस्तारनहींबल्कियहमानवकीकार्यप्रणाली-कार्यकरनेकेतरीकेतथाक्षमताओंमेंउन्नयनकीप्रक्रियाहै।विकासकीइसीविचारधाराको 'मानवविकास' कानामदियागयाहै।मानवविकाससूचकांकतीनसामाजिकअभिसूचकों - दीर्घायु , शैक्षणिकउपलब्धिएवंजीवननिर्वाहस्तरपरआधारितहै।इनअभिसूचकोंकोइसप्रकारव्यक्तकियाजासकताहै :

1. दीर्घायुअथवाजन्मकेसमयजीवनप्रत्याशा (Longevity or Life Expectancy at Birth) :दीर्घायुअथवाजन्मकेसमयजीवनप्रत्याशाकोवर्तमानसमयमेंअर्थशास्त्रियोंद्वारान्यूनतम 25 वर्षतथाअधिकतम 85 वर्षमानाजाताहै।

2. शैक्षणिकउपलब्धि (Educational Attainment): शैक्षणिकउपलब्धिकीमापनिम्नलिखितदोचरोंद्वाराकीजातीहै:

(i) प्रौढ़साक्षरतादर (Adult Literacy Ratio - ALR): 15 वर्षयाइससेअधिकआयुके 100 व्यक्तियोंमेंसेजितनेव्यक्तिसाधारणकथनकोपढ़तथालिखसकतेहैं, उसेप्रौढ़साक्षरतादरकहाजाताहै।

(ii) सकलनामांकनदर (Gross Enrolment Ratio - GER):सकलनामांकनदरदेशकीकुलजनसंख्याएवंसमस्तनामांकितछात्रोंकाअनुपातहोताहै।दूसरेशब्दोंमें, सकलनामांकनदरकुलजनसंख्याकावहभागजिसकानामांकनकिसीप्राथमिक, माध्यमिक, उच्चमाध्यमिकस्कूलअथवाकिसीविश्वविद्यालयस्तरपरहुआहै।किसीदेशमेंसकलनामांकनदरकेअधिकहोनेकीस्थितिमें उसकीजनसंख्याकीजीवनकीगुणवत्ताभीअधिकहोगी।इसदरकोज्ञातकरनेकेलिएनिम्नलिखितसूत्रकाप्रयोगकियाजाताहै:

शिक्षाकेलिएनामांकितछात्रोंकीसंख्यासकलनामांकनदर (GER) = कुलजनसंख्या

शैक्षणिकउपलब्धिनिर्देशांक (EAI) कोज्ञातकरनेहेतुप्रौढ़साक्षरतादरको 2/3 भारदियाजाताहैजबकिसकलनामांकनदरको 1/3 भारदियाजाताहै।इसप्रकार,

E.A.I=2/3 ALR+1/3 GER

3 जीवननिर्वाहस्तरअथवाप्रतिव्यक्तिवास्तविकसकलघरेलूउत्पादयाआय (Subsistence Level or Per Capita Real Gross Domestic Product or Income) :

इसकेमाध्यमसेलागोंकीवस्तुओंतथासेवाओंकेखरीदनेकीक्षमताअर्थात्क्रयशक्तिअथवालोगोंकेजीवननिर्वाहस्तरकोज्ञातकियाजाताहै।इसकेलिएनिम्नलिखितसूत्रकाप्रयोगकियाजाताहै :

प्रतिव्यक्तिवास्तविकसकलघरेलूउत्पाद=(स्थिरकीमतोंपरसकलघरेलूउत्पाद)/(कुलजनसंख्या)

2.5.2.1 मानवविकाससूचकांककानिर्माण(CreationofDevelopmentIndex)

मानवविकाससूचकांककेनिर्माणहेतुनिम्नलिखितदोचरणपूर्णकियेजातेहैं :

I चरण: व्यक्तिगतयाविमीयसूचकांकोंकानिर्माणमानवविकाससूचकांककेनिर्माणहेतुसर्वप्रथमतीनोंअभिसूचकों (दीर्घायु, शैक्षणिकउपलब्धिएवंजीवननिर्वाहस्तरअथवाप्रतिव्यक्तिवास्तविकसकलघरेलूउत्पादयाआय) केअलग-अलगविमीयसूचकांकज्ञातकियेजातेहैं।प्रत्येकविमाकाअधिकतममूल्यएक (1) तथान्यूनतममूल्यशून्य (0) होताहै।

व्यक्तिगतसूचकांकबनातेसमयध्यानदेनेयोग्यबातें :

व्यक्तिगतसूचकांककोज्ञातकरतेसमयदोबातोंकाआवश्यकरूपसेध्यानरखनाहोताहै - प्रथम , अभिसूचकोंकासामान्यीकरणतथाद्वितीय, वास्तविकसकलघरेलूप्रतिव्यक्तिआयकीगणना।।

1. अभिसूचकोंकासामान्यीकरण(Normalisation of Indicators): मानवविकाससूचकांककेसहीनिर्माणहेतुआवश्यकहैकिइसकेनिर्धारकतीनोंहीअभिसूचकोंकेमापकीइकाइयांसमरूप हों।परन्तु, इसकेतीनोंअभिसूचकोंकोअलग-अलगइकाइयोंमेंमापाजाताहै, जैसे- जीवनप्रत्याशाकोवर्षोंमेंमापतेहैं , साक्षरताकोप्रतिशतकेरूपमेंतथाप्रतिव्यक्तिवास्तविकसकलघरेलूउत्पादयाआयकोडॉलरमेंमापतेहैं।इससमस्याकेनिराकरणहेतुतीनोंअभिसूचकोंकोमापकीएकसामान्यइकाईमेंपरिवर्तितकियाजाताहै।इसीकोअभिसूचकोंकासामान्यीकरणकहाजाताहै।अभिसूचकोंकेसामान्यीकरणहेतुनिम्नलिखितसूत्रकाप्रयोगकियाजाताहै :

सामान्यसूचककामूल्य=(वास्तविकमूल्य - न्यूनतममूल्य)/(उच्चतममूल्य - न्यूनतममूल्य)

संयुक्तराष्ट्रसंघद्वारामानवविकाससूचकांककेनिर्माणकेलिएनिर्धारितमूल्यनिम्नतालिकाकेअनुसारहैं - तालिका 2 : मानवविकाससूचकांककेसंकेतकोंकेन्यूनतमतथाउच्चतममूल्य

संकेतक न्यूनतममूल्य उच्चतममूल्य

1. जीवनप्रत्याशा 25 85

2. शैक्षणिकउपलब्धि

(i) प्रौढ़साक्षरतादर

(ii) सकलनामांकनदर

0%

0% 100%

100 %

3. क्रयशक्तिसमतापरआधारितवास्तविकप्रतिव्यक्तिसकलघरेलूउत्पाद $ 100 $ 40,000 |

2. वास्तविकसकलघरेलूप्रतिव्यक्तिआयकीगणना (Calculating Real Gross Domestic Per Capita Income):

पूर्वमेंबतायाजाचुकाहैकिइससूचकांककेनिर्माणहेतुजीवनस्तरकोवास्तविकसकलघरेलूप्रतिव्यक्तिआयकेद्वारामापा जाताहै, परन्तुइसमेंदोसंशोधनकरनेपड़तेहैं -

प्रथमसंशोधन :

अन्तर्राष्ट्रीयस्तरपरतुलनाकरनेएवंइसतुलनाकातर्कपूर्णतथासुविधाजनकबनानेकेलिएप्रतिव्यक्तिआयकोयू.एस. डॉलरमेंपरिवर्तितकियाजाताहै।प्रतिव्यक्तिआयकेइसपरिवर्तनकेलिएअन्तर्राष्ट्रीयमुद्राबाजारमेंप्रचलितविनिमयदर केस्थानपरक्रयशक्तिसमताकाउपयोगकियाजाताहै।

क्रयशक्तिसमतादरवहदरहैजोकोईदोदेशोंकीमुद्राओंकेबीचउनकीमुद्राकीएकइकाईकीक्रयशक्तिकेआधारपरनिर्धारित कीजातीहै।उदाहरणकेलिए, अमेरिकामेंवस्तुओंकाएकसमूह 1 डॉलरमेंमिलताहैजबकिभारतमेंवहीसमह 10 रूपयेमेंउपलब्धहैतोक्रयशक्तिसमताआधारितविनिमयदर 1 डॉलर = 10 रूपयेहोगी।

द्वितीयसंशोधन :

अर्थशास्त्रकाएकप्रसिद्धनियमबताताहैकिकिसीवस्तुकीस्टॉकयाबचतमात्राबढ़नेसेउसवस्तुसेप्राप्तहोनेवालीउपयोगिताघटतीजातीहै।यहीनियममुद्रा (डॉलर) परभीलागूहोताहै।अर्थात्जैसे-जैसेव्यक्तिकीआयमेंवृद्धिहोतीजातीहै , वैसे-वैसेमुद्राकीअगलीप्रत्येकइकाईसेमिलनेवालीउपयोगिताअथवासन्तुष्टिकमहोतीजातीहै।धीरे-धीरेएकसीमाकेबादयहशून्यहोजाताहै।स्पष्टहैकिव्यक्तिकेसुखयाजीवनस्तरकोव्यक्तिकेपासमुद्राकीमात्राकेविविधमानकद्वारानहींमापाजासकताहै,

इसलिएसंयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रमविभिन्नदेशोंमेंजीवनस्तरकेसूचकोंहेतुप्रतिव्यक्तिआयकोक्रयशक्तिसमताकेलिएसमन्वितकरनेवालीविधिनहींमानताहै।इसकेलिएवहकेन्द्रीयस्तरकेलघुगुणांकरूपान्तरणकोध्यानमेंरखताहै, जैसे

जीवनस्तर = लॉगयालघुगुणक (PPP$ मेंप्रतिव्यक्तिआय)

II चरण: तीनोंसूचकांकोंकासरलऔसतनिकालना

जीवनप्रत्याशा, शैक्षणिकउपलब्धितथावास्तविकप्रतिव्यक्तिसकलघरेलूउत्पादसूचकांकअलग-अलगनिर्मितकरनेकेपश्चात्तीनोंसूचकोंकासरलऔसतनिकालकरमानवविकाससूचकांककानिर्माणकियाजाताहै।इसकेनिर्माणहेतुनिम्नलिखितसूत्रकाउपयोगकियाजाताहै : जीवनप्रत्याशासूचकांक + शैक्षणिकउपलब्धिसूचकांक + वास्तविकप्रतिव्यक्तिसकलघरेलूउत्पादसूचकांकमानवविकाससूचकांक =

HDI=(LSI + EAI +SLI)/3

2.5.2.2 मानव विकास सूचकांक के निर्माण हेतु उदाहरण (Example for Construction of Human Development Index):-

निम्नलिखितआंकड़ोंसेमानवविकाससूचकांककानिर्माणकीजिए -

1. जन्मकेसमयजीवनप्रत्याशा70 वर्ष
2. शैक्षणिकउपलब्धि

(i) प्रौढ़साक्षरतादर 75 प्रतिशत

(ii) सकलनामांकनदर 65 प्रतिशत

3. प्रतिव्यक्तिसकलघरेलूउत्पाद (क्रयशक्तिसमतापरआधारित) 284 डॉलर

गणना :

वास्तविकजीवनप्रत्याशा – न्यूनतमजीवनप्रत्याशा

1. जीवनप्रत्याशासूचकांक(LEI)=(वास्तविकजीवनप्रत्याशा – न्यूनतमजीवनप्रत्याशा)/(अधिकतमजीवनप्रत्याशा – न्यूनतमजीवनप्रत्याशा)

=(70-25)/(85-25)

=45/60

=.75

2. शैक्षणिकउपलब्धिसूचकांक (Educational Achievement Index)

(i)प्रौढ़साक्षरतासूचकांक(Adult Literacy Rate) = (वास्तविकप्रौढ़साक्षरतादर – न्यूनतमसाक्षरतादरप्रत्याशा)/(अधिकतमसाक्षरतादर – न्यूनतमसाक्षरतादर)

=(70-0)/(100-0)

=.75

(ii) सकलनामांकनसूचकांक(Gross Enrollment Index)=

=65/100

=.65

शैक्षणिकउपलब्धिसूचकांक=2/3 प्रौ.साक्ष.सूचकांक+1/3 स0 नामां0

=2/3*.75+1/3*.65

3. प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद(G.D.P.per Capita)=(Log (284) - Log (100))/(Log (40,000) - Log (100))

=.56

मानवविकाससूचकांक=(जीवनप्रत्याशासूचकांक + शैक्षणिकउपलब्धिसूचकांक +वास्तविकप्रतिव्यक्तिसकलघरेलूउत्पादसूचकांक)/3

=(0.75 + 0.717 + 0.56)/3

=2.027/3

=.676

2.5.2.3

संयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रमद्वारामानवविकाससूचकांकपरआधारितविभिन्नस्तर(DifferentLevelsbasedonHumanDevelopmentIndexbyUnitedNationsDevelopmentProgram)

संयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रम (UNDP) मानवविकाससूचकांक (HDI) केमूल्यकेआधारपरविश्वकेविभिन्नदेशोंकोनिम्नलिखिततीनस्तरोंपररखताहै |

HDI मूल्य मानवविकासक्रम

0.8 सेऊपर उच्चमानवविकास (विकसितदेश)

0.5 से 0.79 मध्यममानवविकास (विकासशीलदेश)

0.5 सेकम निम्नमानवविकास (अल्पविकसितदेश)

प्रत्येकदेशकेमानवविकाससूचकांककामूल्यबताताहैकिउसदेशमेंपरिभाषितलक्ष्यों (85 वर्षकीऔसतजीवनअवधि , 100 प्रतिशतअर्थात्सभीकेलिएशिक्षाऔरउच्चजीवनस्तर) कीप्राप्तिहेतुकितनेप्रयासकियेगयेहैंतथाअभीऔरकितनेप्रयासकियेजानेकीआवश्यकताहै।यहसचकांकमल्यकेआधार परविश्वकेविभिन्नदेशोंका आपसीक्रमनिर्धारितकरताहै।सूचकांककान्यूनतममूल्यशून्य (o) तथाअधिकतममूल्यएक (1) होताहै।

2.5.2.4मानवविकाससूचकांककीसीमाएं (LimitationsofHumanDevelopmentIndex)

मानवविकाससूचकांक (HDI) कीसीमाएंनिम्नलिखितहैं:

1. सूचकांककेसंकेतकजीवनप्रत्याशा, साक्षरतादर (शैक्षणिकउपलब्धि) एवंजीवननिर्वाहस्तरतीनोंहीमूलरूपसेआयसेसम्बन्धितहैं।एकदेशमेंप्रतिव्यक्तिआयकेअधिकहोनेकीस्थितिमेंवहांजीवनप्रत्याशा, साक्षरतादरएवंजीवननिर्वाहस्तरतीनोंहीउच्चस्तरकेहोतेहैं।इसीकारणसेउच्चमानवविकाससूचकांकवालेदेशअधिकतरधनीदेशहीहोतेहैं।

2. मानवविकाससूचकांककेमाध्यमसेएकदेशमेंव्याप्तविषमताओंकेस्तरकाज्ञाननहींहोताहै।यहउसदेशमेंपायीजानेवाली विषमताओंकोदूरकरनेमेंकोईसहायतानहींकरताहै।

3. मानवविकाससचकांकमेंमात्रतीनसचकोंजीवनप्रत्याशा, साक्षरतादर (शैक्षणिकउपलब्धि) एवंजीवननिर्वाहस्तरकोहीशामिलकियाजाताहै, जबकिमानवविकासकेअन्यमहत्वपूर्णसामाजिकसूचक-मातृत्वमृत्युदर, शिशुमृत्युदर, पोषणआदिकोछोड़दियाजाताहै।

2.5.2.5 मानवविकासरिपोर्ट2013 (HumanDevelopmentReport:2013)

संयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रमद्वारा 14 मार्च , 2013 कोनवीनमानवविकासरिपोर्टजारीकीगईहैजोवर्ष 2012 केआंकड़ोंपरआधारितहै।इसरिपोर्टमेंसंयुक्तराष्ट्रके 193 सदस्यदेशोंमेंसे 185 कोशामिलकियागयाहैजबकि 8 देशोंकोआंकड़ोंकेअभावमेंशामिलनहींकियागयाहै।रिपोर्टकेअनुसार, सूचकांकमेंविश्वमेंप्रथमस्थानपरनॉर्वे (HDI 0.955), द्वितीयस्थानपरऑस्ट्रेलिया (HDI 0.938) तथातृतीयस्थानपरयू.एस.ए. (HDI 0.937) जबकिभारत

(HDI 0.554) दोस्थानकीगिरावटकेसाथ 136 वेंस्थानपरहै।भारतकेपड़ोसीदेशश्रीलंका 92, चीन 101, भूटान 140, बांग्लादेशएवंपाकिस्तान 146 तथानेपाल 157 वेंस्थानपरहै।

2.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्रश्न 01 : जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्तासेक्याआशयहै?

उत्तर :

जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकाआशयव्यक्तियोंएवंसमाजोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनयापनसेलियाजाताहै।जीवनकीगुणवत्ताएकव्यापकअवधारणाहैजिसकेमानकसंकेतकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींबल्किनिर्मितपर्यावरण, शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, मनोरंजन, खुशी, अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनशामिलहैं।

प्रश्न 02 : जीवनकीगुणवत्तामापनेकेप्रमुखसूचकांककौन-सेहैं?

उत्तर : जीवनकीगुणवत्ताकोमापनेहेतुउपयोगकियेजानेवालेप्रमुखप्रचलितसूचकांकहैं :
जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांकतथामानवविकाससूचकांक।
बहुविकल्पीयप्रश्न।

1. जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांककिसउपलब्धिकेआधारनिकालाजाताहै:

(अ) जीवनप्रत्याशा,

(ब) शिशुमृत्युदर,

(स) साक्षरतादर,

(द) तीनोंकी।

2. मानवविकासरिपोर्ट 2013 केअनुसारभारतकास्थानहै : :

(अ) 136 वां,

(ब) 134 वां,

(स) 127 वां,

(द) 126 वां।

उत्तर: 1. (द), 2. (अ)।

प्रष्न 04 : निम्नलिखितकथनोंमेंसत्य/असत्यबताईये।

(क) जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांककाप्रतिपादनप्रसिद्धसमाजशास्त्रीमौरिसडेविडमौरिसनेसन् 1970 मेंकियाथा।

(ख) जीवनकीगणवत्ताएवंदेशकेआर्थिकविकासमेंसीधासम्बन्धहोताहै।

(ग) संयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रममानवविकाससूचकांकमूल्यकेआधारपरविश्वकेविभिन्नदेशोंकोचारस्तरोंपररखताहै।

उत्तर : (क) सत्य, (ख) सत्य, (ग) असत्य।

2.7सारांश(Summary)

देशकीआर्थिकउन्नतिमेंउपलब्धजनसंख्याकामहत्वपूर्णयोगदानहोताहै।वास्तवमेंकिसीदेशकाविकासमानवीयप्रयासोंकाहीफलहोताहै।इससन्दर्भमेंआवश्यकहैकिजनसंख्याकीगुणवत्ताकोबढ़ायाजायेक्योंकिगुणवानजनसंख्याएकदेशकोप्रगतिकेमार्गपरअग्रसरकरसकतीहै।जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकाआशयव्यक्तियोंएवंसमाजोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनयापनसेलियाजाताहै।स्वभाविकरूपसेलोगजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकोजीवनस्तरकीअवधारणासेजोड़तेहैं जबकियहदोनोंअलग-अलगअवधारणाएंहैं।जहांजीवन-स्तरएकसंकुचितअवधारणाहैजोप्राथमिकरूपसेआयपरआधारितहै, वहींजीवनकीगुणवत्ताएकव्यापकअवधारणाहै।जीवनकीगुणवत्ताकेमानकसंकेतकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींबल्किनिर्मितपर्यावरण, शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, मनोरंजन, खुशी, अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनशामिलहैं।विश्वमेंलोगोंकोगुणवत्तापूर्णजीवनप्रदानकरनेकेलिएविभिन्नदेशोंकीसरकारोंकेसाथहीगैरसरकारीसंस्थाएंएवंवैश्विकसंगठननिरन्तरप्रयासरतहैं।जीवनकीगुणवत्ताकोमापनेहेतुजीवनकाभौतिकगुणवत्तासूचकांक, मानवविकाससूचकांकआदिकाउपयोगकियाजाताहै।जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांककाप्रतिपादनप्रसिद्धसमाजशास्त्रीमौरिस डेविडमौरिसनेसन् 1970 मेंकियाथा।यहजीवनप्रत्याशा, साक्षरतादरएवंशिशुमृत्युदरपरकेन्द्रितहै।यहजीवनकीगुणवत्ताकीअन्यमापोंकीतुलनामेंएकसरलमापहै।वर्तमानमेंइसकास्थानमानवविकाससचकांकनेलेलियाहै।अन्तर्राष्ट्रीयविकासकीमापमेंसामान्यतयाउपयोगकियेजानेवालेमानवविकाससूचकांककाप्रतिपादनसन् 1990 मेंसंयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रम (UNDP) सेजुड़ेप्रसिद्धपाकिस्तानीअर्थशास्त्रीमहबूब-उल-हकतथाभारतीयअर्थशास्त्रीअमर्त्यसेनआदिनेकियाथा।मानवविकाससूचकांकजीवनप्रत्याशा, शैक्षणिकउपलब्धिएवंजीवननिर्वाहस्तरपरआधारितहै।मानवविकाससूचकांककामूल्यबताताहैकिएकदेशमेंपरिभाषितलक्ष्योंकीप्राप्तिहेतुअभीऔरकितनेप्रयासकियेजानेकीआवश्यकताहै।यहसूचकांकमूल्यकेआधारपरविश्वकेविभिन्नदेशोंकाआपसीक्रमनिर्धारितकरताहै।संयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रमद्वाराजारीनवीनमानवविकासरिपोर्टकेअनुसार, सूचकांकमेंविश्वमेंप्रथमतीनस्थानोंपरक्रमशःनॉर्वे, ऑस्ट्रेलियातथायू.एस.ए. हैजबकिभारत 136 वेंस्थानपरहै।भारतकेपड़ोसीदेशश्रीलंका 92, चीन 101, भूटान 140, बांग्लादेशएवंपाकिस्तान 146 तथानेपाल 157 वेंस्थानपरहै।

2.8 शब्दावली(Glossary)

मानवविकास (Human Development) : लोगोंकीआयतथापूंजीकेविस्तारकेसाथहीमानवकीकार्यप्रणालीकार्यकरनेकेतरीकेतथाक्षमताओंमेंउन्नयनकीप्रक्रियाको 'मानवविकास' कानामदियागयाहै।

जीवन-प्रत्याशा (Life Expectancy) : जीवन-प्रत्याशासेआशयजीवितरहनेकीआयुसेहै।जबदेशमेंएकशिशुजन्मलेताहैतोउसकेकितनेवर्षतकजीवितरहनेकीआशाकीजातीहै, इसजीवितरहनेकीआशाकोहीजीवन–प्रत्याशाअथवाप्रत्याशितआयुअथवाऔसतआयुकहाजाताहै।

2.9 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

उत्तर 01 : जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकाआशयव्यक्तियोंएवंसमाजोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनयापनसेलियाजाताहै।जीवनकीगुण

वत्ताएकव्यापकअवधारणाहैजिसकेमानकसंकेतकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींबल्किनिर्मितपर्यावरण, शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, मनोरंजन, खुशी, अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनशामिलहैं।

उत्तर 02 : जीवनकीगुणवत्ताकोमापनेहेतुउपयोगकियेजानेवालेप्रमुखप्रचलितसूचकांकहैं : जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांकतथामानवविकाससूचकांक।

बहुविकल्पीयप्रश्न।

उत्तर: 1. (द), 2. (अ)।

सत्य/असत्य

उत्तर : (क) सत्य, (ख) सत्य, (ग) असत्य।

2.10 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

Human Development Reports, United Nations Development Programme

http://en.wikipedia.org/wiki/List_of_countries_by_Human_Development_Index

2.11 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

कुमार, वी. (2007): जनांकिकी, साहित्यभवनपब्लिशर्सएण्डडिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., आगरा।

पन्त, जे.सी. (2006): जनांकिकी, विशालपब्लिशिंगकं., जालन्धर।

सिन्हाएवंसिन्हा (2005) : जनसंख्याकेसिद्धान्त, मयूरपेपरबैक्स, नोएडा।

गुप्त, एस. एन (2009) : जनांकिकीकेमूलतत्व, वृंदापब्लिकेशन्सप्रा. लि., दिल्ली।

2.12निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

जीवनकीगुणवत्तासेआपक्यासमझतेहैं ? इसकेमापनहेतुउपयोगकियेजानेवालेसूचकांकोंकोविस्तारसेबताइये।

जीवनकीभौतिकगुणवत्तासूचकांककोस्पष्टकरतेहुएइसकेनिर्माणकीविधिकावर्णनकीजिए।

मानवविकाससूचकांककेनिर्माणकेविभिन्नचरणबताइये।इससूचकांककीक्यासीमाएंहैं ?

'आर्थिकविकासकाप्रतिफलअन्तिमरूपसेमानवीयगुणों, उसकीकार्यकुशलतातथाउसकेदृष्टिकोणपरनिर्भरकरताहै।विवेचनाकीजिए।

भारतकोमानवविकासकेक्षेत्रमेंविशेषप्रयासकरनेकीआवश्यकताहै।समीक्षाकीजिए।

इकाई-3जनसंख्याकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारक
(Effective Factors of Population Quality)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)
3.2 उद्देश्य (Objectives)
3.3 जनसंख्याकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारक (Influential Factors of Population Quality)
3.3.1 आर्थिककारक (Economic Factors)
3.3.2 सामाजिककारक (Social Factors)
3.3.3.मनोवैज्ञानिककारक (Psychological Factors)
3.3.4 अन्यकारक (Other Factors)
3.4 यूनाईटेडनेशन्सयूनीवर्सलडिक्लेरेशनऑफह्यूमनराइट्स 1948 द्वाराजीवनकीगुणवत्ताकेमूल्यांकनहेतुबतायेगयेविभिन्नकारक (Various Factors Mentioned by the United Nations Universal Declaration of Human Rights 1948 to Evaluate the Quality of Life)
3.5 जनसंख्याकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकएवंभारत (Influential Factors of Population Quality and India)
3.6 जनसंख्याकीगुणवत्ताएवंजीवनस्तरमेंअन्तर (Difference in Quality and Standard of Living of Population)
3.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
3.8सारांश(Summary)
3.9 शब्दावली(Glossary)
3.10 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)
3.11 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)
3.12 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)
3.13निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

3.1प्रस्तावना(Introduction)

प्रस्तुतइकाईमेंजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकोंकाविस्तारसेविश्लेषणप्रस्तुतहै।इसइकाईकेअध्ययनकेपश्चातआपजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकों,भारतमेंइनकीस्थिति,जीवनकीगुणवत्ताएवंजीवनस्तरमेंअन्तरआदिकोसमझसकेंगेंतथाइसकाविश्लेषणकरसकेंगे।जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताव्यक्तियोंएवंसमाजोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनयापनसेसम्बन्धितहै।यहएकव्यापकअवधारणाहै।इसकेप्रभावकारीकारकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींबल्किपर्यावरण,शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य,सुरक्षा,शिक्षा,मनोरंजन,खुशी,अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनशामिलहैं।इसकेअन्तर्गतपरिमाणात्मककेसाथऐसेतत्वभीसम्मिलितकियेजातेहैंजोविशिष्टतःगुणात्मकहैंऔरउनकीमापकरनाकठिनहै।

3.2उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुतइकाईकेअध्ययनकेबादआप

- जीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकों को जान सकेंगे।
- इन कारकों का जनसंख्याके जीवनकीगुणवत्ता पर पड़ने वाले प्रभावों को समझेंगे।
- भारतकेसन्दर्भमेंइनकारकोंकीस्थितिको जानेंगे।
- जीवनकीगुणवत्ताएवंजीवनस्तरकेअन्तरको समझेंगे।

3.3 जनसंख्याकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारक (nfluential Factors of Population Quality)

जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताव्यक्तियोंएवंसमाजोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनयापनसेसम्बन्धितहै।यहएकव्यापकअवधारणाहै।इसकेमानकसंकेतकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींबल्किपर्यावरण,शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य,सुरक्षा,शिक्षा,मनोरंजन,खुशी,अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनआदिशामिलहैं।जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकोंकोअध्ययनकीदृष्टिसेविभिन्नभागोंमेंविभाजितकियाजासकताहै,जैसे-आर्थिककारक(Economic Factors)(आय,सम्पत्ति,रोजगार,जीवनतथागरीबीकास्तर,आधारभूतसंरचनाआदि),सामाजिककारक(Social Factors)(जीवनप्रत्याशा,शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य,शिक्षाएवंप्रशिक्षण,आवास,जन्मएवंमृत्युदर,सामाजिकसम्बन्ध,अवकाश,लैंगिकसमानतातथाअपराधआदि),मनोवैज्ञानिककारकमनोवैज्ञानिककारक (Psychological Factors)(खुशीएवंसन्तुष्टिकास्तर)तथाअन्यकारक(Other Factors)(मानवअधिकार,राजनीतिकस्थिरता,पर्यावरण,सुरक्षा,बालविकासएवंकल्याणआदि)।

3.3.1आर्थिककारक (Economic Factors)

जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीआर्थिककारकोंसेतात्पर्यऐसेकारकोंसेहैजोधनसेसम्बन्धितहैं।यहनिम्नलिखितहैं:

1.आयस्तर(IncomeLevel)

आयस्तरजीवनकीगणवत्ताकाएकमहत्वपूर्णकारकहै।सामान्यतयाउससमाज,वर्गएवंव्यक्तिकीजीवनकीगुणवत्ताकाऊँचामानाजाताहैजिनकाआयस्तरउच्चहोता है।निम्नआयकीस्थितिमेंएकव्यक्तिकीक्रयकरनेकीक्षमताकमहोतीहैऔरवहअपनेजीवनकीआवश्यकताओंकोपूराकरनेमेंअसमर्थहोताहैजिससेउसकेगुणवत्तापूर्णजीवनजीनेकेमार्गमेंबाधाउत्पन्नहोतीहै।

2.सम्पत्तिकास्तर(WealthLevel)

आयस्तरकेसाथहीसम्पत्तिकास्तरभीजीवनकीगुणवत्ताकाएकअन्यमहत्वपूर्णकारकहै।सम्पत्तिकास्तरअधिकहोनेकी स्थितिमेंव्यक्तिकेजीवनकीगुणवत्ताकाऊँचाहोनासम्भवहैक्योंकिइसकेमाध्यमसेव्यक्तिअपनेजीवनकोसुखमयबनानेहेतुअधिकसुविधाओंकाउपभोगकरपानेमेंसक्षमहोताहै।

3.रोजगारकास्तर(LevelofUnemployment)

एकव्यक्तिकेजीवनमेंरोजगारकामहत्वपूर्णस्थानहोताहै।रोजगारकेमाध्यमसेव्यक्तिअपनेएवंअपनेपरिवारकेजीवननिर्वाहहेतुसाधनप्राप्तकरनेमेंसफलहोसकताहैऔरअपनेजीवनमेंगुणात्मकसुधारकरसकताहै।रोजगारकीउपलब्धतान होनेकीस्थितिमेंव्यक्तिअपनेजीवनकोबेहतरबनानेकेलिएपर्याप्तसाधनोंकीप्राप्तिहेतुसंघर्षरतरहताहै।

4.जीवनस्तर(QualityofLife)

एकव्यक्तिकेजीवनस्तरपरभीनिर्भरकरताहैकिउसकेजीवनकीगुणवत्ताकिसप्रकारकीहै।उच्चजीवनस्तरकाअर्थहैगुणवत्तापूर्णजीवन।जीवनस्तरएकव्यक्तिकीआय,रोजगारएवंसम्पत्तिकेस्तरतथाउसकीजीवनजीनेकेतरीकेपरनिर्भरकरता है।

5.गरीबीकास्तर(Poverty Level)

जिससमाजमेंगरीबीकास्तरअधिकहोताहैवहांलोगोंकेजीवनकीगुणवत्तानिम्नस्तरकीहोतीहै।गरीबीकीस्थितिमेंलोग अपनीन्यूनतमआवश्यकताओं-भोजन,वस्त्रएवंआवास-
तककोपुराकरनेमेंअसमर्थरहतेहैं।ऐसीस्थितिमेंगुणवत्तापूर्णजीवनहेतुआवश्यकसुविधाओंकोप्राप्तकरपानासम्भवनहीं होताहै।

6.आधारभूतसंरचना (Infrastructure)

आधारभूतसंचरनाकीपर्याप्तउपलब्धतासेमनुष्योंकाजीवनसमृद्धहोताहै।इसकीउपलब्धताअर्थव्यवस्थाकीउपरि-संरचनाअर्थातकृषिएवंउद्योगोंकीसफलतामेंसहायताकरतीहैसाथहीयहजल,स्वच्छता,स्वास्थ्यएवंशिक्षासेवाएं,ऊर्जा,आवास,परिवहन,संचारप्रौद्योगिकीआदिकेमाध्यमसेजीवनमेंगुणात्मकसुधारकरतीहै।

3.3.2सामाजिककारक(Social Factors)

जीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीविभिन्नसामाजिककारकनिम्नलिखितहैं:

1.जीवनप्रत्याशा(Life Expectancy)

जीवनप्रत्याशासेआशयलागोंकेजीवितरहनेकीऔसतआयुसेहै।यहएकदेशकेनागरिकोंकेस्वास्थ्यतथासभ्यताएवंआर्थिकविकासकासूचकहै।जबदेशमेंएकशिशुजन्मलेताहैतोउसकेकितनेवर्षतकजीवितरहनेकीआशाकीजातीहै,इसजीवित रहनेकीआशाकोहीजीवन-
प्रत्याशाअथवाप्रत्याशितआयुअथवाऔसतआयुकहाजाताहै।जीवनप्रत्याशाजीवनकीगुणवत्ताकाएकप्रमुखकारकहै। जिसदेशअथवासमाजमेंजीवनप्रत्याशाअधिकहोतीहैवहांलोगोंकीजीवनकीगुणवत्ताऊँचीहोतीहै।

2.शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य(Physical and Mental Health)

गुणवत्तापूर्णजीवनकेलिएदेशकेलोगोंकाशारीरिकएवंमानसिकरूपसेस्वस्थहोनाआवश्यकहै।स्वस्थजनशक्तिएकदेशकेलिएएकबहुतबड़ाधनहोतीहैजिसकेद्वारा अधिकमात्रामेंप्रतिव्यक्तिउत्पादन(Per-CapitaProduction)प्राप्तकियाजासकताहै।निम्नस्तरकास्वास्थ्यऔरपोषणजनशक्तिकीगुणवत्तापरप्रतिकूलप्रभाव डालतेहैं।जनसंख्याकीगुणवत्तामेंसधारकरनेकेलिएआवश्यकहैकिलोगोंकोपर्याप्ततथापौष्टिकभोजनदियाजाये।इनमदोंपरकियेजानेवालेव्ययकोमानवीयविनियोग (Humanitarian

Investment)कीतरहमानाजायेक्योंकियहविनियोगलोगोंकीकुशलतातथाउत्पादकतामेंवृद्धिकरनेकीप्रवृत्तिरखता है।

3.शिक्षाएवंप्रशिक्षण (Education and Training)

देशमेंऊँचीसाक्षरतादरएवंप्रशिक्षणकीस्थितिलोगोंकेजीवनकीगुणवत्ताकोबढ़ानेमेंसहायकहै।वास्तवमें,शिक्षाकोविकासकीसीढ़ी,परिवर्तनकामाध्यमएवंआशाकाअग्रदूतमानाजाताहै।गरीबीएवंअसमानताओंकोकमकरनेएवंआर्थिक विकासकाआधारतैयारकरनेमेंशिक्षाकोसबसेशक्तिशालीउपकरणोंमेंसेएकमानाजाताहै।संयुक्तराष्ट्रसंघनेभीमानाहै किसबसेअधिकप्रगतिउनदेशोंमेंहोगीजहांशिक्षाविस्तृतहोतीहैऔरजहांवहलोगोंमेंप्रयोगात्मकदृष्टिकोण (Experimental Approach)कोप्रोत्साहितकरतीहै।विकसितदेशोंकेविकासकेसन्दर्भमेंकियेगयेअध्ययनइसतथ्यकोस्पष्टकरतेहैंकिइन देशोंकेविकासकाएकबड़ाभागशिक्षाकेविकास,अनसंधानतथाप्रशिक्षणकाहीपरिणामहै।अर्थव्यवस्थाकेविकासकीदृष्टिसेशिक्षापरकियागयाव्ययवास्तवमेंएकविनियोगहैक्योंकिवहउत्पत्तिकेसाधनकेरूपमेंलोगोंकीकुशलताकोबढ़ाती है।स्पष्टहैकिदेशमेंउच्चसाक्षरता (Literacy)एवंप्रशिक्षण(Training) कीस्थितिलोगोंकीगुणवत्ताकोबढ़ाती है।

4.आवाससुविधा(Housing Facilities)

आवाससेआशयऐसेआश्रयसेहैजोव्यक्तियोंकेलिएआरामदायकऔरआवश्यकतानुरूपहों,जहांउनकेपरिवारकेसदस्यसुखमयजीवनव्यतीतकरसकें।आवासमनुष्यकीमूलभूतआवश्यकताओंमेंसेएकहै।उचितआवासोंकीउपलब्धतालोगोंके जीवनकीगुणवत्ताकोबढ़ाताहै।इसकेअभावमेंव्यक्तिअपनेजीवनकोसुखमयनहींबनासकताहै।आवासोंकाविकासमानवीयसाधनोंकेविकासकाएकमहत्वपूर्णभागभीहैक्योंकिसुविधापूर्णजीवनलोगोंकोउत्पत्तिकाअच्छासाधनबनाताहै।इससेलोगोंकीकार्यकुशलतामेंवृद्धिहोतीहै।

5.जन्मएवंमृत्युदरें(Birth and Death Rates)

एकदेशमेंजन्मएवंमृत्युदरेंबहुतहदतकजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकोप्रभावितकरतीहैं।जन्मएवंमृत्युदरोंकेनिम्नहोनेकीस्थितिमेंमानाजाताहैकिदेशमेंनागरिकोंकोपर्याप्तमात्रामेंसुविधाओंकीउपलब्धताहै,अत:यहांजीवनअधिकगुणवत्तापूर्णहै।जन्मएवंमृत्युदरोंकेउच्चहोनेकाअर्थहैकिदेशमेंविभिन्नसुविधाओंकीउपलब्धतानिम्नस्थितिमेंहै।ऐसेमेंदेशकेलोगोंकोगुणवत्तापूर्णजीवनकीकल्पनानहींकीजासकतीहै।

6.सामाजिकसम्बन्ध (Social Relations)

मनुष्यएकसामाजिकप्राणीहै।वहसमाजकाएकअंगहैऔरउसीसेसमाजकानिर्माणभीहोताताहै।इससन्दर्भमेंसामाजिक सम्बन्धोंकाविशेषमहत्वहोताहै।जीवनकीगणवत्ताकोबढ़ानेकेलिएमजबतसामाजिकसम्बन्धोंकाहोनाआवश्यकहै।

7.अवकाशकासमय (Period of Vacation)

बिनाअवकाशकेनिरन्तरकार्यकरनेसेव्यक्तिकीउत्पादकताकमहोतीहै।यदिव्यक्तिकोनिश्चितमात्रामेंअवकाशकीउपलब्धताहोतोइससेउनकीकार्यकुशलताबढ़तीहैऔरजोव्यक्तिकेजीवनकीगुणवत्ताबढ़ातीहै।यहव्यक्तिकेसामाजिकसम्बन्धोंकोसुदृढ़बनानेकीदृष्टिसेभीमहत्वपूर्णहै।

8. लैंगिकसमानता(Gender Inequality)

समाजमेंलैंगिकसमानताकीस्थितिलोगोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनकासंकेतहोताहै।विकसित देशों मेंमहिलाएवंपुरूषोंमेंलिंगकेआधारपरभेदभावनहींकियाजाताहैतथाउन्हेंबिनाभेदभावअवसरकीसमानताहोतीहै,वहांकेलोगोंकाजीवनबेहतरस्थितिमेंहोताहै।लैंगिकसमानताकीअवधारणासंयुक्तराष्ट्रकेसार्वभौमिकमानवअधिकारघोषणापरआधारितहै।

9. अपराध(Crime)

किसीसमाजमेंअधिकमात्रामेंअपराधघटितहोनेपरवहांकेलोगअपनेजीवनएवंसम्पत्तिकीसुरक्षाकेप्रतिनिश्चिंतनहींहोंगेऔरऐसीस्थितिमेंलोगोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनजीनेकीकल्पनानहींकीजासकतीहै।अतिअपराधएवंअराजकताकीस्थितिमेंलोगस्वतंत्रतापूर्णढंगसेअपनेकार्योंकोनहींकरपातेहैं।अपराधमुक्तसमाजकीस्थितिलोगोंकेजीवनकीगुणवत्ताकोबढ़ातीहै।

3.3.3.मनोवैज्ञानिककारक (Psychological Factors)

जीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीविभिन्नमनोवैज्ञानिककारकवेहैंजोव्यक्तिकेआन्तरिकतत्वोंपरनिर्भरकरतेहैंऔरइन्हें आसानीसेमापानहींजासकताहै।यहकारकनिम्नलिखितहैं:

1. खुशी(Happiness)

जीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीमनोवैज्ञानिककारकोंमेंखुशीएकमहत्वपूर्णकारकहै।यहव्यक्तिपरक (Subjective)कारकहैतथाइसकीमापकरनाकठिनहोताहै।व्यक्तिकेजीवनमेंइसकाबहुतमहत्वहै।इसकेअभावमेंव्यक्तिअपनेकार्योंकोपूरेमनोयोगसेसम्पन्ननहींकरसकताहै।व्यक्तिकेजीवनकीगुणवत्तातभीबढ़ेगीजबउसकेआसपासकावातावरणइसप्रकारकाहोकिवहआनन्द(खुशी)काअनुभवकरसके।यहांउल्लेखनीयहैकियहआवश्यकनहींहैकिआयमेंवृद्धिकेसाथव्यक्तिकीखुशीकेस्तरमेंभीवृद्धिहो।

2. सन्तुष्टिकास्तर(Level of Satisfaction)

व्यक्तिकेसन्तुष्टिकास्तरभीजीवनकीगुणवत्ताकाएकप्रभावकारीकारकहै।यदिव्यक्तिअथवासमाजकासन्तुष्टिस्तरऊँचाहैतोउनकाजीवनगुणवत्तापूर्णहोगाऔरसन्तुष्टिकास्तरनिम्नहोनेपरविपरीतस्थितिहोगी।सन्तुष्टिकास्तरएकआन्तरिक (Internal)कारकहैजोअलग-अलगव्यक्तियोंमेंअलग-अलगहोसकताहै।

3.3.4 अन्यकारक (Other Factors)

जीवनकीगुणवत्ताकेअन्यप्रभावकारीकारकोंमेंनिम्नलिखितकोसम्मिलितकियाजासकताहै:

1.मानवअधिकार (Human Rights)

गुणात्मकजीवनकेलिएआवश्यकहैकिव्यक्तियोंकोविभिन्नमानवअधिकारप्राप्तहों।मानवअधिकारोंसेतात्पर्यमौलिकअधिकारोंएवंस्वतंत्रतासेहैजिसकेसभीमनुष्यहकदारहैं।इनमेंजीवनजीनेकाअधिकार,स्वतंत्रताकाअधिकार,अभिव्यक्तिकीस्वतंत्रताकाअधिकार,कानूनकीसमानताकाअधिकारकेसाथहीभोजन,कामकरनेएवंशिक्षाकाअधिकारआदिशामिलहैं।मानवअधिकारमनुष्यकेमूलभूतसार्वभौमिकअधिकारहैंजिनसेमनुष्यकोलिंग,जाति,नस्ल,धर्म,राष्ट्रीयताजैसेकिसीभीआधारपरवंचितनहींकियाजासकताहै।जिनदेशोंमेंलोगोंकोमानवअधिकारप्राप्तहोतेहैं,वहांकेलोगोंकीजीवनकीगुणवत्ताअधिकहोतीहै।

2.राजनीतिकस्थिरता (Political Stability)

राजनीतिकस्थिरताजीवनकीगुणवत्ताकाएकप्रभावीकारकहै।ऐसेदेश,जहांपरराजनीतिकस्थिरताकीस्थितिहोतीहै, वहांजनताकाविश्वाससरकारपरबनारहताहै।यहांनागरिकोंकेविकासकीयोजनाएंसुचारूरूपसेसंचालितहोतीहैं।ऐसेमेंलोगोंकेजीवनकीगुणवत्ताबढ़तीहै।राजनीतिकअस्थिरताकीस्थितिमेंजीवनकीगुणवत्तामेंकमीआतीहै।

3.पर्यावरण (Environment)

शुद्धपर्यावरणकीउपलब्धताजीवनकोउन्नतबनानेमेंसहायकहै।प्राकृतिकऔरमानवनिर्मितपर्यावरणीयसंसाधनोंजैसे-ताजापानी,स्वच्छवायु,वनआदिमानवकीआजीविकाएवंसामाजिक-

आर्थिकविकासकेलिएएकआधारप्रदानकरतेहैं।शुद्धपर्यावरणकेसाथव्यक्तिशारीरिकएवंमानसिकरूपसेअधिकस्वस्थ रहकरअधिकउत्पादकहोसकतेहैं।

4. सुरक्षा (Security)

सुरक्षितजीवनउच्चगुणवत्ताएवंविकासकाआधारहै।बिनासुरक्षाकेदेश,समाजएवंव्यक्तिविकासकीओरअग्रसरनहींहो सकतेहैं।जीवन,सम्पत्तिएवंविभिन्नप्रकारकीसुरक्षाकेसाथहीजीवनकीगुणवत्तामेंसुधारआसकताहै।

5.बालविकासएवंकल्याण (Child Development and Welfare)

बच्चेकिसीभीदेशकाभविष्यहोतेहैं।वहीराष्ट्रकीउन्नतिकेवास्तविकआधारस्तम्भ (Foundation)भीहैं।प्रत्येकबच्चेकाजन्मकुछउम्मीदों,आकांक्षाओंऔरदायित्वोंकेनिर्वाहकेलिएहोताहै,परन्तुयदिइन बच्चोंकोविकासकीआवश्यकसुविधाओंसेवंचितकरदियाजायेतोइनकेसाथहीदेशकीभीभावीबेहतरीकीसम्भावनाएंक महोजातीहैं।जीवनकीगुणवत्तामेंवृद्धिहेतुआवश्यकहैकिदेशमेंबच्चोंकेकल्याणऔरविकासकोसमुचितदिशाप्रदानकीजा ये।

3.4 यूनाईटेडनेशन्सयूनीवर्सलडिक्लेरेशनऑफहूमनराइट्स1948द्वाराजीवनकीगुणवत्ताकेमूल्यांकनहेतुबताये गयेविभिन्नकारक(Various Factors Mentioned by the United Nations Universal Declaration of Human Rights 1948 to Evaluate the Quality of Life)

यूनाईटेडनेशन्सयूनीवर्सलडिक्लेरेशनऑफहूमनराइट्स1948 (United Nations Universal Declaration of Human Rights1948)मेंजीवनकीगुणवत्ताकेमूल्यांकनहेतुविभिन्नकारकोंकोबतायागया।यहकारकजीवनकीगुणवत्ताकेमाप नमेंउपयोगकियेजासकतेहैं।यहकारकनिम्नलिखितहैं:

- गुलामीएवंउत्पीड़नसेमुक्ति
- कानूनकासमानसंरक्षण
- भेदभावसेमुक्ति
- आवागमनकाअधिकार
- अपनेदेशमेंनिवासकरनेकाअधिकार
- विवाहकाअधिकार
- परिवारकाअधिकार
- लिंग, नस्लभाषा, धर्म,राजनीतिकविश्वास,नागरिकता,सामाजिक-आर्थिकस्थितिआदिकेआधारपरव्यवहारनकरसमानव्यवहारकाअधिकार
- निजताकाअधिकार
- विचारोंकीस्वतंत्रता
- धार्मिकस्वतंत्रता
- रोजगारकामुक्तचयन
- उचितभुगतानकाअधिकार
- समानकार्यकेलिएसमानभुगतान
- मतदानकाअधिकार
- आरामकाअधिकार

शिक्षाकाअधिकार
मानवीयआत्मसम्मानकाअधिकार

3.5 जनसंख्याकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकएवंभारत(nfluential Factors of Population Quality and India)

भारतमेंजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रमुखप्रभावकारीकारकोंकीस्थितिकामूल्यांकननिम्नप्रकारकियाजासकताहै :

आयस्तर (IncomeLevel)जीवनकीगुणवत्ताकाएकमहत्वपूर्णकारकहै।भारतमेंलोगोंकाआयस्तरनिम्नहै।वर्ष2011मेंभारतमें प्रतिव्यक्तिआय1509यू.एस.डॉलरथी,जबकियू.के.में38974,नीदरलैण्डमें50085,यू.एस.ए.में 48112,जापानमें 45,903 तथाचीनमें 54445यू.एस.डॉलरथी।ऐसीसम्भावनाव्यक्तकीगयीहैकिभारतमें2011-12कीअवधिमेंप्रतिव्यक्तिआय13प्रतिशतकीऔसतवृद्धिदरप्राप्तकरेगीऔर2020तकयह4200डॉलरतकपहुंचजायेगी।

एकव्यक्तिकेजीवनमेंरोजगार (Employment)कामहत्वपूर्णस्थानहोताहै।भारतमेंकुलश्रमशक्तिकाएकबड़ाभागरोजगारविहीनहै।विगतवर्षोंमेंइसमेंसुधारअवश्यहुआहै।भारतमेंवर्ष1983से2011केबीचबेरोजगारीकीऔसतदर7.6प्रतिशतरहीहै।यहदिसम्बर2009मेंअपनेउच्चस्तर9.4प्रतिशतपरपहुंचगयीजोदिसम्बर2011मेंरिकॉर्डकमीकेसाथ3.8प्रतिशतपरआगयीहै।यहदर यू.एस.ए.,स्पेन,दक्षिणअफ्रीकाजैसेदेशोंसेभीकमहै।भारतमेंदमनऔरद्वीव(0.6प्रतिशत)एवंगुजरात(1प्रतिशत)सबसे कमबेरोजगारीदरवालेराज्यहैं।इसस्थितिमेंदेशकेनागरिकोंकेजीवनमेंगुणात्मकसुधारकीसम्भावनाप्रबलहुईहै।

भारतमेंस्वतन्त्रताकेकईदशकपश्चातभीएकबड़ाभागगरीबी (Poverty)कीरेखाकेनीचेनिवासकरताहै।आंकड़ेदर्शातेहैंकिवर्तमानमेंविश्वकेगरीबोंकाएकतिहाईभारतमेंनिवासितहै।विश्वबैंककीरिपोर्टकेअनुसार,वर्ष2010मेंभारतकी32.7प्रतिशतजनसंख्या'अन्तर्राष्ट्रीयगरीबीरेखा'(प्रतिदिन1.25अमेरिकीडॉलर)केनीचेथीजबकि68.7 प्रतिशतजनसंख्या2अमेरिकीडॉलरप्रतिदिनसेनीचेरहरहीथी।संयक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) के2010केआंकड़ेबतातेहैंकि29.8प्रतिशतलोगदेशकी'राष्ट्रीयगरीबीरेखा'सेनीचेनिवासकरतेहैं।ग्रामीणक्षेत्रोंमेंयहआंकड़ा33.8प्रतिशतहैजबकिशहरीक्षेत्रोंमें20.9प्रतिशतहै।साथही, ऑक्सफोर्डगरीबीऔरमानवविकासपहल (Oxford Poverty and Human Development Initiative-OPHI) केआंकड़ेभारतकेराज्योंमेंगरीबीकीचिन्ताजनकस्थितिकोप्रदर्शितकरतेहैं।इसकेअनुसार8भारतीयराज्यों(बिहार,उत्तरप्रदेश,पश्चिमबंगाल,मध्यप्रदेश,छत्तीसगढ़,झारखण्ड,राजस्थान)मेंगरीबोंकीसंख्या42करोड़हैजो26अफ्रीकीदेशोंकेगरीबोंसेभीएककरोड़अधिकहै।यूनीसेफ (UNICEF) केनवीनतमआंकड़ेभीभारतमेंगरीबीकीभयावहतस्वीरप्रस्तुतकरतेहैं,जिनकेअनुसारविश्वकेहर3कुपोषितबच्चोंमेंएक

भारतमेंहै।यहांपांचवर्षकेकुलबच्चोंमें42प्रतिशतकमवजनकेहैं।ग्लोबलहंगरइंडेक्स (Global Hunger Index-GHI) केमामलेमेंभारतसन्1996से2012केबीच22.6से 22.9परचलागयाहैजबकिपाकिस्तान,नेपाल,बांग्लादेश,वियतनाम,केन्या,नाइजीरिया,म्यांमार,युगांडा,जिम्बाब्वे औरमलावीजैसेदेशभूखकीस्थितिमेंसुधारलानेमेंसफलरहेहैं।

बच्चेदेशकाभविष्यहोतेहैं।जीवनकीगुणवत्तामेंवृद्धिहेतुआवश्यकहैकिदेशमेंबालविकासएवंकल्याणकोसमुचितदिशाप्रदानकीजाये।वर्तमानमें,भारतमेंइसकेलिएआवश्यकसंसाधनोंकीव्यवस्थाहेतु13केन्द्रीयमन्त्रालयअपनायोगदानकरतेहैं।इनकेद्वाराविभिन्ननीतियोंएवंकार्ययोजनाओंजैसेराष्ट्रीयस्वास्थ्यनीति-2002,राष्ट्रीयशिक्षानीति-1986,राष्ट्रीयबालश्रमनीति-1987,राष्ट्रीयबालनीति-1974,बालविकासहेतुसंप्रेषणरणनीति-1996,पोषणपरराष्ट्रीयकार्ययोजन-1995, राष्ट्रीयपोषणनीति-1993,राष्ट्रीयबालचार्टर-2003, राष्ट्रीयबालकार्ययोजना-2005आदिकोतैयारकरउन्हेंक्रियान्वितकरनेकेप्रयासकिएजातेरहेहैं।इसकेसाथही30हजारगैर-सरकारीसंस्थाएंभीबच्चोंसेसम्बन्धितसमस्याओंकानिराकरणखोजनेएवंउनकोक्रियान्वितकरानेहेतनिरन्तरप्रयत्नशीलहैं।

जीवनकीगुणवत्तामेंसुधारकेलिएभारतसरकारविभिन्नयोजनाओंकासंचालनकरतीहैसाथहीइसकार्यमेंविभिन्नगैर-सरकारीसंगठनोंकाभीसहयोगलेतीहै।सरकारनेलोगोंकोभोजन,वस्त्र,आवास,स्वतन्त्रता,शिक्षा,स्वास्थ्यऔररोजगारकेसविधाएंउपलब्धकरानेहेतअनेककार्यक्रमचलायेहैं।देशमेंलोगोंकीक्रयशक्तिमेंवद्धिकरउनकोसुविधासम्पन्नबनानेहेतुवर्ष2006सेप्रारम्भकीगयीराष्ट्रीयग्रामीणरोजगारगारण्टीयोजना(नरेगा)प्रमुखहैजिसकानामबदलकरअबमहत्मागांधीराष्ट्रीयग्रामीणरोजगारगारण्टीयोजना(मनरेगा)करदियागयाहै।यहयोजनाएंएवंकार्यक्रमगरीबीकोकमकरनेतथालोगोंकोबेहतरगुणवत्तापूर्णजीवनजीनेमेंसहायताप्रदानकररहेहैं।

जीवनप्रत्याशा (LifeExpectancy)जीवनकीगुणवत्ताकाएकप्रमुखकारकहै।भारतमेंजीवितरहनेकीआयुमेंनिरन्तरवृद्धिहुईहैपरन्तुयहगतिबहुतधीमीरहीहै।देशमेंलोगोंकीजीवन-प्रत्याशा1911में22.9वर्षथीजो1951में32.1 वर्षतथा1991मेंबढ़कर59.9वर्षहोगयी।वर्ष2009मेंयह69.89वर्षआंकलितकीगईहै।इसीवर्षपुरूषोंकीजीवन-प्रत्याशा67.46वर्षतथामहिलाओंकी72.61वर्षरही।विकसितदेशोंकीतुलनामेंभीभारतमेंजीवन-प्रत्याशाकमहै।उदाहरणकेलिए,जापानमेंजीवन-प्रत्याशा81वर्ष,कनाडामें79वर्ष,आस्ट्रेलियामें78वर्षतथाअमेरिकाएवंइंग्लैण्डमें77वर्षहैतथाअरबदेशोंमें71वर्ष,यूरोक्षेत्रमें81वर्ष,लैटिनअमेरिकाएवंकैरिबियनदेशोंमें74वर्षतथाविश्वमेंयह70वर्षहै।

गुणवत्तापूर्णजीवन (QualityLife):केलिएदेशकेलोगोंकाशारीरिकएवंमानसिकरूपसेस्वस्थहोनाआवश्यकहै।इसकेलिएपर्याप्तपोषणकीआवश्यकताहोतीहैपरन्तुभारतमेंलोगोंकोभोजनसेऔसतन1900से2000कैलोरीहीमिलपातीहैजबकिउन्हेंकमसेकम3000कैलोरीप्रतिदिनमिलनाआवश्यकहै।पर्याप्तचिकित्सकीयसुविधाओंकीअनुपलब्धताकेकारणयहांबीमारियोंकाप्रकोपअधिकहोताहैजोलोगोंकेगुणवत्तापूर्णजीवनमेंबाधाहै।

देशमेंऊँचीसाक्षरता (Literacy)दरएवंप्रशिक्षणकीस्थितिलोगोंकेजीवनकीगुणवत्ताकोबढ़ानेमेंसहायकहै।भारतमेंसाक्षरताकीदरवर्ष1951मेंमात्र18.3प्रतिशतथीजोवर्ष2001मेंबढ़कर64.83प्रतिशतहोगई।जनगणना2011केआंकड़ोंकेअनुसारभारतकीसाक्षरतादर74.04प्रतिशतहै।देशमेंपुरूषसाक्षरतादरवर्ष2001में75.26प्रतिशतकीतलनामें2011मेंबढ़कर82.14 प्रतिशतहोगईहै।इसीप्रकारमहिलाओंकीसाक्षरता दरवर्ष2001में53.67प्रतिशतकीतुलनामें2011मेंबढ़कर65.46 प्रतिशतहोगईहै।देशमेंशिक्षासुविधाओंकाविकासहोनेकेसाथहीपुरू-महिलाकीसाक्षरतादरकाअन्तरभीकमहुआहै।भारतमेंकेरल93.91प्रतिशतकेसाथसर्वाधिकसाक्षरतादरवालाराज्यहैजबकिसबसेकमसाक्षरतादरबिहारमेंहैजहांयहदरमात्र63.82प्रतिशतहै।

एकदेशमेंजन्मएवंमृत्युदरें (BirthandRate)बहुतहदतकजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकोप्रभावितकरतीहैं।भारतमें70केदशकतकजन्मदरमेंवृद्धिदर्जकीगईथीपरन्तुअबइसमेंलगातारकमीआरहीहै।भारतमें1901-10मेंयह49.2प्रतिहजारथीजो1951-60में41.7प्रतिहजारहोगयी।इसकेपश्चात्जनसंख्याकेनियोजनपरध्यानदेनेकेकारणयहवर्ष1991मेंकमहोकर29.5प्रतिहजारहोगयी।वर्तमानमेंयह22.22प्रतिहजारहै।भारतमेंविकासप्रक्रियाकेकारणजन्मदरकेसाथहीमृत्युदरमेंकमीआरहीहै।1941-50कीअवधिमेंयह27.4थीजोवर्तमानमेंघटकर6.4प्रतिहजारहोगयी।विभिन्नमृत्युदरोंमेंशिशुएवंमातृमृत्युदरेंअतिमहत्वपूर्णहैं।भारतमशिशुमृत्यु-दरवर्ष1960मेंअपनेउच्चतमस्तर159.3प्रतिहजारजीवितजन्मथीजोवर्ष2010मेंअबतककेअपनेन्यूनतमस्तर48.2प्रतिहजारजीवितजन्मपरआगईहै।विकासकेसाथइसकेभविष्यमेंऔरभीकमहोनेकीसम्भावनाहै।विकसितदेशोंमेंयहदरकाफीकमहै।उदाहरणकेलिए,वर्ष2010मेंसंयुक्तराज्यअमेरिकामेंयहदर6.15प्रतिहजारजीवितजन्मथी।इसीप्रकार, भारतमेंवर्ष2010मेंमातृत्वमृत्यु-दर2प्रतिहजारजीवितजन्मथी।यहदरशहरीक्षेत्रोंकीतुलनामेंग्रामीणक्षेत्रोंमेंअधिकहै।

मानवअधिकार (HumanRights)मनुष्यकेमूलभूतसार्वभौमिकअधिकारहैं।भारतमेंइससम्बन्धमेंस्वतंत्रतापूर्वएवंपश्चात्विभिन्नप्रयासकियेजातेरहेहैं।जैसे-राजाराममोहनरायद्वाराब्रिटिशराजकेदौरानचलायेगयेसुधारआन्दोलनकेबादसतीप्रथाकोसमाप्तकरदियागया,1950मेंभारतीयसंविधानकेलागूहोनेपरनागरिकोंकोविभिन्नअधिकारोंकीप्राप्तिहुई,1992मेंसंविधानसंशोधनकेद्वारापंचायतीराजकीस्थापनाकीगयीजिसमेंमहिलाओंएवंअनुसूचितजाति/जनजातिकोप्रतिनिधित्वप्रदानकियागया,1993मेंराष्ट्रीयमानवअधिकारआयोगकीस्थापनाकीगयी,2005मेंसार्वजनिकअधिकारियोंकेअधिकारक्षेत्रमेंसंघटितसूचनातकनागरिकोंकीपहुंचसुनिश्चितकरनेकेलिएसूचनाकाअधिकारकानूनपासहुआ,2005मेंरोजगारकीसमस्याकोहलकरनेहेतुराष्ट्रीयग्रामीणरोजगारगारण्टीएक्टपारितहुआआदि।जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकोंकाभारतकेसन्दर्भमेंविश्लेषणकरनेसेस्पष्टहोताहैकिभारतमेंजीवनकीगुणवत्ताअभीनिम्नस्थितिमेंहै।देशमेंनागरिकोंकेजीवनकोबेहतरबनानेकेलिएविभिन्नस्तरपरसरकारीप्रयासकियेजारहेहैंऔरउनप्रयासोंकेसकारात्मकपरिणामभीआरहे

हैंपरन्तुअभीइसदिशामेंऔरअधिकएवंप्रभावशालीप्रयासकियेजानेकीआवश्यकताहै।विश्वस्तरपरभीजीवनकीगुणवत्तामेंसुधारहेतुविभिन्नअन्तर्राष्ट्रीयसंगठनप्रयासरतहैं।जैसे-प्रमुखअन्तर्राष्ट्रीयसंगठन'विश्वबैंक'नेविश्वकोगरीबीमुक्तकरनेकालक्ष्यघोषितकियाहैजिससेलोगोंकोभोजन,वस्त्र,आवास,स्वतन्त्रता,शिक्षातकपहुंच,स्वास्थ्यदेखभालऔररोजगारकीसुविधाएंउपलब्धहोंऔरउनकीजीवनकीगुणवत्तामेंसुधारहो।विश्वबैंकनवउदारवादीसाधनोंद्वारागरीबीमेंकमीलानेएवंलोगोंकोबेहतरगुणवत्तापूर्णजीवनजीनेमेंसहायताप्रदानकरनेकेलिएप्रयत्नशीलहै।इसकेअतिरिक्त विभिन्नगैरसरकारीसंगठनभीव्यक्तियोंएवंसमुदायोंकेजीवनमेंगुणात्मकसुधारकी ओरअपनेकार्योंकोकेन्द्रितकियेहुएहैं।भारतभीइनप्रयासोंसेलाभान्वितहोरहाहै।

3.6 जनसंख्याकीगुणवत्ताएवंजीवनस्तरमेंअन्तर (Difference in Quality and Standard of Living of Population)

जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताएवंजीवन-स्तरकीअवधारणाकोप्राय:एकदेशएवंउसकेनिवासियोंकीआर्थिकऔरसामाजिकसमृद्धिकेरूपमेंएकहीप्रकारसेदेखा जाताहैजबकियहदोनोंअलग-अलगअवधारणाएंहैंऔरइनदोनोंमेंपर्याप्तअन्तरहै।एकओर,जीवनस्तरसामान्यतयाएकनिश्चितभौगोलिकक्षेत्रमेंलोगोंकोधन,आराम,भौतिकवस्तुएंऔरआवश्यकताओंकीउपलब्धतासेसम्बन्धितहै।इसकेअन्तर्गतवेतत्वसम्मिलितहोतेहैंजिनकीमापआसानीसेकीजासकतीहैऔरजिन्हेंसंख्यामेंव्यक्तकियाजासकताहै,जैसे-सकलघरेलूउत्पाद (DomesticProduction),गरीबीकीदर,जीवनप्रत्याशा,मुद्रास्फीतिकीदर,श्रमिकोंकोप्रतिवर्षदियेजानेवालेअवकाशोंकीऔसतसंख्याआदि।जीवनस्तरप्राय:भौगोलिकक्षेत्रोंकीतुलनाकरनेकेलिएउपयोगकियाजाताहै।जैसेदोदेशोंअथवादोशहरोंमेंजीवनस्तरकाअन्तर।दूसरीओर,जीवनकीगुणवत्ताजीवनस्तरकीतुलनामेंअधिकव्यक्तिपरकहै।इसमेंधनऔररोजगारकेसाथहीनिर्मितपर्यावरण,शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य,सुरक्षा,शिक्षा,मनोरंजन,खुशी,अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धएवंगरीबीरहितजीवनशामिलहै।इसकेअन्तर्गतऐसेतत्वभीशामिलहोतेहैंजोविशिष्टत:गुणात्मकहैंऔरउनकीमापकरनाकठिनहै,जैसे-कानूनकासमानसंरक्षण,भेदभावसेमुक्ति,धार्मिकस्वतंत्रताआदि।इसप्रकार,जीवन-स्तरएकवस्तुपरकएवंसंकुचितअवधारणाहैजबकिजीवनकीगुणवत्ताएकव्यक्तिपरकएवंव्यापकअवधारणाहै।परन्तु,दोनोंहीएकविशेषसमयमेंएकविशेषक्षेत्रमेंजीवनकीएकसामान्यतस्वीरप्रस्तुतकरनेमेंसहायताकरतेहैं,जिससेनीति-निर्माताओंकोनीतियोंकेनिर्माणएवंइनमेंपरिवर्तनकरनेमेंमद्दमिलतीहै।

3.7अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ती कीजिये:

1.जीवनकीगुणवत्ताकेमनोवैज्ञानिककारकव्यक्तिके............तत्वोंपरनिर्भरकरतेहैं। (आन्तरिकया बाहरी)

2.यूनाईटेडनेशन्सयूनीवर्सलडिक्लेरेशनऑफह्यूमनराइट्स .... वर्ष में हुई। (1948 या 1950)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य / असत्य कथन चुनिए:

1.जीवनप्रत्याशाऔरजीवनकीगुणवत्तामेंसीधासम्बन्धहोताहै।

2. भारतमेंदमनऔरद्वीवएवंगुजरातसबसेकमबेरोजगारीदरवालेराज्यहैं।

3.भारतमेंजन्मदरनिरन्तरबढ़रहीहै।

3.8सारांश(Summary)

प्रस्तुत इकाई में हमने जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताके विषय में समझा।इसकेप्रभावकारीकारकोंमेंकेवलधनऔररोजगारहीनहींबल्किपर्यावरण,शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य,सुरक्षा,शिक्षा,मनोरंजन,खुशी,अवकाशकासमयऔरसामाजिकसम्बन्धोंकेसाथगरीबीरहितजीवनशामिलहैं।जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकोंकोअध्ययनकीदृष्टिसेविभिन्नभागोंमेंविभाजितकियाजासकताहै,जैसे- आर्थिककारक(Economic Factors)(आय,सम्पत्ति,रोजगार,जीवनतथागरीबीकास्तर,आधारभूतसंरचनाआदि),सामाजिककारक(Social Factors)(जीवनप्रत्याशा,शारीरिकएवंमानसिकस्वास्थ्य,शिक्षाएवंप्रशिक्षण,आवास,जन्मएवंमृत्युदर,सामाजिकसम्बन्ध,अवकाश,लैंगिकसमानतातथाअपराधआदि),मनोवैज्ञानिककारकमनोवैज्ञानिककारक (Psychological Factors)(खुशीएवंसन्तुष्टिकास्तर)तथाअन्यकारक(Other Factors)(मानवअधिकार,राजनीतिकस्थिरता,पर्यावरण,सुरक्षा,बालविकासएवंकल्याणआदि)।हमने यूनाईटेडनेशन्सयूनीवर्सलडिक्लेरेशनऑफहूमनराइट्स1948द्वाराजीवनकीगुणवत्ताकेमूल्यांकनहेतुबतायेगयेविभिन्नकारकों पर भी चर्चा करी। अंततः हमने जनसंख्याकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकएवंभारत के विषय को जाना।

3.9 शब्दावली(Glossary)

बेरोजगारीकीदर(Unemployment Rate):बेरोजगारीकीदरकेअन्तर्गतदेशकीकुलशक्तिएवंजीविकोपार्जनहेतुरोजगारनमिलनेवालेलोगोंकेसम्बन्धकोदेखाजाताहै।ऐसेलोगजोरोजगारकीतलाशकररहेहैं, उनकीसंख्याकोदेशकीकुलश्रमशक्तिसेभागदेकरइसदरकोप्राप्तकियाजाताहै।इसदरमेंपरिवर्तनमुख्यतःवर्तमानमेंकार्यकीतलाशकररहे, कार्यसेअलगहुएएवंकार्यकीतलाशमेंशामिलहुएनयेलोगोंपरनिर्भरकरताहै।

गरीबीरेखा (Poverty Line) : यू.एन.डी.पी. केअनुसारवेपरिवारगरीबहैंजिन्हेंप्रतिदिनएकडॉलरसेकमपरगुजाराकरनापड़ताहै।भारतमेंगरीबीकीपरिभाषाकेअन्तर्गतवेपरिवार, जिन्हेंग्रामीणक्षेत्रोंमें 2400 कैलोरीऔरशहरीक्षेत्रोंमें 2100 कैलोरीकाभोजनयाखाद्यपदार्थमिलजातेहैं, गरीबनहींहैं।

गुणवत्तापूर्ण जीवन (Quality Life):एक ऐसा जीवन जिसमें व्यक्ति शारीरिक , मानसिक और सामाजिक रूप से संतुलित और स्वस्थ महसूस करता है। यह जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे स्वास्थ्य , शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक सुरक्षा पर आधारित होता है।

जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy):औसत आयु जिसे किसी समाज या क्षेत्र के व्यक्ति सामान्य रूप से जीने की संभावना रखते हैं। यह स्वास्थ्य सेवाओं, जीवनशैली, और पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होता है।

प्रतिव्यक्ति उत्पादन (Per-Capita Production):यह किसी देश की कुल उत्पादन मात्रा (जीडीपी) का एक व्यक्ति पर औसत गणना है। यह देश की आर्थिक स्थिति का एक महत्वपूर्ण सूचक है।

मानवीय विनियोग (Humanitarian Investment):इसमें धन या संसाधनों का उपयोग किसी समाज के कमजोर वर्गों की भलाई और उनके जीवन की गुणवत्ता सुधारने के लिए किया जाता है, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, और खाद्य सुरक्षा।

प्रयोगात्मक दृष्टिकोण (Experimental Approach):यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसमें समस्याओं के समाधान के लिए नए और अभिनव तरीकों का परीक्षण किया जाता है , ताकि साक्ष्यों के आधार पर प्रभावी रणनीतियाँ विकसित की जा सकें।

साक्षरता (Literacy):किसी व्यक्ति की पढ़ने और लिखने की क्षमता को साक्षरता कहा जाता है। यह सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है।

लैंगिक समानता (Gender Equality):इसका अर्थ है पुरुषों और महिलाओं के बीच समान अवसर और अधिकार सुनिश्चित करना, ताकि समाज में किसी भी लिंग के साथ भेदभाव न हो।

मानव अधिकार (Human Rights):वे मूल अधिकार जो हर व्यक्ति को जीवन, स्वतंत्रता, और सम्मान के साथ जीने के लिए मिलते हैं, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, लिंग या राष्ट्रीयता के हों।

3.10 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ती कीजिये:

1. आन्तरिक,2. 1948

निम्नलिखित कथनों में से सत्य / असत्य कथन चुनिए:

1.सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य

3.11 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

Morris, Morris David (January 1980): The Physical Quality of Life Index (PQLI), Development Digest.

Nussbaum, Martha and Sen, Amartya (ed.) (1993): The Quality of Life, Oxford: Clarendon Press.

3.12 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

कुमार, वी. (2007): जनांकिकी, साहित्यभवनपब्लिशर्सएण्डडिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)

लि., आगरा।सिन्हाएवंसिन्हा (2005) : जनसंख्याकेसिद्धान्त, मयूरपेपरबैक्स, नोएडा।

गुप्त, एस. एन (2009) : जनांकिकीकेमूलतत्व, वृंदापब्लिकेशन्सप्रा. लि.,दिल्ली।

3.13निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

जनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्ताकेप्रभावकारीकारकोंकीविस्तारसेव्याख्याकीजिए।

भारतमेंजनसंख्याकेजीवनकीगुणवत्तापरएकनिबन्धलिखिए।

जनसंख्याकीगुणवत्ताएवंजीवनस्तरमेंक्याअन्तरहै।स्पष्टकीजिए।

इकाई 4- पूँजी निर्माण एवं विकास
(Capital Formation and Development)

4.1प्रस्तावना (Introduction)
4.2उद्देश्य (Objectives)
4.3विदेशी पूँजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में योगदान(Contribution of Foreign Capital to the Development of Underdeveloped Countries like India)
4.4विदेशी पूँजी का आर्थिक विकास पर प्रभाव (Impact of Foreign Capital on Economic Development)
4.5विदेशी पूँजी से होने वाले सम्भावित खतरें (Potential Threats from Foreign Capital)
4.6विदेशी पूँजी का सीमाएँ (Limits on Foreign Capital)
4.7विदेशी पूँजी से होने वाली हानियाँ (Losses from Foreign Capital)
4.8विदेशी पूँजी से सम्बन्धित सावधानियाँ (Precautions related to Foreign Capital)
4.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
4.10 सारांश(Summary)
4.11 शब्दावली(Glossary)
4.12 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)
4.13 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)
4.14 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)
4.15 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

4.1 प्रस्तावना

विश्व के प्रायः सभी विकसित एवं विकासशील देश किसी न किसी सीमा तक विदेशी पूँजी एवं विदेशी सहायता पर निर्भर रहे हैं। विदेशी पूँजी ने आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण में महत्वपूर्ण भाग अदा किया है। इसके अभाव में कोई भी देश उन्नत नहीं कर सकता।

प्रत्येक देश के पास घरेलु साधन इतने पर्याप्त नहीं होते कि आर्थिक विकास में पूर्ण हो सकें।बड़ी-बड़ी योजनायें घरेलु बचतों के अलावा विदेशी पूँजी की सहायता भी लेते है। प्रायः प्रत्येक विकासशील राज्य ने अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अपने सीमित बचत के पूरक के रूप में विदेशी पूँजी की सहायता ली है।

17 वीं व 18 वीं शताब्दी में विश्व के अनेक देशों को ऋण प्रदान किया। वहीं अमरीका ने 19 वीं शताब्दी में भारी मात्रा में ऋण लिया और 20वीं शताब्दी में सबसे बड़ा ऋण देना वाला राष्ट्र बना।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् हमे यह जान सकेगे कि-

विदेशी पूँजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में क्या योगदान रहा?

विदेशी पूँजी का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?

विदेशी पूँजी के आगमन से क्या खतरे हो सकते है?

विदेशी विनियोग के मार्ग में क्या कठिनाइयां है और इससे क्या हानि हो सकती है।

4.3 विदेशी पूँजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में योगदान (Contribution of foreign capital in the development of less developed countries like India)

1. विदेशी राष्ट्रों से वास्तविक साधनों की प्राप्ति (Receipt of Real Resources from Foreign Nations)-विकास के कार्यों में जहां घरेलू एवं बाहर साधन अपर्याप्त होते है उन्हे विदेशी सहायता से पूर्ण किया जा सकता है। कर, ऋण या मुद्रा प्रसार से बचत तो प्राप्त होती है परन्तु इससे वास्तवकि साधनों के उपयोग से वंचित रहना पड़ता है। अतः राष्ट्रीय अतिरिक्त विनिमय द्वारा वित्तीय साधन जुटाकर वस्तुओं को प्राप्त करके उपभोग कर सकती है।

2. बाह्य मितव्ययियिताओं का सृजन (Creation of External Economies)- आमतौर पर तो बाह्य मितव्ययिताओं होने पर ही विदेशी पूँजी का आगमन होता है , परन्तु कभी कभी स्वयं विदेशी पूँजी भी देश की बाह्य मितव्ययिताओं के सृजन करने में सहायता प्रदान करती है। तथा विदेशी विनियोगों को आकर्षित करती है।

3. विनियोग कमी को पूर्ण करेन हेतु(To make up for the Investment Shortfall)- जिन देशों में आय का सृजन निम्न होता है, वहां घरेलु बचत भी कम होती है। ऐसे में करो एवं आन्तरिक ऋणों से जो राशि प्राप्त होती है वह विनियोग की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये अपर्याप्त होती है। ऐसी स्थिति में बाह्यय साधनों से सहायता लेना श्रेयस्कर होता है।

4. लाभ अर्जित करना (Make Profit)- विदेशी विनियोजक अपने साथ कुशल विशेषज्ञ लाते है जिससे अविकसित एवं अर्द्धविकसित देशों को लाभ प्राप्त होते है। इन कुशल विशेषज्ञों से प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान होती है। कालास्तर में यही विकसित देश अपने देश में विकास की योजनाएं बनाकर आर्थिक विकास करते है।

5. आर्थिक विकास की गति को बढ़ना (Increasing the Pace of Economic Growth)- अर्द्धविकसित देश जो बिना बाह्य व्यापारी के पर्याप्त मात्रा में विदेशी विनिमय अर्जित नही कर सकता , विदेशी पूँजी के माध्यम से विदेशी विनिमय उपलब्ध करावा कर नवीन योजनाओं के प्रारम्भ को प्रोत्साहित करती है।

6. स्वस्थ परम्परा का निमार्ण(Building a Healthy Tradition)- विदेशी पूँजी के विनियोग से देश में स्वस्थ परम्परा का निमार्ण होता है। उससे आगमन से उद्योग प्रोत्साहित होते है और लाभ प्राप्त करते है जिससे विदेशी विनियोग की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

7. सरकारी आय में वृद्धि (Increase in Government Income) - विदेशी विनियोग से प्राप्त होने वाले लाभ पर सरकार कर एवं अन्य कर प्राप्त करती है जिससे सरकार की आय में वृद्धि होती है। उससे सरकारी न्याय में वृद्धि होती है जिसको देश के आर्थिक विकास में लगाया जा सकता है।

8. घरेलु अर्थव्यवस्था पर भार में कमी (Reduction in Burden on Domestic Economy)- जब विदेशी पूँजी का प्रवेश नहीं हुआ होता है तो राष्ट्र की आय कम होने से विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विनियोग के साधन को जुटाने के लिये आन्तरिक उपयोग करना पड़ता है जिसका जनता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु विदेशी पूँजी की सहायता से उपभोग को उच्चतम स्तर पर रखा जा सकता है। उपभोग ऊँचा होने से उत्पादन में वृद्धि होती है।

9. विदेशी उपयोगी वस्तुएं उपलब्ध होना (Availability of Foreign Goods)- विदेशी विनियोग से जनता को विदेशी उपयोग वस्तुएं सस्ते मूल्य पर सुविधापूवर्क उपलब्ध हो जाती है।

10. जीवन स्तर में वृद्धि करने हेत (To Increase the Standard of Living)- विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों के मनुष्यों के जीवन स्तर में काफी अंतर होता है। जो विश्वशान्ति के लिये एक खतरा है। अतः अर्द्धसिकसित देशों का तीव्र विकास होना आवश्यक है। बचत की दर कम न कर विदेशी पूंजीकी सहायता से जीवन स्तर में वृद्धि की ला सकती है।

11. भुगतान संतुलन की कमी को दूर करने हेतु (To overcome the balance of payments deficit To overcome the balance of payments deficit)- अर्द्धविकसित देशों में तीव्र विकास से भुगतान संतुलन की कमी को उत्पन्न करता है। आर्थिक विकास व प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने के अतिरिक्त अग्रांकित ढंगों से प्रत्यक्ष प्रभाव भी डालता है। विकास कार्यक्रमों को पूर्ण करेन के लिये भारी मात्रा में सामग्री की आयात किया जाता है। बहुत से कच्चे पदार्थ , जो पहले निर्यात किये जाते थे , अब उनका उपयोग देश में होने लगा है जिससे निर्यात में कमी व भुगतान संतुजन विपक्ष हो जाते है।

12. स्फीति रहित विकास (Inflation less Growth)- विदेशी पूँजी सहायता से देश का मुद्रा स्फीति रहित विकास किया जा सकता है। विदेशी पूँजी के अभाव में हीनार्थ प्रबन्धन करके विनियोग के साधन को जुटाया जाता है परन्तु इससे मुद्रा प्रसार की स्थिति बन जाती है। विदेशी विनियोग से विनियोग की कमी को पूर्ण किया जा सकता है। तथा स्फीतिक स्थितियों से बचा जा सकता है।

13. प्राविधिक ज्ञान, प्रबन्धकीय योग्यता आदि की कमी को पूर्ण करना(To Compensate for the Lack of Technical Knowledge, Managerial Ability etc.)- विदेशी पूँजी आमत्रंण करने से प्राविधिक ज्ञान आदि की उपलब्धता भी हो जाती है। तकनीकि ज्ञान प्राप्त होने से औद्योगिक उन्नतिसंभव हो जाती है।

14. जोखिम उठाना (Venture) - विदेशी पूंजीपति जोखिम उठाकर नए उद्योगों की स्थापना करते है। असफल होने पर यही पूंजीपति हानि सहन करने का साहस रखता है। सफल होने पर घरेलु पूंजीपति भी उसी व्यवसाय को आरम्भ करके लाभ उठाते है।

15. अन्य लाभ (Other Benefits)- अन्य लाभ जैसे रोजगार प्राप्त होना , उपभोग व बचत में वृद्धि होना , उत्पादन एवं लाभ को बढ़ाना आदि भी विदेशी पूँजी के आने से मिलता है।

4.4विदेशी पूँजी का आर्थिक विकास पर प्रभाव (Impact of Foreign Capital on Economic Development)

आर्थिक विकास के गति प्रदान करने हेतु विदेशी पूँजी का प्रवाह अनिवार्य है। यह औद्योगिकीकरण , आर्थिक उपरिपूँजी व अधिक रोजगार के सुअवसर उत्पन्न करने में सहायता देती है। आर्थिक विकास पर विदेशी पूँजी के प्रभाव निम्न हैः-

1. प्राविधिक ज्ञान का विस्तार (Expansion of Technical Knowledge)- विदेशी सहायता से प्राविधिक ज्ञान में विस्तार होता है तथा देश के आर्थिक विकास में सहायता प्राप्त होती है। इसका विस्तार इन माध्यम से किया जा सकता है-

क. अर्द्धविकसित राष्ट्रों में रहने वाले कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर

ख. अर्द्धविकसित राष्ट्रों में नवीन शोध एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना करके

ग. विदेशों के कुशल तकनीकि व्यक्तियों की सेवाएं प्राप्त करके।

2. घरेलु पूँजी को प्रत्साहन (Encouragement of Domestic Capital)- विदेशी पूँजी से प्रोत्साहन पाकर देश में पूँजी निमार्ण को अभिप्रेरणा मिलती है। जिसकी सहायता से नवीन उद्योगों की स्थापना की जा सकती है एवं आर्थिक विकास की गति को बढ़ाया जा सकता है।

3. प्रारम्भिक व्यापारिक जोखिम (Initial Business Risk) - अर्द्धविकसित राष्ट्रों के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्रायः उद्योगों की स्थापना में बहुत अधिक जोखिम रहता है , जिसको विदेशी पूंजीपतियों की पूँजी के विनियोग द्वारा सहन किया जाता है। व्यवसाय के सफल हो जाने पर बाद में देशी उद्योगपति भी पूँजी का विनियोग करके लाभ अर्जित करते है।

4. रोजगार जीवन स्तर में वृद्धि (Increase in Employment Standard of Living)- विदेशी पूँजी के प्रयोग से ना केवल उत्पादन में वृद्धि होती है बल्कि रोजगार के नवीन अवसर भी खुल जाते है जिससे प्रतिव्यक्ति आय बढ़ती है और परिणामस्वरूप जीवन स्तर में भी वृद्धि होती है।

5. विदेशी विनियोक्ताओं को लाभ (Benefits to Foreign Investors)- विदेशी विनियोजकों को भी विदेशी पूँजी से लाभ प्राप्त होता है। अर्द्धविकसित राष्ट्रों में पूँजी विनियोग के अधिक अवसर होते है। इसके लाभदायक उद्योग (profitable industry) में पूँजी का विनियोग सम्भव हो जाता है। साथ ही इन अर्द्धविकसित राष्ट्रों द्वारा आयात करके देश के उद्योगों को सदृढ़ बनाया जा सकता है।

6. प्राकृतिक साधनों का पूर्ण विदोहन(Full Exploitation of Natural Resources)-अर्द्धविकसित राष्ट्रों में प्राकृतिक साधनों का अधिकतम दोहन नही हो पाता है। विदेशी पूँजी की सहायता से यह कार्य संभव हो जाता है तथा देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से किया जा सकता है।

7. पूंजीगत वस्तुओं से आयात की सुविधा (Facility to Import Capital Goods) - अर्द्धविकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास के लिए भारी मात्रा में पूंजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो विदेशों से आयात की जाती है और जिसके लिए भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है तो विदेशी पूँजी की सहायता से ही प्राप्त की जा सकती है।

8. स्थायी सम्पत्तियों का निमार्ण (Construction of Fixed Assets)- विदेशी पूँजी की सहायता से देश में बिजलीघर, सिचांई के साधनों, बांध आदि के रूप में स्थायी सम्पत्तियों का निमार्ण हो जाता है।

9. मुद्रा स्फीति पर रोक (Stopping Inflation)- मशीनों एवं तकनीकी सहायता के रूप में प्राप्त होने वाली विदेशी पूँजी से देश में मुद्रा स्फीति के प्रभावों को रोका जा सकता है। इसका जनता एवं देश के आर्थिक विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

10. आन्तरिक स्थायित्व (Internal Stability)–देश में आन्तरिक स्थायित्व लाने हेतु विदेशी पूँजी सहायक सिद्ध होती है। विकसित अर्थव्यवस्था में बचत से अधिक विनियोग होने से उत्पादन की मात्रा बढ़ती है तथा आय में वृद्धि होती है। अर्द्धविकसित राष्ट्रों में बचत कम होने से विनियोग कम होता है एवं आन्तरिक अर्थव्यवस्था में स्थायित्व का अभाव बना रहता है। विदेशी पूँजी आन्तरिक स्थायित्व लाकर देश के आर्थिक विकास को तीव्र करती है।

4.5विदेशी पूँजी से होने वाले सम्भावित खतरें Potential Threats from Foreign Capital)

विदेशी पूँजी आयात करने से आयात करने वाले देश को निम्नलिखित खतरे उत्पन्न होने की सम्भावना होती है।

घरेलु पूँजी को खतरा (Threat to Domestic Capital)-अर्द्धविकसित राष्ट्रों को जो पूँजी एवं श्रम , विदेशों से उपलब्ध होती है उनका व्यावसायिक और प्राविधिक स्तर अपेक्षाकृत काफी ऊँचा रहता है। इस कारण घरेलु पूँजी को खतरा हो जाता है क्योंकि वह विदेशी पूँजी से प्रतिर्स्पद्धा में नही टिक पाती।

देश की सुरक्षा को खतरा (Threat to the Security of the Country)-अर्द्धविकसित राष्ट्रों के आधारभूत उद्योगों और परियोजनाओं में निवेश विदेशी पूँजी पर निर्भर रहना देश के लिये खतरा उत्पन्न कर सकता है क्योंकि संकट की स्थिति में जब कभी देश को अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी , ऐसे में विदेशी पूंजीपति अपनी पूँजी विनिवेश करते है। सरकार के कठोर नियन्त्रण न होने पर समस्त विदेशी पूँजी विनिवेश होने का भय होता है।

आथिक मूल्य वसूल करना (Recovering Economic Value)-विकसित राष्ट्र अक्सर अर्द्धविकसित देशों की मज़बूरी का लाभ उठाते है। अर्द्धविकसित राष्ट्र अपनी परियोजनाओं और विनियोग के लिये विदेशी पूँजी और उनके प्राविधिक ज्ञान पर निर्भर रहते है। ऐसे में विकसित देश इन मशीनों और प्राविधिक सेवाओं का अधिक मूल्य वसूल करने का प्रयास करते है। जिससे देश में अन्य वस्तुओं के मूल्य भी अनावश्यक रूप में बढ़ जाते है।

पक्षपात एवं भेदभावपूर्ण नीति (Prejudice and Discriminatory Policy)-विदेशी पूँजी के सहयोग से स्थगित औद्योगिक संस्थाओं में उच्च पद पर प्रायः विदेशी व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाता है। जो सदैव पक्षपात एवं भेदभावपूर्ण नीति का अनुसरण करते है जिससे देश के कर्मचारियों को प्रशिक्षण एवं अनुभव से वंचित रहना पड़ता है।

राजनैतिक प्रभुत्व(Political Dominance)-विदेशी पूँजी के आयात के कारण अर्द्धविकसित राष्ट्र आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से पराधीन हो गए है। अतः जिसके कारण इन देशों के राजनैतिक प्रभुत्व पर भी खतरा उत्पन्न हो जाता है।

पूँजी निमार्ण को खतरा (Threat to Capital Formation)-जब विदेशी पूँजी आती है तो बहुत सा धन ब्याज व लाभ के भुगतान के रूप में विदेशों को चला जाता है। जिससे देश में पूँजी निमार्ण का अभाव बना रहता है। पूँजी निमार्ण न होने पर विकास कार्यक्रम को आगे नही बढ़ाया जा सकेगा।

देश का असन्तुलित विकास (Unbalanced Development of the Country)-विदेशी पूँजी का मूलतः प्रयोग अर्द्धविकसित देशो में उद्योगों में निवेश के रूप में किया जाता है जिसमें लाभ की मात्रा अधिक होती है। फलस्वरूप, देश के आवश्यक व आधारभूत उद्योगों की उपेक्षा हो जाती है। इससे देश का औद्यौगिक विकास असन्तुलित हो जाता है।

आर्थिक शक्ति का विदेशियों के हाथों में केन्द्रीयकरण (Centralization of economic power in the hands of foreigners)-विदेशी पूँजी के आगमन से देश के उद्योग धन्धों पर विदेशियों का ही प्रभुत्व हो जाता है।उद्योगों का संचालन केवल लाभ की आशा से ही किया जाता है जिससे देश के हितो की अवलेहना हो जाती है। इससे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण विदेशियों के हाथों में आ जाता है और वे अपनी इच्छानुसार मनमाने ढंग से उद्योगों में उत्पादन करके शोषण करने का प्रयास करते है। इससे देश का विकास देश के हित में न होकर विदेशियों के हित में हो जाता है।

4.6विदेशी पूँजी का सीमाएँ (Limits on Foreign Capital)

जिन देशों में विदेशी पूँजी को उपयोग करने का सामर्थ्य तो था परन्तु वह पूंजी का अभाव था। वहां विदेशी पूँजी सहायक सिद्ध रही है। किसी भी अर्द्धविकसित राष्ट्र में विदेशी पूँजी को रखने का अभाव अनेक कारणों से हो सकता है।

1. यदि राष्ट्र में पूर्व सुनियोजित एवं पहले से सोची हुयी सुनिश्चित योजना का अभाव हो

2. विदेशी पूँजी को उपभोग करने वाले उचित, कुशल प्रशासकों, प्रबन्धक एवं प्राविधिक ज्ञान का सर्वथाअभाव रहा हो।

3. यदि घरेलु श्रमिकों के लिये प्रशिक्षण देना कठिन हो या उन्हे उद्योग के अनुरूप बनाना कठिन हो।

4. देश की सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाएं उत्पादन की नवीन प्रणाली को अपनाने में असमर्थ हो।

5. देश में परिवहन व संचार के साधनों के अलावा विद्युतएवं अन्य ज्ञानोपयोगी सेवाओं की कमी के कारण विदेशी पूँजी का उत्पादक व भारी उद्योग में निवेश करना सम्भव न हो।

4.7विदेशी पूँजी से होने वाली हानियाँ (Losses from Foreign Capital)

विदेशी पूँजी से जहां अनेकों लाभ प्राप्त होते है, वहीं उससे होने वाली हानियां भी कम नहीं है।

1.सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की विदेशी विनियोजकों पर निर्भरता (Dependence of the Entire Economy on Foreign Investors)-देशवासी अपने निवार्ह के लिये विदेशियों की पूँजी पर निर्भर हो जाती है। पूँजी उधार देने वाले राष्ट्र के व्यापार चक्र का प्रभाव ऋण लेने वाले राष्ट्र पर भी पड़ता है।

2.घरेलु निवेशकों को बाहर करने का भय (Fear of Driving out Domestic Investors)-विदेशी विनियोक्ताओं को अनियन्त्रित स्वतंत्रता प्रदान करने पर डर बना रहता है कि विदेशी विनियोक्ता , घरेलु विनियोक्ताओं को प्रतिस्पर्धा से बाहर ना कर दें। घरेलु विनियोक्ता , विदेशी पूंजीपति से कम कुशल होते है जिसके कारण विदेशी पूंजीपति, घरेलु विनियोक्ता के समकक्ष नहीं हो सकते है।

3.विदेशी पूँजी राष्ट्र का शोषण करना (Foreign Capital Exploiting the Nation)-प्रायः यह देखा गया है कि विदेशी पूँजी का विनियोग, अर्द्धविकसित देशों के ऐसे उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। जिसमें कच्चे माल का उपयोग अधिक होता है और यह तैयार माल विदेशों को निर्यात किया जा सके। विदेशी पूँजी द्वारा अर्द्धविकसित

राष्ट्रों का शोषण ही किया गया। विदेशी निवेश होने के उपरान्त भी अविकसित देश पिछडे के पिछडे ही रह गए।

4.खानों में विदेशी निवेश का संकेंद्रण (Concentration of Foreign Investment in Mines)-विदेशी पूँजी प्रायः खानों आदि जैसे व्यवसायों में ही केन्द्रित रही क्योंकि इससे उन्हें कच्चा माल प्राप्त होता था। कच्चे माल के निर्यात के द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है और इनसे प्राप्त लाभ को आयात की जाने वाली वस्तुओं के उद्योग में उपयोग किया जाता है तो Fयात पर निर्भरता कम हो जायेगी और विदेशी विनिमय की बचत होगी। विदेशी पूँजी को निर्यात उद्योगों में केन्द्रित करने से एक तरफा विकास संभव हो सकेगा।

5.निर्यात उद्योगों में विदेशी पूंजी का निवेश (Investment of Foreign Capital in Export Industries)- विदेशी शासक का यह स्वार्थ होता है कि वे निर्यात उद्योगों में ही विदेशी पूँजी लगाए क्योंकि परिवहन साधनों का विकास बंदरगाह और मुख्य व्यापारिक केन्द्रों पर उनका ध्यान आकृष्ट रहता है ना कि देश के आन्तरिक भाग में परिवहन के साधनों पर।

6.विदेशी पूँजी का बुरा अनुभव (Bad Experience of Foreign Capital)-भूतकाल में विदेशी पूँजी का खराब अनुभव रहा है जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा है। यदि राष्ट्रीय सरकार, विदेशी पूँजी को विनियोजित एवं नियन्त्रित ढंग से आमन्त्रित करे तो बुरे प्रभावों से बचा जा सकता है , परन्तु इसके साथ ही इस बात पर भी ध्यान देना है कि देश में ऐसे नियम न बना दिया जाये जिससे विदेशी पूँजी के आगमन पर एकदम रोक लग जाए और देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़े।

7. देश की राजनीति में हस्तक्षेप(Interference in Country's Politics)-यदि विदेशी पूँजी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो इससे देश की राजनीति पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा। राजनीतिक पार्टियों को चन्दा देकर भी गुट में मिलाने का प्रयास किया जाता है।

8. घरेलू निवेशकों में गिरावट(Decline in Domestic Investors)- विदेशी पूँजी को देश के सर्वाधिक लाभदायक कार्यों में विनियोग किया जाता है। जिससे घरेलू विनियोजकों को पूँजी के विनियोग करने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। इससे देश में उद्योगों के विकास को पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं हो पाते है और देश पिछड़ जाता है।

9.भेदभावपूर्ण व्यवहार (Discriminatory Behavior) - विदेशी पूंजीपति देश के श्रमिकों एवं योग्य व्यक्तियों को अपने राष्ट्र के लाभार्थ उपयोग करते है। इससे देश के उद्योगों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता और वे पिछड़ जाते है।

10.घरेलू मांग सम्बन्धी माल का उत्पादन न करना (Not Producing Goods Related to Domestic Demand)- विदेशी पूँजी का उपयोग प्रायः घरेलू मांग सम्बन्धी माल की पूर्ति हेतु नहीं किया जाता है , जबकि इन उद्योगों को लघु पैमाने व छोटी मात्रा की पूँजी से ही प्रारम्भ किया जा सकता है। विदेशी पूँजीपति इन उद्योगों में पूँजी लगाने की नहीं सोचता। यह राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए हानिकारक हो सकती है। इसका मुख्य कारण स्थानीय बाजार का अभाव था।

11.लाभ की ऊँची दर (High Rate of Profit)-विदेशी पूँजी जिन उद्योगों में विनियोजित की जाती है उनकी लाभ की दर काफी ऊँची होती है। जबकि अन्य उद्योगों में लाभ की दर इतनी अधिक नहीं होती। लाभ की ऊँची दर रखने से वस्तुओं के उत्पादन की लागत बढ़ जाती है और इसके परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते है और देशवासियों को हानि उठानी पड़ती है।

इस प्रकार "विदेशी व्यापारिक उपक्रम देश के विकास में किस सीमा तक सहायता करता है , यह इस बात पर निर्भर नहीं होता कि यह कार्य नियति के लिये है या घरेलु उपयोग के लिये। यह इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि यह श्रमिक व अन्य स्थानीय साधनों की कितनी मांग बढ़ाता है , अपने लाभों को कितना पुनविनियोग करता तथा अन्य घटकों का इस पर प्रभाव पड़ता है।"

4.8विदेशी पूँजी से सम्बन्धित सावधानियाँ (Precautions Related to Foreign Capital)

विदेशी पूँजी जितना देश के आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होती है उतनी ही उससे होने वाली हानियां अनेक तरीको से खतरा उत्पन्न कर सकते है। अतः विदेशी पूँजी को आमन्त्रित करने से पहले कुछ सावधानियां बरत लेनी चाहिए।

(1) आन्तरिक बचत में योगदान एवं प्रोत्साहन मिल सके।

(2) विदेशी पूँजी का उपयोग अपने देश की विधि व कानून द्वारा ही होना चाहिए।

(3) विदेशी पूँजी का उपयोग करते समय देश का आर्थिक विकास ध्यान में होना चाहिए।

(4) विदेशी पूँजी का उपयोग देश की आवश्यकताओं के अनुरूप ही होना चाहिए ताकि जनता की आवश्यकता को शीघ्रता से पूर्ण किया जा सके।

(5) देश को वर्तमान में लाभ हो सके और भविष्य में दीर्घकाल तक उस पर निर्भरता न बनी रहे यह भी ध्यान देना चाहिए।

(6) विदेशी पूँजी का आगमन , उपभोक्ता सामग्री एवं प्राविधिक सहयोग के रूप में प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(7) उन देशों को अधिकाधिक निर्यात किया जाना चाहिये जिनसे भारी मात्रा में विदेशी पूँजी ली गयी हो जिससे कि भुगतान संतुलन को संतुलित रखा जा सके।

(8) विदेशी पूँजी लेने वाले राष्ट्र को ऋण व ब्याज दोनो को वापस करने सम्बन्धी उचित प्रबन्ध करने का प्रयास करना चाहिये जिससे अदायगी सरलता से की जा सके।

4.9अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघुउत्तरीय प्रश्न

1.विदेशी पूँजी किसे कहते है?

2.विदेशी पूँजी क्यों आवश्यक है?

3.विदेशी पूँजी राष्ट्र का किस प्रकार शोषण कर सकती है?

4.10 सारांश (Summary)

भारत जैसे अल्पविकसित देश में पूँजी की कमी रही है। विकास की गति तीव्र करने के लिये पूँजी की आवश्यकता में वृद्धि हुई है और चूंकि आय की वृद्धि के साथ बचत में तदनुरूप वृद्धि नहीं होती , इसलिये विदेशी पूँजी इस कमी की पूर्ति कर सकती है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि विदेशी पूँजी ने आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण में महत्वपूर्ण भाग अदा किया है। लेकिन विदेशी पूँजी की उपलब्धता से आर्थिक विकास संभव नहीं हो सकता। इसके लिये देश की बचतें होना भी आवश्यक है।

आर्थिक विकास के लिये अत्यावश्यक परियोजनाओं (Project) के लिये वित्त प्रबन्ध करने के उद्देश्य से घरेलू बचतें जुटानी कठिन हो जाती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में स्वयं पूँजी बाजार ही अल्पविकसित

होता है। इस अवधि में , जबकि पूँजी बाजार में सुधार हो रहा हो , अस्थाई उपाय के रूप में विदेशी पूँजी अत्यावश्यक होती है। विदेश पूँजी के साथ कई दुर्लभ उत्पादक तत्व जैसे तकनीकि जानकारी, व्यापारिक अनुभव और ज्ञान भी प्राप्त होते है, जो आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है।

4.11 शब्दावली(Glossary)

सृजन (Creation):

प्रबन्धकीय योग्यता (Managerial Ability):

विनियोजक (Inventor):

आन्तरिक स्थायित्व (Internal Stability):

शोषण (Exploitation):

हस्तक्षेप (Interference):

4.12 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

4.13 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

डॉ. जे.पी. मिश्रा- संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स , आगरा 2012

दत्त एवं सुन्दरम- भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चंद पब्लिकेशन्स, नईदिल्ली, 2012

एल.एन. कोली- भारतीय अर्थव्यवस्था लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा 2007

कुमार सर्वेश-भारतीय अर्थव्यवस्था, सार्थकप्रकाशन,दिल्ली, 2011

डा. जे. सी. पन्त एवं जे. पी. मिश्रा - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

डा. टी.टी. सेठी - समष्टि अर्थशास्त्र

4.14 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

Arvind Panagariya: The Emerging Giant

Bimal Jalan : India's Economic Policy: Preparing for the Twenty-First Century Penguin Books India , 2000

Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India’s New Economic Policy: Taylor &Francis US, 2010

Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952

R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis

Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India

Singh, S.P. (2010) Economics of Development & Planing theory & practice, S&Chand Publishing House

Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons

Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya

4.15 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

1. एक अर्द्धविकसित देश के आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका की समीक्षा कीजिये।

2. आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका की व्याख्या की कीजिये इसके प्रयोग में क्या-क्या सावधानियां बरतनी चाहिए।

इकाई 5- मानव संसाधन एवं विकास
(Human Resources and Development)

5.1प्रस्तावना (Introduction)
5.2उद्देश्य (Objectives)
5.3मानव पूँजी निर्माण की अवधारणा (Concept of Human Capital Formation)
5.4शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में भूमिका (Role of Education, Research and Knowledge in Economic Development)
5.5मानव पूँजी निर्माण एवं बौद्धिक पूँजी निर्माण का महत्व (Importance of Human Capital Formation and Intellectual Capital Formation)
5.5.1शोध एवं विकास (Research and Development)
5.5.2 बौद्धिक पूँजी निर्माण (Intellectual Capital Formation)
5.5.3 बौद्धिक पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण के स्रोत (Sources of Intellectual Capital Formation or Skill Formation)
5.6मानव पूँजी निर्माण के उपाय (Measures to Build Human Capital)
5.7मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएँ (Limits on Investment in Human Capital)
5.8 भारत में मानव संसाधन विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण (Human Resource Development or Intellectual Capital Formation in India)
5.9 आर्थिक विकास में मानवीय पूँजी की भूमिका (Role of Human Capital in Economic Development)
5.10 राष्ट्रीय पोषण नीति (National Nutrition Policy)
5.11 भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक (Basic Indicators of Human Development in India)
5.12 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
5.13 सारांश(Summary)
5.14 शब्दावली(Glossary)
5.15 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)
5.16 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)
5.17 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)
5.18 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

5.1प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाई में हमने पूँजी संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य सम्बंधों को दर्शाया। आर्थिक विकास न मात्र पूँजी निर्माण द्वारा प्रभावित होता है वरन् मानव संसाधन भी आर्थिक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते है।

आर्थिक विकास एक यान्त्रिक क्रिया मात्र ही नहीं वरन् अंतिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है। मानव संसाधन विकास, मानव पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानव शक्ति के विकास हेतु प्रचुर मात्रा में मुद्रा निवेश किया जाता है ताकि देश की मानव शक्ति तकनीकी ज्ञान योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके।

यदि किसी देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप है और उसके निवासी विवेकशील परिश्रमी, शिक्षित व कार्य दक्ष है तो निःसन्देह अन्य बातों के समान रहने पर उस देश का आर्थिक विकास अधिक रहेगा। इस प्रकार मानव पूँजी निर्माण, मानव में विनियोग और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है।

5.2उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेंगे कि-

- मानव संसाधन की क्या अवधारणा है?
- बौद्धिक पूँजी निर्माण की आवश्यकता क्यों है?
- शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में क्या भूमिका है?
- मानव पूँजी निर्माण का क्या महत्व है?
- मानव पूँजी निर्माण के क्या स्त्रोत है?
- मानवीय विनियोग के क्या क्षेत्र है?
- मानव पूँजी निर्माण के क्या उपाय है?
- मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएं
- भारत में मानव संसाधन विकास

5.3मानव पूँजी निर्माण की अवधारणा (Concept of Human Capital Formation)

मानव पूँजी निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त करना तथा उनकी संख्या में वृद्धि करना है जो कुशल, शिक्षित तथा अनुभवी हों, जिनकी देश के आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिये नितान्त आवश्यकता होती है। इस प्रकार मानव पूँजी निर्माण , मानव में विनियोग और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है। सरल शब्दों में यदि कहा जाय तो ऐसा कोई भी विनियोग जो मानव शक्ति की शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, कार्यकुशलता तथा जीवन स्तर में वृद्धि करता है उसे मानव संसाधन के विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण में किया गया सक्रिय विनियोग समझा जाता है। मानव संसाधन जन समुदाय की कुशलता, गुणों एवं प्रवृत्तियों से परिभाषित होता है।

पर्याप्त व श्रेष्ठतम मानव पूँजी उपलब्ध होने से देश की भौतिक पूँजी भी अधिक उत्पादक बन जाती है। वहीं विपरीत परिस्थिति में जब किसी देश में मानव पूँजी का अभाव है तब भौतिक पूँजी का भी लाभपूर्ण

उपयोग नहीं हो पाता , मशीने रूक जाती है , उपकरणों की घिसावट समय से पहले होने लगती है और परिणामस्वरूप उपज की किस्म व उत्पादकता का स्तर गिर जाता है।

बैबलन के अनुसार , प्रौद्योगिकीय ज्ञान तथा कुशलता समाज की 'अभौतिक उपकरण तथा अमूर्त सम्पत्ति'है जिसके बिना भौतिक पूँजी उत्पादकपूर्वक प्रयोग में नहीं लायी जा सकती। अल्पविकसित देशों में धीमी वृद्धि के लिये उत्तरदायी मानव पूँजी में निवेश की कमी है। आर्थिक पिछड़ापन दूर करने और प्रगति , क्षमताएँ व प्रोत्साहन उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि लोगों के ज्ञान व कुशलता में वृद्धि की जाय। वास्तव में मानव साधन के गुण में सुधार किये बिना अल्पविकसित देशों में कोई प्रगति सम्भव नहीं।

संकुचित अर्थ में बौद्धिक पूँजी निर्माण का अर्थ है , मानव की शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर व्यय करना जबकि विस्तृत अर्थ में, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समस्त सामाजिक सेवाओं पर किये जाने वाले व्यय से लगाया जाता है।

5.4शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में भूमिका (Role of Education, Research and Knowledge in Economic Development)

किसी देश का आर्थिक विकास उसकी कार्यकुशलता , शिक्षित एवं प्रशिक्षित श्रम शक्ति पर निर्भर करता है। विवेकशील, परिश्रमी, शिक्षित व कार्यदक्ष निवासी होने पर किसी भी देश का आर्थिक विकास सकारात्मक होगा। कुशल मानव पूँजी के अभाव में भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग न हो सकेगा जिससे लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल सकेगा। ऐसा इस कारण है कि मशीनें रूक जाती है उपकरण समय से पूर्व घिसने लगते है और उपज की किस्म व उत्पादकता का स्तर गिर जाता है। मानव साधन के गुणों में सुधार करके , उनके ज्ञान व कुशलता में वृद्धि करके आर्थिक पिछड़ेपन को दर किया जा सकता है , प्रगति, क्षमताएं व प्रोत्साहन बनाये रखने के लिये शिक्षा, शोध एवं ज्ञान में वृद्धि परम आवश्यक है।

अतितदास गुप्त के अनुसार , "शिक्षा को आबण्टित किये गये साधन उत्पादकीय क्षमता को बढ़ाने में सहायक होते है, अतः शिक्षा तथा अन्य आधार संरचना निवेश सिद्धान्त के आवश्यक अंग है।"

आर्थिक विकास के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। प्रो. मिर्डल के शब्दों में "बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम शुरू करने की बात मुझे निरर्थक मालूम पड़ती है।"

कुशल श्रमिक एवं अकुशल श्रमिक में यह अंतर है कि एक अकुशल श्रमिक द्वारा अधिक देर तक काम करने से उनकी प्रति व्यक्ति आय कम होगी। निरक्षर तथा अप्रशिक्षित व्यक्तियों से जटिल मशीनों की देखरेख नहीं करानी चाहिये।

जैफ रनेज ने यह लक्ष्य किया है कि आर्थिक प्रगति के लिये प्रयासरत देश जब विकसित देशों से आधुनिक तकनीक व नवीनतम मशीनरी का आयात करते है और विशालकाय प्लाण्टों को खड़ा करते है , तो भी उत्पादन प्रायः सन्तोषजनक नहीं होते। इसके पीछे स्पष्ट कारण है कि प्रबन्धक तथा श्रमिक अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होते है और साथ ही अनुभवहीन थी।

प्रो. सिंगर के अनुसार जो विनियोग शिक्षा एवं ज्ञान पर किया जाता है वह विनियोग केवल उत्पादक ही नहीं वरन् बढ़ता हुआ प्रतिफल भी देता है। विकसित देशों द्वारा शिक्षा , अनुसन्धान पर अधिक महत्व दिया जाने के पीछे यही कारण है। नवप्रर्वतनों की भूमिका का अंदाजा यहीं से लगा लिया जाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील देशों द्वारा योग्य एवं प्रशिक्षित श्रमिकों तथा तकनीकशियनों पर बल देने से आर्थिक विकास सम्भव हो सका है। अमेरिकी अर्थशास्त्रियों जैसे शुल्ज, हार्बिन्सन, डैनिसन, कैण्ड्रिक व कुजनेट्स आदि के अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था की तीव्र वृद्धि के लिये मुख्य रूप से शिक्षा पर किया गया विनियोग ही उत्तरदायी है। शिक्षा पर खर्च किया गया एक डालर अपेक्षाकृत कई गुना वृद्धि करता है।

इस तरह विकास की प्रक्रिया में शिक्षा का महत्व एक गैर विवाहित सत्य है। आज विश्व के देशों में मानव पूँजी में निवेश हेतु उच्च प्राथमिकता दी जाती है। मानव पूँजी में निवेश से तात्पर्य संकुचित अर्थों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर व्यय करना है, जबकि व्यापक अर्थों में, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी सामाजिक सेवाओं पर व्यय करने से लगाया जाता है।

शिक्षा सम्बन्धी विनियोग मुख्यतः निम्न तीन क्षेत्रों में किये जा सकते हैः-

(1) कृषि विस्तार सेवाओं की व्यवस्था करने

(2) औद्योगिक कौशल को उन्नत करने तथा

(3) प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

निष्कर्ष रूप में, यह कह सकते है कि मानव पूँजी में विनियोग के औचित्य व महत्व को आज निर्विवाद रूप में स्वीकार किया जा चुका है , परन्तु अल्पविकसित देशों में मानवीय विनियोग की अपनी कुछ सीमाएं हैं , जिनके कारण इन देशों में वांछित दर से कौशल निर्माण नहीं हो पाता।

5.5 मानव पूँजी निर्माण एवं बौद्धिक पूँजी निर्माण का महत्व (Importance of Human Capital Formation andIntellectual Capital Formation)

किसी देश की जनसंख्या का जितना अधिक हिस्सा शिक्षित , कुशल एवं प्रशिक्षित होकर रोजगार में लगा हुआ है , वह देश उतना ही तेजी से विकास करेगा। जैसा कि प्रो. गेलब्रेथ का विचार है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास में अनेक साधनों के अलावा शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का सर्वाधिक योगदार रहा है। उन्हीं के शब्दों में "अब हमें अपनी औद्योगिक वृद्धि का एक बड़ा भाग अधिक पूँजी के विनियोग से नहीं मिलता है बल्कि वह मनुष्यों में निवेश और परिष्कृत मनुष्यों द्वारा किये गये सुधारों के कारण प्राप्त होता है।"इस तरह आर्थिक विकास की दृष्टि से भौतिक पूँजी की अपेक्षा मानव पूँजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि मानवीय साधनों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढांचा खड़ा किया जा सकता है।

व्यापक अर्थों में पूँजी निर्माण से आशय श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। कुजनेट्स ने इसकी पुष्टि करते हुये व्यक्त किया कि मुख्य पूँजीगत स्टॉक लोगों का प्रशिक्षण, चरित्र एवं कार्यकुशलता है। एडम स्मिथ ने भी इस विषय में कहा , "पूँजी के स्टॉक में सब निवासियों की अर्जित तथा उपयोगी योग्यताओं को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये। "अर्थशास्त्री मार्शल ने भी व्यक्त किया , "सबसे मूल्यवान पूँजी वह है जो मानव मात्र में विनियोजित की जाय।"

यह कहना उचित है कि किसी देश के सर्वांगीण विकास के लिये वहाँ के मनुष्यों का निपुण , ज्ञानी और बुद्धिमान होना आवश्यक होता है। अविकसित मानव संसाधन ही अल्पविकसित राष्ट्र के विकसित होने में बाधक है। इनके मानव संसाधन न कौशल में निपुण , न चातुर्य में जिस कारण आधुनिक भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग उत्पादन में प्रयुक्त नहीं हो पाता। मानव संसाधन के विकास पर ध्यान न देकर भौतिक साधनों पर ही

ध्यान देना श्रेयस्कर नहीं होगा। अतः मनुष्य में निवेश करना उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि भौतिक पूँजी में।

श्रेष्ठतम मानव पूँजी की उपलब्धता उस देश की भौतिक पूँजी को भी उत्पादक बना देती है। अल्पविकसित देशों को विकसित बनने के लिये भौतिक संसाधनों के साथ-साथ मानव संसाधन का विकास भी करना होगा। आज के युग में मानव पूँजी में विनियोग अथवा मानव संसाधन का विकास आर्थिक विकास की एक प्रमुख शर्त एवं पूर्व आवश्यकता बन चुकी है।

5.5.1शोध एवं विकास (Research and Development)

प्रो. शुम्पीटर के अनुसार प्राविधिक प्रगति से आशय, "अर्थव्यवस्था में उत्पादन साधनों के ऐसे संयोग का प्रवेश है जो पहले सम्भव नहीं था अथवा प्रयुक्त नहीं किया था। वह एक ऐसी वस्तु है जिसे आन्तरिक साधन के रूप में प्रवेश दिया जाता है और जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर आर्थिक संक्रान्ति की प्रक्रिया के लिये उत्तरदायी होती है।"

शोध, प्राविधिक परिवर्तन आर्थिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। प्रो. किण्डलबर्गर के शब्दों में "प्राविधिक प्रगति का अर्थ किसी व्यवसाय में प्रयुक्त ज्ञान और वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन है।"तकनीकी प्रगति में योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के सापेक्ष महत्व और स्वयं प्रगति की रफ्तार भी विभिन्न देशों में उनकी विकास अवस्थाओं तथा सामाजिक, आर्थिक शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।

तकनीकी प्रगति के चार मुख्य स्त्रोत निम्नलिखित है-

(1) देश की जनता की अन्वेषणकारी तथा नवप्रवर्तनकारी क्रियाएँ

(2) विदेशी व्यापार, विदेशी सहायता अथवा सम्पर्क आदि विभिन्न माध्यमों से विदेशी से सुधारी हुयी तकनीकों का आयात

(3) 'करने द्वारा सीखना'अर्थात् देश के श्रमिकों , प्रबन्धकों, मालिकों का उत्पादन कार्यों में व्यावहारिक अनुभव और सीख।

(4) मानवीय पूँजी में निवेश अर्थात् देश की जनता तथा श्रमिकों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा निपुणता में सुधार।

शुम्पीटर के अनुसार प्रगति रचनात्मक विनाश की प्रक्रिया का परिणम है। विदेशी तकनीको को आत्मसात करके देश का विकास किया जा सकता है। इसे 'सांस्कृतिक विकरण प्रक्रिया'कहा जाता है। आज के विकसित समाज की प्रमुख विशेषता तकनीकी प्रगति है इस बहुमुखी प्रक्रिया के अन्तर्गत नयी तकनीकें , नयी मशीनें, परिवर्तित कार्यकुशलता तथा उत्पादकता आदि सम्मिलित है। प्रो. कुजनेट्स ने तकनीकी विकास के विभिन्न सोपानों को निर्धारण इस प्रक्रार किया हैः-

(1) वैज्ञानिक खोज अथवा तकनीक में वृद्धि

(2) आविष्कार

(3) आविष्कार का आर्थिक उत्पादन में प्रयोग

(4) नव प्रवर्तन का अधिकाधिक प्रसार एवं उसमें सुधार।

आज के आधुनिक अर्थव्यवस्था में विकसित होने की प्रक्रिया में देश शामिल है और निरन्तर सुधार की प्रक्रिया में लगे है। शोध एवं अन्वेषण आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक का आधार है और आधुनिक तकनीक आर्थिक प्रगति का आधार है।

5.5.2 बौद्धिक पूँजी निर्माण (Intellectual Capital Formation)

एक विवेकशील मानव पूँजी देश की अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाने तथा उपलब्ध संसाधनों का युक्तिपरक विदोहन करने में सक्षम होती है। अधिक शिक्षित , एवं तकनीक ज्ञान से युक्त जनसंख्या से देश का विकास तेजी से होता है। बौद्धिक सम्पदा के रूप में इंजीनियर , तकनीकी प्रशिक्षक, प्रबन्धकीय और शासकीय सेविवर्ग , वैज्ञानिक, चिकित्सक व कृषि विशेषज्ञ होने पर भौतिक पूँजी अधिक उत्पादक बन जाती है। इन्हीं कारणों से वर्तमान में समस्त देश अपने उपलब्ध संसाधनों की सहायता से बौद्धिक पूँजी निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न है। मुद्रा का नागरिकों की क्षमता एवं कुशलता में वृद्धि करने हेतु निवेश किया जा सकता है। इससे बौद्धिक पूँजी निर्माण होता है।

वैबलन के अनुसार, प्रौद्योगिकीय ज्ञान तथा कुशलता समाज के अभौतिक उपकरण तथा अमूर्त सम्पत्ति है जिसके बिना भौतिक पूँजी उत्पादकतापूर्वक प्रयोग में नहीं लाई जा सकती है। इसी कारण अल्पविकसित देश पर्याप्त मात्रा में मानव पूँजी में निवेश न करने के कारण धीमी गति से प्रगति करते है।

5.5.3 बौद्धिक पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण के स्त्रोत (Sources of Intellectual Capital Formation or Skill Formation)

मानव विकास के दो मुख्य स्त्रोत है-

1. आन्तरिक स्त्रोत (Internal Sources)- किसी भी देश की आत्मनिर्भरता वहाँ के घरेलु तकनीक एवं संसाधनों के विकसित होने पर निर्भर करता है। आयातित तकनीक दीर्घकाल के लिये हितकारी नहीं होता। देश यथासंभव आन्तरिक संसाधनों पर निर्भर रहकर कौशल निर्माण कर सकते है।

(1) विशिष्ट तकनीकी संस्थाओं की स्थापना करके तथा

(2) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना कर उनमें प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करना।

2. बाह्य स्त्रोत (External Sources) - बाह्य स्त्रोत से तात्पर्य है विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की सहायता लेना अथवा घरेलु श्रम शक्ति को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के लिये विदेशी तकनीकी संस्थाओं एवं विशेषज्ञों के ज्ञान का उपयोग करना। विदेशी कौशल के आयात के मुख्य रूप से चार रूप हो सकते है-

(1) विदेशी तकनीकीशियनों को स्थायी अथवा अस्थायी रूप से देश में नियुक्त करना

(2) घरेलु श्रमिकों को प्रशिक्षण देने के लिये कुछ समय के लिये विदेशी विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना

(3) देश के श्रमिकों को तकनीकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु विदेशों में भेजना

(4) तकनीकी विशेषता प्राप्त विदेशी श्रमिकों को देश में प्रवास हेतु प्रोत्साहित करना आदि।

5.6मानव पूँजी निर्माण के उपाय (Measures to Build Human Capital)

मानव पूँजी के विकास के लिये निम्न उपायों का प्रयोग किया जाता हैः-

1. अनिवार्य शिक्षा (Compulsory Education) - शिक्षा वह अस्त्र है जिसका कुशलतापूर्वक प्रयोग करके व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकता है। एक शिक्षित व्यक्ति देश के आर्थिक विकास में एक सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। अतः माध्यमिक स्तर तक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रो. लुईस का इस मुद्दे पर अपना यह मत है कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही आर्थिक एवं सामाजिक विकास के ध्वजवात्मक तथा अनायुक्त अधिकारी है।

2. तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल (More Emphasis on Technical Education) - विभिन्न व्यावसाया में शिक्षित एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों के रूप् में मानव पूँजी की आवश्यकता इसलिये अधिक होती है क्योंकि वे जटिल विधियों एसं उपकरणें का प्रयोग करते है। क्रांतिक कुशलता वाले व्यक्तियों की अधिक आवश्यकता होती है। जैसे-डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापार प्रबन्धक, वैज्ञानिक, तकनीशियन आदि।

3. शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन (Changes in Education System)- निरक्षरता दूर करने के साथ-साथ उच्च शिक्षा मात्र योग्य व्यक्तियों के लिये ही होनी चाहिये। व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा के विकास पर बल देना चाहिये। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सामन्य स्नातक स्तर तक शिक्षा करने मात्र से मानव पूँजी का निर्माण नहीं होता , केवल शिक्षित बेरोजगारी ही बढ़ती है। इससे सामाजिक असन्तोष बढ़ता है , उत्पादकता घटती है।

4. प्रौढ शिक्षा (Adult Education) - प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को कृषकों , कृषि अनुसन्धान केन्द्रों तथा प्रयोगशालाओ जोड़ा जाना चाहिये। इससे कृषकों का दृष्टिकोण बदलेगा। उनकी बौद्धिक क्षमता विकसित होगी रूढ़ियों एवं प्रथाओं के सम्बंध में अधिक विवेकशील होंगे।

5. समुचित प्रेरणा (Proper Motivation)- हार्बिन्सन के अनुसार, तीव्र आर्थिक विकास तभी सम्भव है जब मानव इस बात के लिये समुचित प्रेरणा दी जाय कि वे उत्पादक क्रियाओं में रत रहे। आधुनिकीकरण के लिये यह परम आवश्यक है। ऐसी संस्थाओं का पथप्रदर्शन किया जाना चाहिये जिससे वे प्रशिक्षित किया जा सके।

5.7मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएँ (Limits on Investment in Human Capital)

मानव पूँजी आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस औचित्य को स्वीकृत करने में कोई शंका नहीं है। अल्पविकसित देशों के संदर्भ में मानव पूँजी का समुचित विकास नहीं हो सका। इसका कारण है कि इन देशों में गरीबी और पूँजी के अभाव में इस क्षेत्र में पर्याप्त विनियोग नहीं हो सका। यही कारण है कि इन देशों में कौशल निर्माण की गति धीमी रहती है।

निम्नलिखित कारणों से मानव पूँजी अथवा मानव संसाधन में निवेश जोर नहीं पकड़ रहा है।

(1) इन देशों में मानव संसाधनों के विकास हेतु पूँजी का अभाव रहता है।

(2) कौशल निर्माण के लिये विदेशी तकनीकी ज्ञान का आयात करना पड़ता है। परन्तु इन देशों में विदेशी विनिमय कोषों का अभाव रहता है जिससे आयात करने में कठिनाई होती है।

(3) अधिकांश अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कृषि प्रधान होती है और कृषि के अन्तर्गत नव प्रवर्तन और कौशल निर्माण की सम्भावना कम रहती है।

(4) इन देशों के सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संगठनों तथा रूढ़िवादी विचारों के कारण भी प्राविधिक ज्ञान को अपनाने व लागू करने में कठिनाई बनी रहती है।

(5) इन देशों में लोग विकास , ज्ञान तथा कौशल के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते है। इससे मानव पूँजी में विनियोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता।

(6) अल्पविकसित देशों में वित्तीय साधनों का अभाव पाया जाता है। इस कारण जो भी साधन उपलब्ध होते है वे या तो मानवीय साधनों के विकास पर व्यय किया जाय या फिर भौतिक साधनों के विकास में। एक को विकसित करने में दूसरे का समुचित विकास नहीं हो पाता। इससे त्वरित आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(7) कौशल निर्माण एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। मानव संसाधनों के विकास की यह एक प्रक्रिया है जो निरन्तर किये जाने वाले प्रयासों के फलस्वरूप दीर्घकाल में ही फलीभूम होती है। कौशल निर्माण के प्रमुख तीन तत्व है-

शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुभव को साकार रूप प्रदान करने के लिये एक लम्बे समय तक विनियोग करना पड़ता है। अतः न मात्र विनियोग अपितु सतर्कता और असीमित धैर्य की परम आवश्यकता भी पड़ती है।

5.8 भारत में मानव संसाधन विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण (Human Resource Development or Intellectual Capital Formation in India)

मानव संसाधन की आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यकता को भारत देश में स्वीकार किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में स्पष्ट किया गया कि ,"आर्थिक क्षेत्र में तेजी से विकास करने, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नति करने तथा स्वतन्त्रता , सामाजिक न्याय और समान अवसर के सिद्धान्त पर आधारित समाजवादी समाज की स्थापना के लिये यदि कोई एक तत्व सबसे महत्वपूर्ण है तो वह है शिक्षा , स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण। भारत के भावी निर्माण में राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अंग में ये क्षेत्र सुनियोजित विकास के केन्द्र बिन्दु रहेंगे।"

ऊपर दिये गये तत्व शिक्षा , जन स्वास्थ्य और चिकित्सा पर भारत में मात्र 5 से 10 प्रतिशत के बीच व्यय किया जाता है। यह प्रतिशत मानव संसाधन के विकास के लिये पर्याप्त नहीं है। विकासवादी अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि कम से कम 30 से 40 प्रतिशत मानव संसाधन विकास पर अवश्य व्यय करना चाहिये।

विश्व बैंक रिपोर्ट 1999-2000 में यह स्पष्ट लिखा है कि, "अन्य सभी विकास प्रयासों अथवा उद्यमों की ही भाँति शिक्षा और स्वास्थ्य भी अंतर सम्बन्धित है और यह समग्र विकास प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते है। मानव विकास का पथ अंततः आर्थिक विकास की ओर जाता है। विकासशील देशों को इस सच्चाई को जानना बहुत आवश्यक है।"

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विस्तार पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। पढ़ने वाले बच्चों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। नये प्राथमिक विद्यालय , महाविद्यालय आदि खुलते जा रहे है। इसके साथ ही स्वास्थ्य का स्तर जो इस बात का भी द्योतक है कि व्यक्ति कितने समय तक निर्माण कार्य में संलग्न रहकर देश के उत्थान में योगदान कर सकता है। उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है और यह सत्य है कि सपा और कमजोर जनता देश की आर्थिक प्रगति में योगदान नहीं देंगे वरन् बाधक ही सिद्ध होते हैं।

अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है। अस्पतालों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि हो रही है। महामारी और अन्य बीमारियों पर नियन्त्रण पा लिया गया है। यद्यपि इतना सब कुछ प्रयास किया जा रहा है फिर भी इस क्षेत्र अब भी और विकास सम्बन्धित सुविधाओं की आवश्यकता है। मृत्यु दर जो वर्तमान में 8 प्रति हजार है को कम करने की आवश्यकता है वहीं जीवन प्रत्याशा को भी बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है।

5.9 आर्थिक विकास में मानवीय पूँजी की भूमिका (Role of Human Capital in Economic Development)

किसी भी राष्ट्र की जनसंख्या , उसके मानव संसाधन उस राष्ट्र की सम्पत्ति है। देश की मानव पूँजी उस राष्ट्र की उन्नति में सहायक है। मानवीय संसाधनों को संगठित करके उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि लाई जा सकती है। यदि जन शक्ति का समुचित दोहन नहीं किया गया तो यह रोजगार के अभाव में देश के लिये एक भारत बन जायेगा।

मानव संसाधन राष्ट्र के लिये एक सम्पत्ति है।

(1) प्राकृतिक संसाधनो का विदोहन (Exploitation of Natural Resources) - मानव पूँजी द्वारा ही प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन सम्भव हो पाता है। जनसंख्या वास्तव में राष्ट्र की सम्पत्ति है।

(2) राष्ट्र की रक्षा (National Defence)- रक्षात्मक कार्य भी देश की जनसंख्या के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

(3) विस्तृत बाजार (Broad Market)- अधिक जनसंख्या होने से विस्तृत बाजार मिल पाता है और विलोमशः।

(4) अनुसंधान एवं विकास (Research and Development)- मानव संसाधन के द्वारा ही अनुसंधान एवं विकास कार्य होता है। यह बताया जाता है कि देश में कौन-कौन से खनिज व अन्य पदार्थ देश में उपलब्ध है तथा उनका उपयोग किन-किन कार्यों के लिये किया जा सकता है।

(5) श्रम विभाजन के लाभ (Benefits of Division of Labour)- पर्याप्त जनसंख्या होने से उद्योगों में श्रम विभाजन की नीति अपनाकर लाभ प्राप्त किये जा सकते है।

राष्ट्र को जनसंख्या के विकास हेतु अपने दायित्व का निर्वाह निम्न उपायों से करना चाहिये।

(1) खाद्यान्नों की पूर्ति (Supply of Food Grains)- भोजन, कपड़ा व मकान की पूर्ति करना जनसंख्या की आधारभूत आवश्यकताओं हेतु किया जाना चाहिये। यह एक गम्भीर दायित्व है।

(2) आवास समस्या (Housing Problem)- मकान, पार्क, सड़कें आदि निर्मित करना राष्ट्र के दायित्वों में आता है।

(3) स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ (Health and Medical Facilities)- इससे कुपोषण जनसंख्या नहीं रहेगी तो कार्यक्षमता में वृद्धि होगी।

(4) शिक्षा सुविधाएँ (Education Facilities)- उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करना राष्ट्र की जिम्मेदारी है। इससे मानव संसाधन की गुणवत्ता बढ़ती है।

(5) रोजगार सुविधाएँ (Employment Facilities)-राष्ट्र का दायित्व है कि जनसंख्या को रोजगार की सुविधाएँ प्रदान करे।

(6) परिवहन एवं संदेशवाहन सुविधाएँ (Transport and Conveyance Facilities)- राष्ट्र द्वारा इन सुविधाओं को प्रदान करने से आर्थिक क्रियाओं का भी विकास सम्भव हो सकेगा।

(7) शान्ति एवं सुरक्षा (Peace and Security)- एक सुदृढ़ प्रशासन का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह देश में शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखे।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है , “मानव संसाधन जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के लिये आवश्यक तत्व है वहाँ दूसरी ओर एक दायित्व भी है। सामान्यतया सीमित जनसंख्या की स्थिति में कोई विशेष दायित्व नहीं है, लेकिन जब जनसंख्या काफी बढ़ जाती है तो उत्तरदायित्व में वृद्धि हो जाती है जो आगे चलकर देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है।”

5.10 राष्ट्रीय पोषण नीति (National Nutrition Policy)

वर्ष 1993 में घोषित राष्ट्रीय पोषण नीति के अन्तर्गत सन् 2000 तक निम्नलिखित लक्ष्यों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया है-

(1) स्कूल पूर्व के बच्चों में अत्याधिक कुपोषण के आपात के स्तर को 50 प्रतिशत तक घटाना

(2) चिरकालीन अल्प पोषण को घटाना और जन्म पर कम वजन वाले बच्चों के अनुपात कम करके 10 प्रतिशत तक लाना।

(3) सूक्ष्म पोषकों के अभाव को समाप्त करना।

(4) वृद्धावस्था पोषण पर अधिक बल देन।

(5) खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाकर 2500 लाख टन करना।

(6) गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों द्वारा पारिवारिक खाद्य सुरक्षा को उन्नत करना और उचित एवं स्वस्थ जीवन शैली को प्रोन्नत करना।

(7) निःसन्देह राष्ट्रीय पोषण नीति अपने घोषित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं कर सकी।

5.11 भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक (Basic Indicators of Human Development in India)

भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा , साक्षरता दर, जन्म दर, मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर को सम्मिलित किया जाता है।

परिवार कल्याण सेवाओं की सुलभता और स्वास्थ्य के प्रति सचेत होने से अखिल भारतीय मृत्यु दर , जन्म दर तथा शिशु मृत्यु दर में गिरावट आयी है तथा साक्षरता के स्तर में सुधार हुआ है। इसी सब के फलस्वरूप भारत का मानव विकास सूचकांक ऊपर उठा है। देश में आर्थिक विकास के फलस्वरूप सामान्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार आया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देश में मानव संसाधन का निर्माण अभी प्राथमिक अवस्था है अतः देश की आर्थिक विकास को गति प्रदान के लिये देश में स्वस्थ नागरिकों , कुशल श्रमिकों , तकनीशियनों वैज्ञानिकों तथा प्राविधिकों की संख्या में वृद्धि करनी होगी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मतानुसार "भारत प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से पूर्णतया सम्पन्न राष्ट्र है तथा इसके नागरिक प्रतिभाशाली एवं शक्तिमान है। उनमें विकास एवं पुर्ननिर्माण की उत्कृष्ट अभिलाषा विद्यमान है- आवश्यकता है तो केवल उसे गति एवं व्यावहारिकता प्रदान करने की। यह उत्तरदायित्व अब विश्वविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थाओं का है कि वे ज्ञान का सृजन करके नूतन मस्तिष्कों को प्रशिक्षित करें ताकि प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों का समन्वित एवं सन्तुलित ढंग से उपयोग किया जा सके।"

दसवीं पंचवर्षीय योजना ने मानव विकास की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु आत्मनिर्भरता प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया। यह एक सकारात्मक पहल है।

5.12 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) बौद्धिक पूँजी की अवधारणा को समझाइये?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. शिक्षा सम्बन्धी विनियोग कौन से क्षेत्रों में किये जा सकते है?

    क. कृषि विस्तार सेवा

    ख. औद्योगिक कौशल को उन्नत करने प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

    ग. औद्योगिक कौशल को उन्नत करने प्रशासकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

    घ. उपरोक्त सभी

2. राष्ट्रीय पोषण नीति कब घोषित की गयी?

    क. 1991 ख. 1992

ग. 1993   घ. 1994

3.मानव विकास के प्रमुख स्त्रोत क्या है?

क. आन्तरिक स्त्रोत ख. बाह्य स्त्रोत

ग. उपरोक्तदोनों   घ. उपरोक्तमें से कोई नहीं

5.13सारांश(Summary)

मानव शक्ति के विकास हेतु प्रचुर मात्रा में मुद्रा निवेश किया जाता है ताकि देश की मानव शक्ति तकनीकी ज्ञान योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके। मानव पूँजी निर्माण , मानव में विनियोग और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है। श्रेष्ठतम मानव पूँजी उपलब्ध होने से देश की भौतिक पूँजी भी अधिक उत्पादक बन जाती है। कुशल मानव पूँजी के अभाव में भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग न हो सकेगा जिससे लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल सकेगा।यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील देशों द्वारा योग्य एवं प्रशिक्षित श्रमिकों तथा तकनीकशियनों पर बल देने से आर्थिक विकास सम्भव हो सका है।आज विश्व के देशों में मानव पूँजी में निवेश हेतु उच्च प्राथमिकता दी जाती है। मानव पूँजी में निवेश से तात्पर्य संकुचित अर्थो में शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर व्यय करना है, जबकि व्यापक अर्थो में, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी सामाजिक सेवाओं पर व्यय करने से लगाया जाता है।

आर्थिक विकास की दृष्टि से भौतिक पूँजी की अपेक्षा मानव पूँजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि मानवीय साधनों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढांचा खड़ा किया जा सकता है। अतः मनुष्य में निवेश करना उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि भौतिक पूँजी में।तकनीकी प्रगति में योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के सापेक्ष महत्व और स्वयं प्रगति की रफ्तार भी विभिन्न देशों में उनकी विकास अवस्थाओं तथा सामाजिक, आर्थिक शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।शोध एवं अन्वेषण आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक का आधार है और आधुनिक तकनीक आर्थिक प्रगति का आधार है।मानव विकास के दो मुख्य स्त्रोत है-आन्तरिक स्त्रोत, बाह्य स्त्रोत।

अल्पविकसित देशों के संदर्भ में मानव पूँजी का समुचित विकास नहीं हो सका। इसका कारण है कि इन देशों में गरीबी और पूँजी के अभाव में इस क्षेत्र में पर्याप्त विनियोग नहीं हो सका। यही कारण है कि इन देशों में कौशल निर्माण की गति धीमी रहती है। मानव पूँजी के विकास के लिये निम्न उपायों का प्रयोग किया जाता हैः- अनिवार्य शिक्षा, तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल, प्रौढ शिक्षा, समुचित प्रेरणा आदि। विकासवादी अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि कम से कम 30 से 40 प्रतिशत मानव संसाधन विकास पर अवश्य व्यय करना चाहिये।भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विस्तार पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। पढ़ने वाले बच्चों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। नये प्राथमिक विद्यालय , महाविद्यालय आदि खुलते जा रहे है। मानव संसाधन राष्ट्र के लिये एक सम्पत्ति है। मानव संसाधन जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के लिये आवश्यक तत्व है वहाँ दूसरी ओर एक दायित्व भी है।

5.14 शब्दावली(Glossary)

मानव संसाधन (Human Resource)

भौतिक पूँजी(Physical Capital)

वर्द्धमान प्रतिफल - (Increasing Return)

पोषण युक्त (Nutrition's)

तकनीकी संस्थाएं (Technical Institutions)

सूक्ष्म पोषक(Micro Nutrient)

5.15अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

1. घ. उपरोक्त सभी 2. ग. 1993 3.ग. उपरोक्तदोनों

5.16 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

डॉ. जे.पी. मिश्रा- संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स , आगरा 2012

दत्त एवं सुन्दरम- भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चंद पब्लिकेशन्स, नईदिल्ली, 2012

एल.एन. कोली- भारतीय अर्थव्यवस्था लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा 2007

कुमार सर्वेश-भारतीय अर्थव्यवस्था, सार्थकप्रकाशन,दिल्ली, 2011

डा. जे. सी. पन्त एवं जे. पी. मिश्रा - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

डा. टी.टी. सेठी - समष्टि अर्थशास्त्र

5.17 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

Arvind Panagariya: The Emerging Giant

Bimal Jalan : India's Economic Policy: Preparing for the Twenty-First Century Penguin Books India , 2000

Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India’s New Economic Policy: Taylor &Francis US, 2010

Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952

R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis

Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India

Singh, S.P. (2010) Economics of Development & Planing theory & practice, S&Chand Publishing House

Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons

Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya

5.18 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

1. मानव पूँजी निर्माण से आप क्या समझते हैं? आर्थिक विकास में मानव पूँजी निर्माण की क्या भूमिका है?

2. “एक विकासशील अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण की अपेक्षा मानवीय संसाधनों के विकास को उच्चतर प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिये।”क्या आप इस कथन से सहमत है?

3. मानव पूँजी निर्माण की आवश्यकता एवं महत्व को समझाइये?

इकाई 6- गरीबी (Poverty)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)
6.2 उद्देश्य(Objectives)
6.3 गरीबी: आशय (Poverty: Meaning)
6.4 गरीबी की माप (MeasurementofPoverty)
6.5 गरीबी का परिमाण (MagnitudeofPoverty)
6.6 भारत में गरीबी का अनुमान (PovertyEstimatesinIndia)
6.7 राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी का परिदृश्य (State-wisescenarioofPoverty)
6.8 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम (PoliciesandProgrammesforPovertyAlleviation)
6.8.1 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ (PoliciesforPovertyAlleviation)
6.8.2 गरीबी निवारण के लिए कार्यक्रम (ProgrammesforPovertyAlleviation)
6.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Poverty Alleviation Strategies)
6.10 गरीबी निवारण के उपाय (MeasuresofPovertyAlleviation)
6.11अभ्यास हेतु प्रश्न(Practice Questions)
6.12सारांश(Summary)
6.13शब्दावली (Glossary)
6.14अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)
6.15संदर्भग्रन्थसूची(Reference/Bibliography)
6.16उपयोगी / सहायकपाठ्य सामग्री(Useful/Helpful Text)
6.17 निबन्धात्मकप्रश्न (Essay type Questions)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

गरीबी से आशय उस सामाजिक अवस्था से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित रहता है। गरीबी की माप के लिए सामान्यतः सापेक्षित प्रतिमान एवं निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है। भारत में गरीबी की माप कैलोरी मानक के अनुसार की जाती है। गरीबी निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम योजना काल में लागू किए गए परन्तु आशानुसार सफलता नहीं प्राप्त हुई।इस सन्दर्भ में और उपाय एवं नीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता हैं ,प्रस्तुत इकाई में इसकी विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप गरीबी आशय एवं परिदृश्य को जान पायेगें। भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।आप इससे जुड़ी सरकार द्वारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

6.2 उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- गरीबी आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगें ।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- सरकार द्वारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

6.3 गरीबी: आशय (Poverty: Meaning)

भारतवर्ष में गरीबी की समस्या का विश्लेषण करने से पूर्व अर्थव्यवस्था की संरचना एवं स्वरूप को समझना अति आवश्यक है। प्रारम्भ में जब अंग्रेजों ने भारत में आधिपत्य स्थापित किया तो उन्होंने देश की सम्पत्ति तथा संसाधनों का पूरी तरह से विदोहन का प्रयास किया जो उनके निहित स्वार्थों के पक्ष में था। उन्होने भारतीय शासकों जमीदारों एवं सामान्य जनता तथा व्यापारियों से जबरदस्ती वसूली की वहीं दूसरी ओर भारतीय कारीगरों,नील की खेती करने वाले किसानों और व्यापारियों का शोषण भी किया तथा भारत में उपलब्ध अतिरेक को ब्रिटेन ले जाकर अपने देश की समृद्धि हासिल की। भारत में ब्रिटिश राज्य के पूर्णतया स्थापित हो जाने के बाद प्रचलित प्रत्यक्ष लूट की प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी शोषण की प्रणाली उभर कर सामने आयी।

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। सरकार के सामने समस्या थी कि कैसे अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाये भारत में आर्थिक विकास की इन समस्याओं को हल करने लिए बाजार व्यवस्था के साथ नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना। और 1951 से पहली पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ किया। अब तक दस पंचवर्षीय योजना पूर्ण हो चुकी हैं और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। एक लम्बी अवधि के अन्तराल के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन आए।

जब समाज का एक भाग न्यूनतम जीवन स्तर से भी नीचे जीवन यापन के लिए विवश होता है तो यह स्थिति गरीबी की स्थिति कहलाती है। विश्व के सभी देशों में गरीबी को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना है। यद्यपि गरीबी को कई दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है। एक दृष्टिकोण में गरीबी को आधारिक सुविधाओं तथा भोजन,आवास,शिक्षा तथा चिकित्सा से सम्बद्व कर परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। आय के स्तर पर

विचार किए बिना यदि किसी परिवार में इस आधारिक सुविधाओ की कमी रहती है तो उस परिवार को गरीब माना जाता है। इस दृष्टिकोण का सबसे बड़ा दोष यह है ,कि इसमें वे भी परिवार गरीबी की सूची में सम्मिलित कर लिए जाते है जिनकी आय अधिक है परन्तु अपनी बुनियादी आवश्यकताओं पर व्यय नहीं करते है। और दूसरी ओर वे परिवार सम्मिलित नहीं होते है जिनकी आय तो नगण्य है परन्तु वे ऋण ,पूर्व बचत को कम करके रिश्तेदारों और मित्रों से सहायता लेकर अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। एक दूसरे दृष्टिकोण में एक परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं का आकलन तथा फिर एक आधार वर्ष की कीमत के आधार पर अपेक्षित आय में रुपांतरित कर दिया जाता है। भारत में इसी दृष्टिकोण के आधार पर गरीबी को परिभाषित किया जाता है। विभिन्न विद्वानो ने गरीबी को निम्न प्रकार परिभाषित किया है:

राउन्ट्री(Rowntree)ने गरीबी को परिभाषित करते हुये लिखा है कि "गरीबी जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये किये गये न्यूनतम व्यय से सम्बन्धित है , जिसमें भोजन, कपड़ा, मकान, घर का किराया, ईंधन आदि सभी आवश्यक वस्तुओं की कीमत शामिल है।"

दो अध्येताओं,शाहीन रफी खान(Shaheen Rafi Khan) और डैमियन किल्लेन (Damian Killen)ने गरीबी की स्थिति को बहुत स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। इनके अनुसार गरीबी भूख है ,गरीबी बीमार होना है और डॉक्टर को न दिखा पाने की विवषता है। यह स्कूल में न जा पाने और निरक्षर रह जाने का नाम है। गरीबी बेरोजगारी व अपने भविष्य के प्रति भय है। यह अपने बच्चे को उस बीमारी से मरते हुये देखने की स्थिति है जो अस्वच्छ पानी पीने से होती है। गरीबी शक्ति प्रतिनिधित्व और स्वतन्त्रता की हीनता का नाम है।

एस. महेन्द्र देव (S.Mahendra Dev) ने गरीबी को बहुआयामी तथ्य के संदर्भ में लिया है। इनके अनुसार गरीबी केवल आय व उपभोग के स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य व शिक्षा का भी गरीबी की अवधारणा में विचार करना चाहिये।

प्रो. अर्मत्य सेन (Prof. AmartyaSen)के अनुसार, गरीबी निरपेक्ष वंचित की तुलना में सापेक्षिक अभाव को बताती है। सेन का मानना है कि सामान्यतः भुखमरी गरीबी को ही दर्शाती है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि व्यापक रूप में गरीबी होने पर भुखमरी भी गम्भीर अवस्था में हो।

बाईसब्रान्ड(Brisebrand)के अनुसार गरीबी मुख्यतः अपर्याप्त भोजन ,कपड़ा और रहने की समस्या से सम्बन्धित है।

इस प्रकार गरीबी की धारणा एक बहुआयामी तथ्य है। यह केवल आय व उपभोग स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य,शिक्षा,आवास व उचित रहन-सहन के स्तर से वंचित रहने की स्थिति से भी सम्बन्धित है।

6.4 गरीबी की माप (MeasurementofPoverty)

गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता हैः

1. सापेक्षित प्रतिमान (RelativeMeasurement):गरीबी के सापेक्षित माप के अर्न्तगत देश की जनसंख्या की सम्पत्ति उपभोग अथवा आय स्तर के आधार पर विभिन्न क्रमिक वर्गो में विभक्त किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त वर्गों को सम्पति ,आय,उपभोग के बढ़ते या घटते हुए स्तरो के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है। तत्पश्चात उच्चतम 5 प्रतिशत या 10 प्रतिशत निवासियों के अंश से की जाती है। सापेक्षित प्रतिमान के आधार पर प्राप्त जानकारी गरीबी की अपेक्षा आय ,सम्पत्ति तथा उपभोग के वितरण में व्याप्त विषमता का बेहतर चित्रण करती है। इसकी सीमा यह है कि इसके द्वारा गरीबी की माप करने पर विकसित देशों में भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी की श्रेणी में आयेगा। यद्यपि उन देशो के गरीबों के रहन सहन का स्तर विकासशील देशों के गरीबों

की तुलना में अधिक बेहतर होगा। वस्तुतः यह प्रणाली गरीबी की वास्तविक माप का चित्रण नहीं करके आर्थिक विषमता का चित्रण करती है। यही कारण है कि भारत में गरीबी की माप इस विधि से नहीं की जाती है।

2. निरपेक्ष प्रतिमान (AbsoluteMeasurement): गरीबी माप की इस विधि के अर्न्तगत गरीबी की माप के लिए देश में विद्यमान एक न्यूनतम उपभोग स्तर को जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। न्यूनतम उपभोग स्तर से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति को गरीबो की श्रेणी में रखा जाता है। भारत में इस न्यूनतम उपभोग स्तर को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए जीवन यापन हेतु अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं की न्यूनतम मात्रा को पोषकता की न्यूनतम मात्रा के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भौतिक मात्राओं की कीमत से गुणा करके मुद्रा के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। प्राप्त मौद्रिक मान प्रति व्यक्ति न्यूनतम उपभोग व्यय को प्रदर्शित करता है। यही न्यूनतम उपभोग व्यय गरीबी रेखा को व्यक्त करता है। ज्ञातव्य है कि गरीबी की माप के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग सर्वप्रथम खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रथम महानिदेशक सर जॉन बॉयड ओर (SirJohnBoydOrr) ने 1945 में किया तथा इसके आधार पर गरीबी की माप करने के लिए क्षुधा रेखा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। यही संकल्पना विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

भारत में गरीबी की माप करने के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का ही प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रतिमान के आधार पर निर्धारित किए गये न्यूनतम उपभोग व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी जाती है। इस विधि के माध्यम से गरीबी की माप करने की विधि को हेड काउंट रेशियो भी कहा जाता है।

6.5 गरीबी का परिमाण (Magnitude of Poverty)

भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान लगाने के लिये समुचित एवं संतोषजनक आँकड़ों का अभाव है। इसका कारण यह है कि इस देश में आय के वितरण से सम्बन्धित आँकड़ांे का प्रायः उचित संकलन नहीं हो पाता। परन्तु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के विभिन्न दौर में सर्वेक्षण के आधार पर जनसंख्या के विभिन्न वर्गों द्वारा निजी उपभोग पर व्यय के संतोषजनक आँकड़े उपलब्ध हुये हैं। परन्तु गरीबी की परिभाषा पर मतभेद और अध्ययन की रीतियों के अन्तर के कारण बर्धन , मिन्हास, पी.डी. ओझा तथा दांडेकर व नीलकंठ रथ आदि अर्थशास्त्री गरीबी की व्यापकता के सम्बन्ध में एक दूसरे से भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं।

1.पी.डी. ओझा के अनुमान (Estimates of P.D. Ojha): ओझा का मत है कि वे सभी व्यक्ति जिन्हें अपने आहार से प्रतिदिन 1,800 कैलोरी की प्राप्ति नहीं होती , गरीब माने जा सकते हैं। 1960-61 में प्रचलित मूल्यों के आधार पर भोजन के उपर्युक्त स्तर के अनुरूप प्रति व्यक्ति उपभोग 15-18 रू. प्रति माह होना चाहिये।इस आधार पर ओझा के अनुसार 1960-61 में 52 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा इसी वर्ष शहरी क्षेत्रों में 56 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के स्तर से नीचे थी।

2.दांडेकर एवं रथ के अनुमान (EstimatesofDandekarandRath) : इन्होंने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा प्रदत्त आँकड़ों का प्रयोग किया है। वे 1968-69 में ग्रामीण क्षेत्रों में उन परिवारों को गरीबी के स्तर के नीचे मानते हैं जिनकी वार्षिक आय 324 रूपये से कम थी। इस श्रेणी में आने वाले लोग समस्त ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत थे। शहरी क्षेत्र के लिये उन्होंने गरीबी का स्तर प्रति व्यक्ति 486 रूपये वार्षिक आय पर निर्धारित किया। इस आधार पर 1968-69 में शहरी क्षेत्र में 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति गरीबी के स्तर से नीचे थे।

3.वी. एम. दांडेकर तथा नीलकंठ रथ (V.M. DandekarandNeelkanthRath): ने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेेंक्षण द्वारा उपलबध आँकड़ों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि 1960-61 से 1968-69 के मध्य

उपभोग पर व्यय में औसत 4.8 प्रतिशत वृद्धि हुई है। 1960-61 से 1967-68 तक सात वर्षों में उपभोग पर औसतन वृद्धि 3.9 प्रतिशत रही। इसी अवधि में जहाँ गाँवों में उपभोग व्यय 3.4 प्रतिशत बढ़ा, शहर में औसत वृद्धि दर 2.4 प्रतिशत थी। दांडेकर और रथ के ही शब्दों में विकास के लाभ प्रधानतः उच्च , मध्यम तथा सम्पन्न वर्गों के लोगों तक ही जो जनसंख्या के 40 प्रतिशत हैं, सीमित रहे हैं। जबकि सात वर्षों में राष्ट्रीय उपभोग के औसत स्तर में 3.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहाँ ग्रामीण लोगों में सर्वोच्च 40 प्रतिशत, लोगों के उपभोग के स्तर में 4.4 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या में ऊपर के 40 प्रतिशत लोगों के उपभोग में 4.8प्रतिशत वृद्धि हुई। गांॅवों में मध्यम, निम्न मध्यम तथा गरीब श्रेणियों के लोगों के प्रति व्यक्ति उपभोग में अपेक्षाकृत थोड़ा सुधार हुआ और सबसे गरीब 5 प्रतिशत व्यक्तियों के प्रति व्यक्ति उपभोग में थोड़ी कमी हुई है। शहरी क्षेत्र में स्थिति अधिक गंभीर है। शहरी जनसंख्या के सबसे नीचे के 40 प्रतिशत व्यक्तियों के औसत प्रति व्यक्ति उपभोग में कमी हुई और सबसे गरीब 10 प्रतिशत जनसंख्या का उपभोग का स्तर 15 से 20 प्रतिशत गिर गया। विकास के लाभों का इस प्रकार का असमान वितरण, अंततः आर्थिक असमानता को बढ़ाता है और धनी तथा गरीब के बीच खाई चौड़ी करता है।

4.प्रणव के. वर्धन के अनुमान (EstimatesofPranavK. Vardhan): बर्धन ने कृषि में नवीन नीति के वितरण पर प्रभाव का अध्ययन किया है। उनके अनुसार वर्तमान शताब्दी के सातवें दशक के अन्त में भारत की लगभग 54 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या न्यूनतम स्वीकार्य जीवन स्तर के नीचे थी। बर्धन ने गरीबी की रेखा 1960-61 के मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति 15 रूपये मासिक निजी उपभोग के स्तर के अनुरूप स्वीकार की है। 1967-68 और 1968-69 में प्रचलित कीमतों के आधार पर इन वर्षों में गरीबी की रेखा क्रमशः 30.0 और 29.4 रू0 प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग के अनुरूप होगी। बर्धन के अनुमान के अनुसार इस वर्ष गरीबी की रेखा के नीचे आने वाले ग्रामीणों की संख्या 23 करोड़ थी, जो तत्कालीन ग्रामीण जनसंख्या की 54 प्रतिशत थी।

5.बी. एस. मिन्हास के अनुमान (EstimatesofB.SMinhas) : मिन्हास का विचार है कि 1960-61 के मूल्यों के आधार पर 200 रू0 वार्षिक के प्रति व्यक्ति निजी उपभोग द्वारा ग्रामीण परिवारों के लिये न्यूनतम जीवन स्तर को प्राप्त कर सकना संभव होगा। ”शहरी और ग्राम्य दोनों ही क्षेत्रों को मिलाकर देखने पर सारे देश के लिये सरकारी विशेषज्ञ समिति न्यूनतम जीवन स्तर के लिये 240 रू. वार्षिक प्रति व्यक्ति निजी उपभोग की राशि इससे कम ही होनी चाहिये और मिन्हास इसे 200 रू0 मान लेते हैं।

6.डॉ. कोस्टा (Dr. Costa) ने अपने अनुमान में गरीबी के तीन स्तर बताये हैं , अर्थात् अतिदीन, दीन और गरीब। उनके अनुमान के अनुसार 1963-64 में 6.2 करोड़ व्यक्ति अतिदीन जीवन व्यतीत करते थे। 10.4 करोड़ दीन और 16.2 करोड़ व्यक्ति गरीबी का जीवन व्यतीत करते थे। अतिदीनता का जीवन गुजारने वाले लोगों का अनुपात 13.2 प्रतिशत था और गरीबी में रहने वालों का 34.9 प्रतिशत था।

7.एम. एस. आहलूवालिया (M.S. Ahluwalia) ने भी गरीबी के अनुमान प्रस्तुत किये। 1956-57 में ग्रामीण जनता का 54.1 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा था। गरीब जनता का यह अनुमान 1960-61 में 38.9 प्रतिशत ही रहा गया। इसके बाद 1967-68 तक गरीबों की संख्या में वृद्धि हुई। 1967-68

के बाद इस गरीबी अनुपात में कमी आयी और 1973-74 में यह गरीबी अनुपात ग्रामीण जनसंख्या का 46.1 प्रतिशत रह गया।

देश में गरीबी अनुपात के ताजा आँकड़े योजना आयोग ने मार्च 2007 में जारी किये हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NationalSampleSurveyOffice- N.S.S.O) ने गरीबी की स्थिति के आंकलन के लिये 2004-05 के अपने सर्वेक्षण में दो तरह की प्रश्नावली का प्रयोग किया है। जिसमें प्रथम 30 दिन के यूनीफार्म रिकॉल पीरियड (UniformRecallPeriod-U.R.P)उपभोग व्यय व दूसरा 365 दिन के संदर्भ वाले मिक्स्ड रिकॉल पीरियड (MixedRecallPeriod-M.R.P) पर आधारित था। इन दोनों ही आधारों पर गरीबी अनुपात अलग-अलग आँकलित किया गया है। U.R.P. आधारित आँकलन में देश में गरीबों की संख्या 2004-05 में 30.7 करोड़ बतायी गयी है, जबकि M.R.P. आँकड़ों में यह 23.85 करोड़ है जिसमें ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में गरीबों की कुल संख्या क्रमशः 17.03 करोड़ व 6.82 करोड़ आँकलित है। इससे पूर्व 1999-2000 के आँकड़ों में देश के गरीबों की कुल संख्या (गरीबी रेखा से नीचे कुल जनसंख्या) 26.02 करोड़ (ग्रामीण क्षेत्रों में 19.32 करोड़ व शहरी क्षेत्रों में 6.7 करोड़) थी।

हमारे देश में गरीबी के माप हेतु गरीबी रेखा के निर्धारण करने का प्रयास सर्वप्रथम सरकार द्धारा गठित एक विशेषज्ञ दल द्धारा 1961 में किया गया। इस विशेषज्ञ दल ने 1960-61 की कीमतों पर 240 रु. वार्षिक या 20 रू. मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय को गरीबी रेखा माना था। इस विशेषज्ञ दल ने न्यूनतम उपभोग व्यय में शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर किए जाने वाले व्यय का भार को नहीं लिया क्योंकि इनको सरकार स्वंय वहन करती है। उक्त विशेषज्ञ दल ने यह भी कहा था कि बाद के वर्षो के लिए गरीबी रेखा का अनुमान कीमत वृद्धि से उक्त राशि को समायोजित कर प्राप्त किया जा सकता है। इसी आधार पर समय-समय पर विशेषज्ञो ने गरीबी रेखा तथा गरीबी के स्तर का अनुमान लगाया गया है। 1973-74 में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता को ध्यान में रखकर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 49-1 रू. तथा नगरीय क्षेत्र में 56-6 रू. मासिक व्यय से कम को गरीबी रेखा माना गया। बाद में इसमें संशोधन कर 1984-85 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों में 107 रू0 तथा नगरीय क्षेत्रों में 122 रू0 मासिक व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी। 2004-05 में इसमें पुन:संशोधित करके प्रतिव्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में 356-00 रू. और शहरी क्षेत्रों में 538-6 रू. मासिक व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी। इससे स्पष्ट है कि हमारे देश में गरीबी रेखा का निर्धारण भौतिक अतिजीवन की संकल्पना के आधार पर किया गया है।

योजना आयोग द्वारा आंकलित गरीबों की संख्या को लेकर विवाद बना रहता है। 1993-94 में योजना आयोग ने प्रसिद्व अर्थविद डी. टी. लकड़वाला की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ दल द्वारा योजना आयोग के पूर्व आँकडों को अविश्वसनीय बताते हुए गरीबी की माप के लिए वैकल्पिक फार्मूले का उपयोग करने का सुझाव दिया। जिसके अंतर्गत शहरी गरीबी के आंकलन के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक एवं ग्रामीण क्षेत्रो में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक ;ब्वदेनउमत च्तपबम प्दकमगद्ध को आधार बनाया। 11 मार्च 1997 को योजना आयोग की पूर्ण बैठक में गरीबी रेखा की माप के लिए लकड़वाला फार्मूले (LakdawalaFormula) को स्वीकार कर लिया गया। इस न्यूनतम उपभोग के लिए आवश्यक आय के विषय पर अर्थशास्त्री एकमत नहीं है। 7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की

संकल्पना का प्रतिपादन किया। इस वर्द्धित गरीबी रेखा के निर्धारण में मासिक वैयक्तिक उपभोग व्यय में सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, समाज कल्याण आदि पर किए जाने वाले प्रति व्यक्ति मासिक व्यय की राशि भी जोड़ दिया। इस प्रकार प्राप्त हुई धनराशि को वर्द्धित गरीबी रेखा का नाम दिया गया। वर्द्धित गरीबी रेखा पूरे देश के लिए समान नहीं होगा बल्कि इसका निर्धारण प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग होगा। इस कारण योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार "जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।"

जो व्यापक गरीबी की स्थिति को बताता है। जिसका विद्यमान होना चिन्ता का विषय है। इसी अवधारणा पर आधारित योजना आयोग राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं विश्व बैंक द्वारा उपभोग व्यय से सम्बन्धित जो जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी के अनुमापन का प्रयास किया गया।

6.6 भारत में गरीबी का अनुमान (PovertyEstimatesinIndia)

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के विभिन्न दौर पर किए गये सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से सामान्य गरीबी का विश्लेषण तालिका 6.6.1 एवं 6.6.2 के आधार पर करते हैं तो गरीबी के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष पाया गया- समग्र गरीबी का अनुपात 1993-94 से 2004-05 की अवधि के दौरान 36.0 प्रतिशत से कम होकर 27.5 प्रतिशत हो गया अर्थात् इसमें 8.50 प्रतिशत की कमी हुई जो इसके पूर्व की अवधि 1983-84 से 1993-94 के बीच भी 44.5 प्रतिशत से कम होकर 36.0 प्रतिशत अर्थात् इसमें भी 8.5 प्रतिशत की कमी हुई। शहरी क्षेत्र में यह अनुपात 1983-84से 1993-94 की अवधि में 40.8 प्रतिशत से कम होकर 32.4 प्रतिशत अर्थात् 8.4 प्रतिशत की कमी जो वर्ष 1993-94 से 2004-05 में 32.4 प्रतिशत से कम होकर 25.7 प्रतिशत अर्थात् इसमें 6.7 प्रतिशत की कमी हुई। ग्रामीण क्षेत्र में यह अनुपात 1983-84 से 1993-94 की अवधि में 45.7प्रतिशत से कम होकर 37.3प्रतिशत अर्थात् 8.4प्रतिशत की कमी हुई वर्ष 1993-94से 2004-05में 37.3प्रतिशत से कम होकर 28.3प्रतिशत अर्थात् 9.0प्रतिशत की कमी हुई।

तालिका 6.6.1

समग्र देश में विभिन्न वर्षो में गरीबी का अनुमान

(वर्ष 1983-84 से 2004-05)

वर्ष	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी
1973-74	54.9	56.4	49.0
1983-84	44.50	45.70	40.80
1993-94	36.0	37.30	32.40
2004-05	27.5	28.30	25.70

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

ग्राफ संख्या- 6.6.1

भारत में गरीबी का अनुमान (वर्ष 1983-84से 2004-05)
प्रतिशत में
वर्ष

इसके साथ, शहरों में 8.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 26.8 प्रतिशत और ग्राम क्षेत्रों में 22.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 73.2 प्रतिशत है देश में गरीबों की कुल संख्या 30.2 करोड़ थी।

तालिका 6.6.2

गरीबी में परिर्वतन (वर्ष 1973 से 2005)
प्रतिशत में

	दस वार्षिक			वार्षिक		
वर्ष	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी
1973-83	10.40	10.70	8.20	1.00	1.10	0.80
1983-94	8.50	8.40	8.40	0.83	0.81	0.87
1994-2005	8.50	9.00	6.90	0.78	0.80	0.59

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

इन आँकड़ों के विश्लेषण (तालिका 6.6.2) से यह निश्चित होता है वर्ष 1984-94 में समग्र भारत में गरीबी में कमी की दर जहाँ 0.83 प्रतिशत वार्षिक थी। वह वर्ष 1994से 2005 में कुछ मात्रा में घट कर 0.78 प्रतिशत वार्षिक हो गई। उन्हीं वर्षों में ग्रामीण क्षेत्र में 0.81 प्रतिशत से घटकर 0.80 प्रतिशत वार्षिक हो गई। वहीं शहरी क्षेत्र में 0.87 प्रतिशत से घटकर 0.59 प्रतिशत वार्षिक रह गई।

6.7 राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी का परिदृश्य (State-wisescenarioofPoverty)

राज्यों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण से प्राप्त आँकडों का विश्लेषण करें तो वर्ष 1993-94 से 2004-05 कें युग में बड़े चुनौती युक्त परिणाम प्राप्त हुए। 61वें दौंर में गरीबी रेखा का अनुमापन समग्र भारत के आधार पर प्रति व्यक्ति मासिक व्यय ग्रामीण क्षेत्रांे में 358.03 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 540.40 रुपये के आधार पर किया गया। और राज्यों के सन्दर्भ मेंेंं यह अलग-अलग है जैसा तालिका 6.7.1 में दिया है।

तालिका 6.7.1

विभिन्न राज्यों में निर्धारित गरीबी रेखा (2004-05)

राज्य	ग्रामीण	शहरी
आन्ध्र प्रदेश	292.95	544.30
असम	387.64	378.38
बिहार	356.36	461.70
गुजरात	353.93	540.80

हरियाणा	414.76	504.20
हिमाचल प्रदेश	394.20	504.20
जम्मू व कश्मीर	391.26	504.20
कर्नाटक	324.17	603.50
केरल	429.07	562.00
मध्य प्रदेश	324.48	569.00
महाराष्ट्र	362.25	664.50
उड़ीसा	325.65	544.00
पंजाब	410.38	456.10
राजस्थान	374.57	531.10
तमिलनाडू	351.86	551.70
उत्तर प्रदेश	369.76	487.10
पश्चिम बंगाल	382.82	446.10
सम्पूर्ण भारत	358.03	540.40

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

राज्यों के सन्दर्भ में गरीबी के ज्ञात तथ्यों का तालिका 6.7.1 के आधार पर विश्लेषण करते है तो निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते है।

तालिका 6.7.2

विभिन्न राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या

(वर्ष 1993-94 से 2004-05)

राज्य	ग्रामीण		शहरी		कुल प्रतिशत	
	1993-94	2004-05	1993-94	2004-05	1993-94	2004-05
जम्मूकश्मीर	30.3	4.6	9.2	7.9	25.2	5.4
पंजाब	11.9	9.1	11.4	7.1	11.8	8.4
हिमाचल प्रदेश	30.3	10.7	9.2	3.4	28.4	10.0
हरियाणा	28.0	13.6	16.4	15.1	25.1	14.0
दिल्ली	1.9	6.9	16.0	13.2	14.7	14.7
केरल	25.8	13.2	24.5	20.2	25.4	15.0
आन्ध्र प्रदेश	15.9	11.2	38.3	28.0	22.2	15.8
गुजरात	22.2	19.1	27.9	13.0	24.2	16.8
असम	45.0	22.3	7.7	3.3	40.9	19.7

राजस्थान		26.5	18.7	30.5	32.9	27.4	22.1
कर्नाटक	29.9	20.8	40.1	32.6	33.2	25.0	
महाराष्ट्र	37.9	29.6	35.2	32.2	36.9	30.7	
उ. प्र.	42.3	33.4	35.4	30.6	40.9	32.8	
म.प्र.	40.6	36.9	48.4	42.1	42.5	38.3	
तमिलनाडु		32.5	22.8	39.8	22.2	35.0	22.5
प. बंगाल		40.8	28.6	22.4	14.8	35.7	24.7
बिहार	58.2	42.1	34.5	34.6	55.00	41.4	
उड़ीसा	49.7	46.8	41.6	44.3	48.6	46.4	
उत्तराखण्ड	....		40.8	....	36.5	....	39.6
सम्पूर्ण भारत		37.3	28.3	32.4	25.7	36.00	27.5

स्रोत: योजना आयोग एवं राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण।

1.गुजरात और तमिलनाडु ऐसे राज्य थे जहाँ 1993-94 में ग्रामीण गरीबी शहरी गरीबी से कम थी , परन्तु वर्ष 1993 से 2004 में शहरी गरीबी में विशेष कमी हुई उस रुप में ग्रामीण गरीबी नहीं घटी।

2.अनेक सम्पन्न राज्यांे में शहरी गरीबी में जिस अनुपात में कमी हुई उस अनुपात में ग्रामीण गरीबी में कमी नहीं हुई जैसे आन्ध्रप्रदेश में ग्रामीण गरीबी में कमी 4.7 प्रतिशत की हुई जबकि शहरी गरीबी में 10 प्रतिशत की कमी हुई। गुजरात में ग्रामीण में 3.1 प्रतिशत और शहरी गरीबी में 14.9 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई और तमिलनाडु में ग्रामीण गरीबी में 9.7 प्रतिशत की एवं शहरी गरीबी में 17.6 प्रतिशत की कमी हुई।

3.दिल्ली ऐसा प्रदेश रहा जहाँ ग्रामीण गरीबी 1.9 प्रतिशत से बढ़कर 6.9 प्रतिशत हो गई।

4.जम्मू कश्मीर,पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, केरल, असम, राजस्थान, प0 बंगाल एवं कर्नाटक में ग्रामीण गरीबी में विशेष सुधार हुआ।

5.हिमाचल प्रदेश (5.8), आन्ध्र प्रदेश (10.3), गुजरात (14.9), तमिलनाडु (17.6), पं0 बंगाल (7.6), कर्नाटक (7.5) आदि सम्पन्न राज्यो में शहरी गरीबी में दस प्रतिशत से अधिक या उससे थोडी कम की कमी हुई।

6.गरीबी का सर्वाधिक प्रतिशत उड़ीसा में 46.4 प्रतिशत था और सबसे कम अनुपात जम्मू और कश्मीर में 5.4 प्रतिशत था।

7.महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश , मध्य प्रदेश और उत्तराखण्ड में गरीबी अनुपात 30 प्रतिशत से अधिक था। जबकि झारखण्ड, छत्तीसगढ, बिहार और उड़ीसा में गरीबी अनुपात 40 प्रतिशत से अधिक रहा। और दिल्ली , हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और जम्मू और कश्मीर ऐसे राज्य थे जहाँ गरीबी अनुपात 15 प्रतिशत से भी कम है।

6.8 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम (PoliciesandProgrammesforPovertyAlleviation)

6.8.1 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ (PoliciesforPovertyAlleviation)

भारतीय संविधान और पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय को सरकार की रणनीतियों का प्राथमिक उद्देश्य माना है।

प्रथम योजना (1951-56) में ही यह विचार व्यक्त किया गया था कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की अंतःप्रेरणा का उदय गरीबी और आय ,संपत्ति तथा अवसरों की असमानताओं से होता है और माना गया कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया के बढ़ने के साथ रिसाव सिद्धान्त प्रभावी हो जायेगा एवं गरीबी और आय , सम्पत्ति की असमानता में कमी आएगी।

दूसरी योजना (1956-61)में भी कहा गया है , "आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम भाग्यशाली वर्गो तक पहुँचना चाहिए "। प्राय सरकार के सभी नीति विषयक प्रपत्रों में गरीबी निवारण और अपनाई जाने वाली रणनीतियों की चर्चा हुई है। इस सन्दर्भ में सरकार गरीबी निवारण के लिए त्रि-आयामी नीति अपनाई। प्रथम संवृद्धि आधारित जो प्रथम ,दूसरी एवं तीसरी योजना में रही जो राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि का प्रभाव धीरे-धीरे गरीबी वर्ग तक पहुँचने पर आधारित था। जिसमें चुने क्षेत्रों का तीव्र औद्योगिक विकास हो।

तीसरी योजना (1961-66)में लागू हरित क्रान्ति से कृषि का पूर्ण काया-कल्प कर समाज के अधिक पिछड़े वर्गो को लाभान्वित करना था। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में बहुत वृद्धि न हो सकी एवं साथ ही धनी एवं गरीबी की खाई और बढ़ गई। हरित क्रान्ति ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के बीच खाई को और चौड़ा किया। जबकि भूमि के पुर्नवितरण की इच्छा तथा योग्यता का अभाव था।

चौथी योजना (1969-74)तक गरीबी के निवारण हेतु प्रत्यक्ष कार्यवाही की जगह अप्रत्यक्ष नीति का सहारा लिया जाता रहा।

पाँचवी योजना (1974-1979)में प्रथम बार गरीबी से मुक्ती को मुख्य उद्देश्य माना गया। योजना के अर्न्तगत गरीबी निवारण,स्वालम्बन की प्राप्ति,आय की विषमताओं में कमी और गरीबों के उपभोग स्तर में वृद्धि के मुख्य लक्ष्य नियत किए थे।

छठी योजना (1980-85)में भी गरीबी निवारण को महत्ता प्रदान की गई। विकास कार्यक्रमो में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की सामाजिक आर्थिक अन्तसंरचना को सुदृढ़ करने ,ग्रामीण गरीबी का निवारण एवं क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम संचालित किए।

सातवीं योजना (1985-90)में खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि ,रोजगार अवसरों में वृद्धि,आधुनिकीकरण,स्वालम्बन व सामाजिक न्याय के आधारभूत सिद्धान्त के आधार पर उत्पादकता में वृद्धि आने पर बल दिया गया जिससे गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव हो इसी रणनीति के तहत गरीबी से सन्दर्भित अनेक कार्यक्रम चलाये गयें।

आठवीं योजना (1992-97) में नियोजित विकास हेतु 'मानव विकास' को मुख्य रूप से मानव विकास की स्थितियों में गिरावट की ओर ध्यान देते हुए न्याय संगत सामाजिक स्थिति के पुनरूस्थापन पर जोर दिया

गया। यह सुनिश्चित किया गया कि योजना के केन्द्र में,आम लोगों की आवश्यकताएँ व उनका जीवन स्तर सुधार का लक्ष्य रहे। इसके लिए काम के अधिकार ,ग्रामीण विकास की अनिर्वायता ,विकेन्द्रीकरण व एकीकृत क्षेत्र आयोजना,कृषि का विकास,शहरी गरीबी व बेरोजगारी का निवारण व सामाजिक विकास शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तर में परिवर्तन,खाद्य व सामाजिक सुरक्षा की बेहतर स्थिति व जनसंख्या नियत्रंण की रणनीति प्रस्तावित की गयी।

नवीं योजना (1997-2002)में उन योजनाओं को प्राथमिकता के आधार पर लागू किया गया जो कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गयी जिससें कि गरीबी का निवारण हो सके। इसके साथ ही योजना हेतु र्निदिष्ट स्कीमों में श्रम गहन होने पर जोर दिया गया जो दीर्घकालीन धारणीय लाभ प्रदान कर सके। योजना काल में आरम्भ किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के द्वारा जो संरचनात्मक सुधार लागू हुए उनका ध्येय भी गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करना ही था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07)के दौरान तीव्र वृद्धि के साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी में बड़ी कमी का लक्ष्य रखा गया। योजना में 8 प्रतिशत वार्षिक विकास का लक्ष्य रखा गया। इसके साथ प्राथमिक शिक्षा व साक्षरता में वृद्धि करना ,स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई। परन्तु जहाँ वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत प्राप्त हुई वहीं गरीबी निवारण कार्यक्रमों में उतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई जितनी आशा थी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2002-12)में समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ शुरू की गई है। जिसमें गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार के अनेक दीर्घकालीन कार्यक्रमों को लागू किया गया है और इसे इस प्रकार क्रियान्वित किया जाना है कि आर्थिक व सामाजिक विकास में राज्यों के बीच अन्तर समाप्त हो जाए।

6.8.2 गरीबी निवारण के लिए कार्यक्रम (ProgrammesforPovertyAlleviation)

गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार ने अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। इसमें से अधिकांश कार्यक्रम भौतिक सम्पदा के निर्माण जैसे- ग्रामीण आधारिक संरचना के अन्तर्गत सड़क,पीने का पानी की सुविधाओं,सीवरेज आदि से जुड़े है जबकि अन्य को स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करना तथा व्यापार प्रारम्भ करने हेतु सहायता प्रदान करना है। स्वयं सहायता समूह भी लोगों के सतत् विकास हेतु प्रयत्नशील है। गरीबी निवारक कार्यक्रम निम्न है-

अस्थायी रोजगार सृजित करने वाले कार्यक्रम (TemporaryEmploymentGeneratingPrograms): जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) ,जवाहर समृद्धि योजना,दस लाख कुआं योजना, रोजगार गारंटी योजना, काम के बदले आनाज, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) ,भूमिहीन ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (एन.आर.ई.जी.पी.) ,राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम (2005)।

सतत् रोजगार एवं आय सृजित कार्यक्रम (SustainableEmploymentandIncomeGeneratingPrograms): स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वयंसिद्धा प्रोजेक्ट, संयुक्त वन प्रबन्धन कार्यक्रम , स्वयं सहायता समूह, ग्रामीण वन प्रबन्धन कमेटी , सूक्ष्म वित्त एवं प्रबन्धन द्वारा लाभार्थी का व्यापक आर्थिक सुधार।

जीविका की लागत कम करने वाले कार्यक्रम (LivelihoodCostReductionPrograms): सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वजल धारा (ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की सुनिश्चितता करना), इन्दिरा आवास योजना। इनमें से मुख्य कार्यक्रमों का विवरण निम्न है-

गरीबी निवारक कार्यक्रम

क्र.सं. कार्यक्रम वर्ष उद्देश्य

सघन कृषि जिला कार्यक्रम(IDAP)

1960-61 कृषकों को बीज, उर्वरक, औजार और ऋण उपलब्ध करना ।

साख अधिकरण योजना (CAS)

1995 RBI की चयनात्मक साख नीति की एक योजना

बहु फसली कार्यक्रम(MCP)

1966-67 कृषि उत्पादन में वृद्धि करना

विभेदीकृत ब्याजदर योजना 1972 समाज के कमजोर वर्गो को रियायती दर 4 प्रतिशत पर ऋण उपलब्ध कराना।

ग्रामीण रोजगार के लिए नकद योजना 1972-74 ग्रामीण विकास हेतु

मरूभूमि विकास कार्यक्रम

1977-78 मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरण सन्तुलन

काम के बदले अनाज कार्यक्रम 1977-78 विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्न देना।

अन्तोदय कार्यक्रम 1977-78 राजस्थान में गांव के सबसे गरीब परिवारों को स्वाबलम्बी बनाना।

ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम(TRYSEM)

15 अगस्त 1979 युवा वर्ग की बेरोजगारी को दूर करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम(IRDP) 2 अक्टूबर 1980 ग्रामीण निर्धन परिवारों को स्वरोजगार हेतु ऋण उपलब्ध कराना।

राष्ट्रीय ग्राम्य रोजगार कार्यक्रम(NREP) 1980 ग्रामीण निर्धनों को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास(DWCRA) 1982

BPLग्रामीण परिवारों की महिलाओं को कार्यक्रम के तहत् स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (RLEGP) 15 अगस्त 1983 भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।

शिक्षित बेरोजगार युवकों को स्वरोजगार प्रदान करने की योजना(SEEUY) 1983-84 स्वरोजगार हेतु वित्तीय व तकनीकी सहयोग।

इन्दिरा आवास योजना 1985-86 ग्रामीण क्षेत्रों में गृह निमार्ण हेतु।

शहरी निर्धनों हेतु स्वरोजगार कार्यक्रम (SEPUP) 1986 स्वरोजगार हेतु वित्तीय एवं तकनीकी मद्द

सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण 1988 ग्रामीण क्षेत्रों के लिए नई साख नीति।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम 1988 ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में शिक्षा विस्तार।

नेहरू रोजगार योजना(NRY) अक्टूबर 1989 नगरीय बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।

जवाहर रोजगार योजना(JRY) अप्रैल 1989 ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।

कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना(ARDRS) 1990 ग्रामीण कुशल श्रमिकों, कारीगरों बुनकरों को 10000रु. तक ब्याज मुक्त ऋण देना।

शहरी सूक्ष्म उद्यम योजना 1990 शहरी लघु उद्यमियों को वित्तीय सहायता।

शहरी सवेतन रोजगार योजना 1990 एक लाख से कम जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में गरीबों के लिए मूल सुविधा की व्यवस्था करके मजदूरी रोजगार प्रदान करना।

शहरी आवास एवं आश्रय सुधार योजना 1990 1 लाख से 20 लाख की जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में आश्रय उन्नयन के माध्यम से रोजगार प्रदान करना।

रोजगार आश्वासन योजना। 1993-94 रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।

प्रधान मंत्री की शिक्षित बेरोजगार युवकों हेतु योजना

18 नवम्बर 1995 50000 से 1 लाख जनसंख्या वाले क्षेत्रों में रोजगार हेतु शिक्षित युवकों को वित्तीय सहायता।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम

1995 विभिन्न योजनाओं द्वारा ठच्स् लोगों को सहायता।

उत्तर-पूर्व विकास बैंक 1995 उत्तर-पूर्व क्षेत्रों में उद्योंगों को सहायता।

संगम योजना 1996 विकलांगों के कल्याण हेतु।

कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना 15 अगस्त 1997 नीची महिला साक्षरता वाले जिलों में बालिका विद्यालय की स्थापना।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना(SJSRY)

1 दिसम्बर 1997 शहरी क्षेत्रों में लाभ प्रद रोजगार उपलब्ध कराना। योजना में तीन योजनाएं विलय कर दी गयी-

(1) नेहरू रोजगार योजना (2) प्रधान मंत्री को समन्वित शहरी गरीबी निवारण कार्यक्रम (3) शहरी बेसिक सेवा गरीबी हेतु।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना 1 अप्रैल 1999 ग्रामीण निर्धनों का जीवन सुधारना और लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।

अन्नपूर्णा योजना 19 मार्च 1999 वृद्ध नागरिकों को निःशुल्क अनाज

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना(SJGSY) 1 अप्रैल 1999

सामूहिक प्रयास पर बल। सहायता प्राप्त गरीब व्यक्ति को 3 वर्ष में ठच्स् के ऊपर लाना।

इसमें छः कार्यक्रमों का विलय कर दिया गया

1. ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम
2. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम
3. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास
4. ग्रामीण क्षेत्रों में टूलकिट की आपूर्ति
5. मिलियन वेल्स योजना
6. गंगा कल्याण योजना

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना 2000 गाँवों का समग्र विकास।

अन्तोदय योजना

2000 बी.पी.एल. पारिवारिक सर्वाधिक गरीबों को अनाज 2 रूपया गेहूँ 3 रूपया किलों चावल उपलब्ध कराना।

आश्रय बीमा योजना

जून 2001 रोजगार छूटे कर्मचारियों को सुरक्षा कवच प्रदान करना।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना(SGRY)

25 सितम्बर 2001 ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का सृजन

बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना दिसम्बर ,2001 शहरी स्लम आबादी को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने हेतु।

सर्वशिक्षा अभियान 2000-01 6-14 वर्ष के सभी बच्चों को 2010 तक निःशुल्क एवं आठवीं तक की प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।

गुणवता युक्त खाद्यान्न बैंक योजना 2001 घोषित ग्राम पंचायत स्तर पर खाद्यान्न बैंक की स्थापना।

महिला स्वयं सिद्धि योजना 12 जुलाई 2001 महिलाओं का सामाजिक आर्थिक सशक्तीकरण/योजना में इन्दिरा महिला योजना और महिला समृद्धि योजना का विलय।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना 25 दिसम्बर 2000 100ः केन्द्रीय स्कीम, 500 से अधिक जनसंख्या वाले गाँवों को जोड़ना।

जय प्रकाश नारायण रोजगार गारन्टी 2002-03 देश के पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों को रोजगार व योजना जरूरत मन्दों उपलब्ध कराने हेतु।

हरियाली योजना 27 जनवरी 2003 ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहन।

ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं का प्रावधान(PURA)

15 अगस्त 2003 ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध शहरी सुविधाओं की उन्नत सुविधा उपलब्ध कराना।

जवाहर लाल नेहरू नेशनल अर्बन रिन्यूअल मिशन 3 दिसम्बर 2005

भारतीय शहरों में अवस्थापनात्मक सुविधाओं और नगरीय सुविधाओं के विकास हेतु चरणबद्ध तरीके से योजना के लक्ष्यों को लागू करा।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ अभियान 12 अप्रैल 2005 प्राथमिक स्वास्थय सुरक्षा को सुदृढ़ करना।

भारत निर्माण योजना 16 दिसम्बर 2005 ग्रामीण अवसथापना सर्वागीण तथा व्यापक विकास योजना।

प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना 2009-10 अनुसूचित जाति बहुल ग्राम विकास योजना।

महिला किसान सशक्ति करण योजना 2010-11 ग्रामीण किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना(MNREGA) 2 अक्टूबर 2009 मूलतः 2.2.2006 ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार का अधिकार देना

6.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Poverty Alleviation Strategies)

भारतीय योजनाकारों की आरम्भ से ही यह धारणा थी कि आर्थिक विकास प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी जिसका प्रभाव रिसाव द्वारा नीचे तक स्वंय ही पहुँच जायेगा। जिसके साथ प्रगितिशील करारोपण तथा सार्वजनिक व्यय का कल्याणकारी स्वरूप गरीबी में कमी लायेगा। परन्तु गरीबी निवारण की यह धारणा सफल न हो सकी। इस सन्दर्भ में गरीबी निवारण कार्यक्रम का पूरा ध्यान अतिरिक्त आय के सृजन पर केन्द्रित रहा है। परिवार कल्याण,पैष्टिक आहार,सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। इन कार्यक्रमों में अपाहिज,बीमार तथा उत्पादक रूप से काम करने के अयोग्य लोगों के लिए कुछ नहीं किया गया है। कामकाजी जनसंख्या लगातार छोटी होती जा रही है , स्वरोजगार उद्यमों पर या मजदूरों के रोजगार कार्यक्रमों पर निर्भरता सही नहीं है।

वर्ष 1965-66 के बाद नई कृषि क्रान्ति के आने से गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अब कृषि उत्पादन में वृद्धि और अधिक भूमि के कारण नहीं बल्कि गहन खेती के कारण होने लगी। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऐसे परिर्वतन हुए जो गरीबों के लिए हितकर नहीं थे। जैसे मशीनों द्वारा श्रम का प्रतिस्थापन फलस्वरूप रोजगार के अवसर नहीं बढ़ सके। बड़े भूस्वामियों ने छोटे-छोटे काश्तकारों से बटाँई खेती लेकर स्वय कृषि कार्य करना शुरू कर

दिया। बड़े कृषकों की आय बढ़ने एवं मँहगी कृषि आगत से साधन-विहीन सीमांत व छोटे कृषकों की आय घटने से स्थानीय दस्तकारों व कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं की माँग गिरी और लोग ज्यादा गरीब हो गएजबकि आवश्यकता इस बात पर ध्यान देने की है कि गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे विभिन्न लोगों के आय स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

6.10 गरीबी निवारण के उपाय (MeasuresofPovertyAlleviation)

गरीबी की समस्या को दूर करने के लिए उन दशाओं को सुधारना आवश्यक है जिनके कारण गरीबी उत्पन्न होती है। जिस लिए एक बहुपक्षीय कूटनीति बहुत जरूरी है। इसके प्रमुख पक्ष निम्न है-

1. आर्थिक विकास दर को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए , विशेष रूप से सभी क्षेत्रों के मध्य का संतुलन बनाया जाए।

2. कृषि विकास एवं गरीबी के मध्य प्रत्यक्ष सह-सम्बन्ध दिखाई देता है। जिन राज्यों में कृषि क्षेत्र की संवृद्धि दर तेज पायी गई वहाँ गरीबी में कम देखी गई। हरित क्रान्ति का प्रभाव जैसे-जैसे सीमान्त एवं छोटे कृषकों तक पहुँचा गरीबी में कमी हुई। अतः कृषि विकास की नवीन रणनीति , लघु व सीमान्त कृषिकों तथा ऐसे भूमि क्षेत्रों को भी ध्यान में रखना है, जहाँ भूमि उपज न्यून है।

3. गरीबी के निवारण हेतु ग्रामीण एवं लघु कुटीर उद्योगों एवं ग्रमीण हस्तशिल्प का विकास किया जाना चाहिए। इस हेतु ग्रामीण औद्योगिकरण को बढ़ावा देते हुए ग्राम स्तर पर लघु कुटीर उद्योगों को स्थापित करने के लिए अधिक प्रयास करने होगें तथा इन्हें संसाधन , वित्त व बाजार की समस्त सुविधाँए प्रदान करनी होगी। लघु उद्योगों में नवीन शोध को बढ़ावा देकर अत्पादित वस्तु की गुणवत्ता को बढ़ाना होगा।

4. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी निवारण की अधिक सुस्पष्ट एवं महत्वपूर्ण नीति है। इसके द्वारा उत्पादकता वृद्धि ग्रामीण जनसंख्या के जीवन-स्तर में सुधार एवं स्वालम्बन युक्त विकास किया जाना सम्भव होगा। जिस परिप्रेक्ष्य में श्रम गहन कृषि विकास , कृषि आधारित लघु एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की स्थापना , एवं कार्यक्रमों के निर्माण में ग्राम जन की भागीदारी सुनिश्चित करना होगा।

5. जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने विकास को प्रभावहीन कर दिया। राष्ट्रीय आय में नगण्य वृद्धि हुई। इस हेतु एक प्रभावी नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

6. आय एवं धन के वितरण में असमानता को कम करने हेतु तीव्र कदम उठाने चाहिए। प्रगतिशील करारोपण के माध्यम से वितरण में समानता लाने का प्रयास किया जाए। भूमि एवं शहरी सम्पत्ति की अधिकतम सीमा का निर्धारण कर अतिरिक्त को जनकल्याण के कार्यो में लगाया जाना चाहिए।

7. बचत, निवेश और पूँजी-निर्माण को तीव्र प्रोत्साहन हेतु प्रभावी कदम उठाने चाहिए। बचत को प्रोत्साहन कर उन्हे उत्पादक कार्यो में लगाया जाना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में छोटी-छोटी बचतों को एकत्रीकरण के साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी को भी आकर्षित करना आवश्यक है।

8. गरीबी के मूल कारण से जुड़ी हुई आधार भूत आवश्यकताएं प्रभावी आय पर प्रहार आवश्यक है। इस सन्दर्भ में प्राथमिक शिक्षा , स्वास्थ्य सुविधा , सड़क, बिजली, आवास एवं विद्याुतीकरण के कार्यक्रमों को तीव्रता से लागू कर गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव है।

9. क्षेत्रीय असमानता को दूर करने एवं सीमान्त प्रदेशों में प्रेरित प्रवास रूपी कार्यक्रम आरम्भ करने चाहिए। जैसा कि ब्राजील , चीन, मलेशिया जैसे देशो में महज जनसंख्या प्रदेशों से भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम करने के लिए सीमान्त प्रदेशों में प्रवास को प्रेरित करने का व बसाव की विधि को अपनाया एवं सफलता पायी।

6.11अभ्यास हेतु प्रश्न (Practice Questions)

1. लघु प्रश्न

1. गरीबी का परिमाण से क्या आशय है?
2. भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान किस विधि से करते है?
3. सापेक्ष एवे निरपेक्ष गरीबी किसे कहते है?
4. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम की प्रमुख दो विशेषता बताइए।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें ।

1. भारत में .... प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते है।
2. गरीबी रेखा की पुर्न परिभाषा हेतु .... की अध्यक्षता में समिति गठित की गयी है।
3. गरीबी की माप के लिए सामान्यतः.................... का प्रयोग किया जाता है
4. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना 1 जनवरी ....से प्रारम्भ हुई थी।
5. निर्धनता रेखा मापने का कैलोरी मापदण्ड .... द्वारा दिया गया है।
6. शहरी गरीबी के आंकलन के लिए .... को आधार बनाया।
7. ग्रामीण गरीबी के आंकलन के लिए ....को आधार बनाया।
8. भारत में गरीबी की माप ....प्रतिमान विधि से की जाती है।

6.12 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी है। 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना।गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों सापेक्षित प्रतिमान और निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है। 7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की संकल्पना का प्रतिपादन किया।योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी के कारणों ,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

6.13 शब्दावली (Glossary)

बी.पी.एल.(B.P.L.): गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगो को कहते है।

गरीबी का दुश्चक्र (ViciousCycleofPoverty): अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास में व्यवधान डालने वाली उन समस्यओं एवं बाधाओं से है जो इन देशों के गरीबी के 'कारण व परिणाम के रूप में' वृत्ताकार आकार में घटित होती रहती है।

प्रति व्यक्ति आय (PerCapitaIncome): राष्ट्रीय आय में कुल जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है।

मानव विकास सूचकांक (HumanDevelopmentIndex): विकास के तुलनात्मक अध्ययन हेतु मानव विकास रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम द्वारा (यू.एन.डी.पी.) द्वारा मानव विकास सूचकांक का निर्माण किया गया। इस सूचकांक को जीवन प्रत्याशा , शैक्षिक योग्यता तथा क्रय शक्ति आधारित प्रति व्यक्ति आय को शामिल करके निर्मित किया गया है एवं वर्तमान समय में यह विकास का महत्वपूर्ण पैमाना है।

महिला सशक्तिकरण (WomenEmpowerment): महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं के आर्थिक सामाजिक उत्थान के साथ-साथ राजनैतिक चेतना के ऐसे विकास से है जहां महिला समाज के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता तथा सम्मानता पूर्वक योगदान कर सके एवं प्रत्येक स्तर पर निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभा सके।

ग्रामीण विकास (RuralDevelopment): ग्रामीण स्तर पर सभी को बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराते हुये ग्रामीण जीवन स्तर सुधार करने की प्रक्रिया को ग्रामीण विकास कहते है।

क्रय शक्ति (PurchasingPower): खरीदने की क्षमता को कहते है।

6.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें ।

1. 39.6	5. योजना आयोग
2. प्रो0 सुरेश तेन्दुलकर	6.औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक
3. दो प्रतिमानों	7. कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक
4.1999	8. निरपेक्ष

6.15संदर्भग्रन्थसूची(Reference/Bibliography)

MisraandPuri, IndianEconomy (2010) HimalayaPublishingHouse.

DattRuddar (1997) EconomicReformsinIndia (AUnit).

KapilaUma (2008-09), India'sEconomicDevelopmentSince 1947, AcademicFoundation.

KapilaUma (2008-09), IndianEconomy, AcademicFoundation.

Mishra, S.K. andV.K. Puri (2010) ProblemsofIndianEconomy, Himalaya PublishingHouse.

दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था , एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि 0, नई दिल्ली।

लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण , शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

6.16उपयोगी / सहायकपाठ्य सामग्री(Useful/Helpful Text)

अर्थव्यवस्था अवलोकन (मई 2011), धनकड़ पब्लिकेशंस, मेरठ

कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

6.17 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

1. भारत में गरीबी की समस्या का स्वरूप कैसा है? नियोजन काल में लागू किए गये प्रमुख कार्यक्रमों के आधार पर विश्लेषण कीजिए।
2. गरीबी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
3. गरीबी किसी भी समाज के लिए अभिशाप है। इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।
4. किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?इसे कैसे दूर कर सकते है।
5. किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

इकाई 7 बेरोजगारी (Unemployment)

7.1प्रस्तावना (Introduction)

7.2 उद्देश्य (Objectives)

7.3 बेरोजगारी (Unemployment)

7.3.1बेरोजगारी का आशय (MeaningofUnemployment)

7.3.2बेरोजगारी के प्रकार (TypesofUnemployment)

7.3.3 बेरोजगारी के कारण (CausesofUnemployment)

7.4 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण (AnalysisofEmploymentandUnemploymentinIndia)

7.5राज्यों में रोजगार का परिदृश्य (LandscapeofEmploymentinStates)

7.6बेरोजगारी दूर करने के सुझाव (SuggestionstoRemoveUnemployment)

7.7 बेरोजगारी निवारण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति (EmploymentPolicyinFiveYearPlansforUnemploymentPrevention)

7.8 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम (GovernmentPlanstoAlleviateUnemployment)

7.9अभ्यास हेतु प्रश्न(Practice Questions)

7.10सारांश(Summary)

7.11शब्दावली (Glossary)

7.12अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

7.13संदर्भग्रन्थसूची(Reference/Bibliography)

7.14उपयोगी / सहायकपाठ्य सामग्री(Useful/Helpful Text)

7.15 निबन्धात्मकप्रश्न (Essay type Questions)

7.1प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है। बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्बादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।
इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बेरोजगारी को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगे। आप यह भी समझ सकेंगे कि बेरोजगारी के क्या कारण है ,इसके प्रमुख प्रकार एवं इसके दोष और देश में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण कर सकेगें। आप इससे जुड़ी नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी जान सकेंगे।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बेरोजगारी के आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगे।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बेरोजगारी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत में बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- सरकार द्धारा बेरोजगारी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

7.3 बेरोजगारी (Unemployment)

अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है।

7.3.1बेरोजगारी का आशय (MeaningofUnemployment)

बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्बादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।
बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है जिसकी जड़ गहरी पहुंच चुकी है। आज इसका स्परूप दीर्धता की ओर बढ़ता चला जा रहा है। भारत में ही बेकारी नहीं अपितु बेकारी की समस्या विश्वव्यापी है। सामान्यतया जब एक व्यक्ति को अपने जीवन निर्वाह के लिए कोई कार्य नहीं मिलता है तो उस व्यक्ति को बेरोजगार और इस समस्या को बेराजगारी कहते है। दूसरे शब्दों में जब कोई व्यक्ति कार्य करने का इच्छुक है और वह शारीरिक रुप से कार्य करने में समर्थ भी है लेकिन कोई कार्य नहीं मिलता जिससे की वह अपनी जीविका का निर्वाहन कर सके तो इस प्रकार की समस्या बेरोजगारी की समस्या कहलाती है। हम बेरोजगार जनसंख्या के उस बढ़े भाग को नहीं कहते हैं जो काम के लिए नहीं मिलते जैसे विद्यार्थी बढ़े उम्र के व्यक्ति घरेलू कार्यो में लगी महिलायें आदि। जैसा प्रो. पीगू (Prof. Pigou) ने कहा है “एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता है। जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो। ”(“Unemploymentmeans, allthosewhoarewillingtoworkarenotabletofindjobs”)
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रकाशन के मुताबिक बेरोजगार शब्द में वे सब व्यक्ति शामिल किये जाने चाहिये जो एक दिये हुए दिन में काम की तलाश में और रोजगार में नहीं लगे हुए हैं किन्तु यदि कोई रोजगार दिया जाय तो काम में लग सकतें है।
समस्या को परिभाषित करने के लिए यह आवश्यक है कि आवश्यकता और साधन के बारे में विस्तृत विवेचन किया जाये। बेरोजगारी के सन्दर्भ में जब हम दृष्टिपात करते है तो पाते है कि रोजगार के अवसरों और रोजगार

के साधनों के संख्यात्मक मान में भी बहुत बढ़ा अन्तर है यही अन्तर बेरोजगारी चिन्तन के लिए हमें विवश करता है।

बेरोजगारी मूलरुप से गलत आर्थिक नियोजन का परिणाम है। व्यक्ति जहां संसार में एक मुंह के साथ आता है वही श्रम हेतु दो हाथ भी लाता है। जब तक इन हाथों को श्रम के साधन प्राप्त नहीं होते तब तक अर्थव्यवस्था को पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था नहीं माना जा सकता है।

गाँधी जी का इस संन्दर्भ में विचार सम्पत्ति व्यक्तिगत नहीं होनी चाहिए उत्पत्ति के साधनों पर नियंत्रण होना चाहिए समाज में उपस्थित विभिन्न आर्थिक तत्व को नियोजित ढ़ंग से कुटीर और लघु उद्योगो को प्रश्रय देना चाहिए।

7.3.2 बेरोजगारी के प्रकार (TypesofUnemployment)

भारत में बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं, जो निम्नवत है -

1. प्रच्छन्न बेरोजगारी (DisguisedUnemployment): बेरोजगारी का वह स्वरूप है जो प्रत्यक्ष रूप में दिखायी नहीं देता और छुपा रहता है भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी कृषि में पायी जाती है। जिसमें आवश्यकता से अधिक व्यक्ति लगे हुए हैं। यदि इनमें से कुछ व्यक्तियों को खेती के कार्यों से अलग कर दिया जाता है तो उत्पादन में कोई अन्तर नहीं पड़ता हैं। इसका अर्थ यही है कि इस प्रकार के व्यक्तियों द्धारा उत्पादन में कोई योगदान नहीं दिया जाता है। ऐसे व्यक्ति प्रच्छन्न बेरोजगारी के अर्न्तगत आते है।

2. अल्प रोजगार (ShortUnemployment): जब किसी व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं मिलता है या पूरा कार्य नहीं मिलता है। तो इसे अल्प रोजगार कहते हैं। जैसे एक इंजीनियरिग की डिग्री प्राप्त व्यक्ति लिपिक या श्रमिक के रूप में कार्य करता हैं तो इसे अल्प रोजगार कहते हैं ऐसे व्यक्ति कार्य करता हुआ दिखायी तो देता परन्तु इसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं होता है।

3. खुली बेरोजगारी (OpenUnemployment): जब व्यक्ति कार्य के योग्य है और वह कार्य करना चाहते है लेकिन उन्हें कार्य नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति को खुली बेरोजगारी कहते है। भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी व्याप्त है यहाँ लाखों व्यक्ति ऐसे है जो शिक्षित है तकनीकी योग्यता प्राप्त है लेकिन उनको काम करने का अवसर नहीं मिल रहा हैं।

4. मौसमी बेरोजगारी (SeasonalUnemployment): इस प्रकार की बेरोजगारी वर्ष के कुछ समय में ही होती है भारत में यह कृषि में पायी जाती हैं। जब खेती की जुताई एवं बुआई का मौसम होता है तो कृषि उद्योग में दिन रात कार्य होता है। इसी प्रकार जब कटाई का समय होता है तो फिर कृषि में कार्य होता है। लेकिन बीच के समय में इतना काम नहीं होता है। अत ; इस प्रकार के समय में श्रमिकों को काम नहीं मिलता है। इस बेरोजगारी को मौसमी बेरोजगारी कहते है।

5. शिक्षित बेरोजगारी (EducatedUnemployment): खुली बेरोजगारी का ही एक रूप है। इसमें शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार होते हैं। शिक्षित बेरोजगारी में कुछ व्यक्ति अल्प रोजगार की स्थिति में होते है। जिन्हें रोजगार मिला हुआ होता है लेकिन वह उनकी शिक्षा के अनुरूप नहीं होता है। भारत में भी इस प्रकार की बेरोजगारी पायी जाती है।

बेरोजगारी का स्वरूप देश के शहरी तथा ग्रामीण दोनो क्षेत्रो में विद्यमान है। शहरी बेरोजगारी दो प्रकार की है प्रथम शिक्षित लोगो की बेरोजगारी तथा द्वितीय औद्योगिक मजदूरों और शारीरिक श्रम करने वाले लोगो की बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी मुख्य रुप से तीन प्रकार की है प्रथम मौसमी बेरोजगारी , द्वितीय प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी और तृतीय प्रत्यक्ष बेरोजगारी।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के तीन परिकल्पनाएँ की जाती है-

6. चिरकालिक बेरोजगारी या सामान्य स्थिति(ChronicUnemployment): यह बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या के रुप में माप है जो पूरे वर्ष के दौरान बेरोजगार हो। इसी कारण इस बेरोजगारी को खुली बेरोजगारी के रुप में जाना जाता है।

7. साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी(WeekBasisUnemployment): इसे भी व्यक्तियों की संख्या के आधार पर मापन किया जाता है अर्थात ऐसे व्यक्ति जिन्हे सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला हो।

8. दैनिक स्थिति बेरोजगारी(DailyBasisUnemployment): इसे व्यक्ति दिनों या व्यक्ति वर्षो के रुप में मापन करते है। अर्थात वे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान या एक दिन या कुछ दिन रोजगार प्राप्त न हुआ हो। यह बेरोजगारी की व्यापक माप है। जिसमें सामान्य स्थिति बेरोजगारी और अल्परोजगार दोनो शामिल होते है।

7.3.3 बेरोजगारी के कारण (CausesofUnemployment)

देश में बेरोजगारी के लिए बहुत से कारण जिम्मेंवार होते है इन्हें हम आन्तरिक और बाहरी कारणों में बाँट सकते है जोकि आन्तरिक कारणों (श्रमिकों के स्वभाव ,शारीरिक,मानसिक व नैतिक कमियों) से सम्बन्धित होते है। प्राय ; एक व्यक्ति अपनी इच्छा के बावजूद अपनी शारीरिक मानसिक कमजोरियों दोषपूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि के कारण काम पाने में असमर्थ रहता है। इन परिस्थितियों में बेरोजगारी आन्तरिक कारणों का नतीजा होती है। बेरोजगारी के बाहरी कारण भी बहुत से होते हैं। श्रम बाजार में चक्रीय उतार चढ़ाव हो रहा है। मंदी के दिनों में व्यावसायिक क्रियायें एक न्यूनतम स्तर पर होती है और बेरोजगारी बढ़ती है। किन्तु दूसरी ओर तेजी के दौरान व्यावसायिक क्रियाओं का विस्तार होता है और इस समय बेकारी की मात्रा घटने लगती हैं। मंदी और तेजी की ऐसी अवधियाँ विभिन्न कारणों से होती है जिन्हें व्यापार चक्रों के सिद्धान्तों द्धारा स्पष्ट किया जाता हैं। उद्योग में विवेकीकरण की योजनाओं को अपनाया जाना बेरोजगारी को उत्पन्न करता है। इसके अलावा कुछ व्यवसाय व आर्थिक क्रियायें स्वभाव से मौसमी होती है। जैसे बिल्ंिडग निर्माण या कृषि। अन्त में आकस्मिक श्रम पद्धति भी जिसके अर्न्तगत श्रमिकों को कुछ कार्यों पर सिर्फ व्यवसायिक व्यवस्था के समय ही स्थाई रूप में लगाया जाता है दूसरे समय ऐसे श्रमिकों के लिए बेकारी पैदा कर दी जाती है।

मोटे तौर से बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या के संबंन्ध में तीन सैद्धान्तिक विचारधाराएँ पायी जाती है।

1. पहली विचारधारा के मुताबिक बेकारी निर्बाध सिद्धान्त अर्थात स्वतंत्र प्रतियोगिता तथा स्वतंत्र व्यापार से डिग जाने का दण्ड होती है।

2. दूसरी विचारधारा के मुताबिक बेकारी व्यापार चक्रों के कारणों की जटिलताओं के कारण पैदा होती है। इसे चक्रीये बेकारी के रूप में देखा जाता है।

3. तीसरी विचारधारा के मुताबिक बेकारी प्रभावी मांग की कमी उपभोग पर किये जाने वाले पूँजीगत व्यय की कमी या निवेश की कमी या दोनों ही के कारण पैदा होती है।

बेरोजगारी के दोष बहुत अधिक है। राष्ट्र के लिए बेरोजगारी समस्या एक गम्भीर समस्या है क्योंकि खाली मस्तिष्क शैतान का घर हैं। काल मार्क्स के मुताबिक कार्य मानवीय अस्तित्व के लिए मूल शर्त है। व्यापक बेरोजगारी एक ऐसी बुराई है जो गम्भीर आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक खतरों से भरी है। तकलीफ निराशा और असंतोष पैदा करके बेरोजगारी राजनीति और सामाजिक जीवन को कड़ुवा बनाती है तथा सुरक्षा को ठेस पहुंचाती है। पेट की आग को बुझाने के लिए व्यक्ति कुछ भी कार्य कर सकता है। यदि उनको सही रूप से व्यवसाय नहीं मिलेगा जिससे वह अपने अनुकूल जीवन यापन कर सके तो निश्चित रूप से ही वह गलत कार्यों

को करने के लिए प्रेरित होगें जिन्हें करना वह स्वंय भी उचित नहीं समझते किन्तु करना पड़ता है क्योंकि मरता क्या न करता।

बेरोजगारी से व्यक्ति में यह भावना आती है कि वह समाज के लिए गैर जरूरी है। वह परिवार में अपने को बोझ समझने लगता है। इसी कारण से वह अपराधी तक बन सकता है। किसी देश में निष्क्रिय मानव व्यक्ति का मतलब उत्पादन एवं आय का उस स्तर से नीचा होना है जिस पर कि वे सभी श्रमिकों को काम पर नहीं लगा सकते है। मानवीय दृष्टिकोण से इस बेरोजगारी का गम्भीर परिणाम व्यक्ति का स्वंय का नुकसान है। इसमें धीरे-धीरे व्यक्ति की कार्य क्षमता का ह्रास होता है। उसकी इस शक्ति को यदि उचित रूप में काम में लिया जाये तो यह राष्ट्र के लिए उन्नति, समृद्धि एवं सम्पन्नता का साधन बन सकती है।

जिस देश में बेरोजगारी होती है उस देश में नयी-नयी सामाजिक समस्यायें जैसे चोरी,डकैती,बेईमानी,अनैतिकता,शराबखोरी, जुआ-बाजी आदि पैदा हो जाती है। जिससे सामाजिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है शांति और सुरक्षा की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिस पर सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है। वर्तमान आतंकवाद की समस्या भी मेंरी समझ में किसी न किसी रूप में बेरोजगारी का ही एक परिणाम है।

बेरोजगारी की समस्या देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा करती है। क्योंकि बेकार व्यक्ति हर समय राजनीति उखाड़-पछाड़ में लगे रहते हैं। आज राजनीति से जुड़े हुए बहुत व्यक्ति ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में समाज में अपराधी रहे हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि दबाव और शक्ति से कानून को अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

देश में व्याप्त दीर्घस्थायी बेरोजगारी और अल्प-रोजगार की समस्या के लिए निम्न घटक उत्तरदायी है-

1.जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि दर फलस्वरूप श्रम शक्ति में तीव्र वृद्धि दर (RapidGrowthRateinPopulationresultinginRapidGrowthinLabourForce): जनांकिकीय दृष्टि से हम इतनी तेजी से आगे बढ़ रहे है कि प्रगति और परिवर्तनों के बावजूद हम आर्थिक दृश्टि से ठहरे हुए जान पड़ते है। नियोजन काल में राज्य की जनसंख्या तथा इसके फलस्वरूप श्रम-शक्ति कई गुना बढ गयी है। बढ़ती हुई श्रम-शक्ति के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध न कराये जाने के कारण बेराजगारी की मात्रा बढ़ती गई है।

2.अनुप्रयुक्त शिक्षा प्रणाली एवं कार्य के प्रति संकुचित दृष्टिकोण (InappropriateEducationSystemandNarrowPerspectiveforWork): देश में प्रचलित शिक्षा प्रणाली के कारण शिक्षित युवक नौकरी पाने की इच्छा रखते हुए भी शारीरिक श्रम वाले रोजगार से दूर भागते है। सरकार अभी तक शिक्षा प्रणाली को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं ढाल सकी है परिणामस्वरूप करोड़ों शिक्षित युवक और युवतियां रोजगार की तालाश में घूमते-फिर रहे है।

3.कुटीर उद्योगों का पतन (CollapseofCottageIndustries): श्रम गहन होने के कारण इन उद्योगों का रोजगार की दृष्टि से विशेष महत्व है। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत पूंजी गहन बड़े उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिये जाने के कारण कुटीर और लघु उद्योगों का वांछनीय विकास नहीं हो पाया है। फलतः राज्य में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या निरन्तर गम्भीर होती चली गई है।

4.कृषि की मानसून पर अधिक निर्भरता एवं सिचाई साधनों का अभाव (MoreDependencyonAgricultureMonsoonandLackofIrrigationResources): निर्धनता के उन्मूलन,रोजगार के अवसरों में वृद्धि ,आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में स्थायित्व तथा घरेलू बाजार के विस्तार की दृश्टि से कृषि के महत्व को जानते हुए तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार की आवश्यकता बार-बार स्वीकार करते हुए भी नियोजन काल में कृषि क्षेत्र को कुल निवेश योग्य साधनों में से उचित हिस्सा नहीं दिया गया है।

फलतः गांवों से शहरों की ओर श्रम शक्ति के पलायन की प्रवृत्ति जोर पकड़ती गई तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अदृश्य बेरोजगारी की समस्या गहन होती चली गई।

5. उत्पादन साधनों का असमान वितरण (UnevenDistributionofProductionResources): भूमि और पूंजी जैसे उत्पादन साधनों का अत्यधिक असमान वितरण,आर्थिक विषमता और बेरोजगारी की समस्या के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरादायी है। 20 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या खेतिहर श्रमिकों के रूप में निर्धनता ,शोषण, कुपोषण और अल्प रोजगार से ग्रस्त है। उत्तराखण्ड में 70 प्रतिशत किसानों की जोतें अनार्थिक आकार (एक हेक्टेयर से कम) की हैं जिन्हें सम्पूर्ण वर्ष में 5-6 महीने निष्क्रिय रहना पड़ता है। दूसरी ओर बहुत थोड़ी पूंजी वाले इस राज्य में उपलब्ध पूंजी गिने-चुने हाथों में केन्द्रित है। साधन सम्पन्न व्यक्तियों की स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण विभिन्् ा व्यवसायों में श्रम की बचत करने वाल गहन तकनीक का उपयोग किया जा रहा है।

6. अविकसित सामाजिक दशाएं (UnderdevelopedSocialConditions): देश की दोषपूर्ण सामाजिक संस्थाएं (जाति-प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, छुआछूत, बाल-विवाह, प्रदा पर्था आदि) बेरोजगारी की समस्या को उग्र बनाने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायक हुई है। जनसाधारण की निरक्षरता , अन्धविश्वास और भाग्यवादिता ने भी युवकों को निष्क्रिय बनाये रखने में सहयोग दिया है। श्रम शक्ति का असन्तुलित व्यावसायिक वितरण, व्यावसायिक शिक्षण एवं शिक्षण सुविधाओं की अपर्याप्तता , श्रम शक्ति में गतिशीलता का अभाव आदि कारणों ने भी बेरोजगारी और बेरोजगार की समस्या को गम्भीर बना दिया है।

7. पर्याप्त तकनीकी प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव (LackofadequateTechnicalTrainingFacilities): आज अधिकांश शिक्षा ऐसी दी जाती है कि केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक ही सीमित है और जिसका जीवन में अधिक उपयोग नहीं है। बी.ए.,एम.ए. करने के बाद भी लड़को को यह भी पता नही हो पता है कि अब उसे क्या करना है। तकनीकी शिक्षा के पूर्ण अभाव के कारण वह अपना कोई छोटा-मोटा व्यवसाय भी नहीं कर सकता।

8. पूंजी निर्माण की धीमी गति (SlowRateofCapitalFormation): बेरोजगारी में वृद्धि होने के कारण प्रतिव्यक्ति आय बहुत कम होती जा रही है ,परिणामस्वरूप बचत एवं विनियोग की दर में भी कमी हो रही है। इससे पूंजी निर्माण की गति बहुत धीमी हो गयी है जिसका प्रभाव उद्योग,व्यापार एवं अन्य सेवाओं पर पड़ रहा है और उनका विस्तार नही हो पा रहा है। इस चक्र के प्रभाव से बेरोजगारी की संख्या में और अधिक वृद्धि हो रही है।

9. स्वरोजगार के प्रति (DisregardofSelf-Employment): देश में शिक्षित बेराजगारी बढ़ने के मूल में यह कारण निहित है कि प्रत्येक युवा अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद नौकरी की तालाश में जुट जाता है। उसमें स्वयं का व्यवसाय करने की भावना का अभाव रहता है , परिणामस्वरूप बेरोजगारों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होती जा रही है।

10. अन्य कारण (OtherReasons): बड़ी संख्या में शरणार्थी आगमन ,समयबद्ध रोजगार नीति एवं कार्यक्रमों का अभाव,लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन और उनके पुर्नविकास की धीमी गति और आर्थिक सुधारों नीतियों का रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव।

बेरोजगारी के खराब असर बराबर बढ़ते जा रहे हैं। इसीलिए विलयम बेवरिज (WilliamBeveridge) ने लिखा है कि बेरोजगार रखने के स्थान पर लोगों को गड्ढे खुदवाकार वापस भरने के लिए नियुक्त करना ज्यादा अच्छा है।

सार रुप में हमारे देश की बेरोजगारी का कारण उसकी संरचनात्मक अवस्था में निहित है। जो कृषि के अल्प विकास उद्योगो का असंतुलित विकास सेवा क्षेत्र के संकुचित आकार के श्रम की माँग में है जो और रोजगार के अवसर सीमित कर देते है। लोग विद्यमान मजदूरी दर पर कार्य करने को तत्पर है परन्तु फिर भी कार्य की अनुउपलब्धता के कारण वह बेरोजगार है।

7.4 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण

(AnalysisofEmploymentandUnemploymentinIndia)

देश में रोजगार और बेरोजगारी के संबध में अनुमान लगाने के लिए अधिकांशत वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार का प्रयोग किया गया है। दैनिक स्थिति पर आधारित अनुमान बेरोजगारी की समेंकित दर है जिसमें समीक्षा वर्ष के दौरान एक दिन के आधार पर बेरोजगारी का औसत स्तर का उल्लेख किया गया है।

तालिका 7.4.1 रोजगार और बेरोजगारी मिलियन मानव वर्षो में

(वर्ष 1982 से 2004-05)

(दैनिक स्थिति के आधार के अनुसार)

	मिलियन में			वृद्धि प्रतिवर्ष (प्रतिशत)		
	1982	1993-94	2004-05	1983 से 1993-94	1993-94 1999-00	1999-00 2004-05
जनसंख्या	718.10	893.68	1092.83	2.11	1.98	1.69
श्रमबल	263.82	334.20	419.65	2.28	1.47	2.84
कार्यबल	239.49	313.93	384.91	2.61	1.25	2.62
बेरोजगारी दर (प्रतिशत)	9.22	6.06	8.28			
बेरोजगारो की संख्या	24.34	20.27	34.74			

स्रोत: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

ग्राफ संख्या 7.4.1

रोजगार और बेरोजगारों की संख्या (वर्ष 1982 से 2004-05)

दैनिक स्थिति के आधार पर

मिलियन में

वर्ष

दैनिक स्थिति के आधार पर रोजगार और बेरोजगारी के अनुमान दर्शाते है जैसा कि तालिका 9.4.1 में दिया गया है कि वर्ष 1983-1993 के काल में लगभग 74.50 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वही वर्ष में 1993 से 2004-05 में लगभग 71 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वह भी 1999-2000 से 2004-05 में 46 मिलियन कार्य के अवसरो का सृजन हुआ। रोजगार में वृद्धि इन्हीं वर्षो में 1.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 2.62 प्रतिशत प्रतिवर्ष प्राप्त हुई। परन्तु बेरोजगारी दर 1983 के 9.22 प्रतिशत से गिरकर 1993-94 में

6.06 प्रतिशत हुई थी। वह 2004-05 में बढकर 8.28 प्रतिशत हो गई परन्तु बेरोजगारों की संख्या इन्हीं वर्षो में 24.34 मिलियन से गिरकर 20.27 मिलियन थी वह भी बढ़कर 34.74 मिलियन हो गई जबकि जनसंख्या वृद्धि दर 1983 से 1993-94 के दौंरान 2.11 प्रतिशत से घटकर 1993-2000 में 1.98 प्रतिशत एवं 1999-2004-05 में 1.69 प्रतिशत ही रह गई।

तालिका 7.4.2 क्षेत्रीय रोजगार में हिस्सेदारी (वर्ष 1983 से 2004-05)

(वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार पर मिलियनो में)

क्षेत्र	1983	1993-94		2004-05								
कृषि	65.42		207.1	61.03	239.5	52.06	258.8					
खनन एवं उत्खनन			0.66	1.8	0.78	2.7	0.63	2.5				
विनिर्माण		11.27		32.3	11.10	39.8	12.90	55.9				
बिजली, जल आदि			0.34	0.8	0.41	1.4	0.35	1.2				
निर्माण	2.56		6.8	3.63	12.1	5.57	26.0					
व्यापार, होटल और रेस्तरां				6.98		19.1	8.26	28.4	12.62	49.6		
परिवहन, भण्डार और संचार				2.88		7.5	3.22	10.7	4.61	18.6		
वित्त, बीमा, स्थावर संपदा और कारोबारी सेवाएँ						0.78	1.98	1.08	3.9	2.00	5.2	
सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ						9.10		14.72	10.50	35.9	9.24	40.2
कुल	100.00		302.3	100.0	374.3	100.00		458.0				

स्रोत: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

एक अन्य विश्लेषण तालिका 9.2 के आधार पर करते है कि वर्ष 1993 से पहले रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र की जो सर्वोच्च स्थित थी वह लगातार बनी हुई है, इनके हिस्सेदारी में बहुत ही नाममात्र का परिवर्तन हुआ है कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी जो 1983 में 65.42 प्रतिशत थी वह 1993-94 में 61.03 प्रतिशत और आर्थिक सुधार काल में 2004-05 में 52.06 प्रतिशत पहुँच गई परन्तु इन्हीं वर्षो में संख्या 239.8 मिलियन से बढ़कर 258.8 मिलियन हो गई अर्थात हिस्सेदारी में 8.97 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 21.3 मिलियन की वृद्धि हुई। जबकि खनन एवं उत्खनन सेवाओं में आर्थिक सुधारों के काल (1993-2005) में हिस्सेदारी में 0.15 प्रतिशत और संख्या में 0.2 मिलियन की कमी हुई। इसी प्रकार बिजली जल आदि के क्षेत्र में भी 0.06 प्रतिशत के साथ 0.2 मिलियन की कमी हुई। बल्कि सामुदायिक सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ की हिस्सेदारी 1.26 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 4.3 मिलियन की वृद्धि हुई।

7.5राज्यों में रोजगार का परिदृश्य (LandscapeofEmploymentinStates)

आर्थिक सुधार प्रक्रिया के इस काल में राज्यों के संन्दर्भ में विश्लेषण के लिए तथ्यों को तालिका 9.5.1 एवं 9.5.2 में दिया गया है इन विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है- सम्पन्न राज्य जिनमें पंजाब महाराष्ट्र

हरियाणा गुजरात एवं तमिलनाडु शामिल किया गया 1993-94में रोजगार में हिस्सा 28.6 प्रतिशत था। इन राज्यों में वार्षिक रोजगार में आर्थिक सुधारो के प्राम्भिक वर्षो (1993-94 से 1999-2000) में अत्यंत मंद वृद्धि दर्ज की गई बल्कि तमिलनाडु जैसे राज्य में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 8.1 प्रतिशत था। रोजगार में वर्षिक वृद्धि दर शून्य थी। और महाराष्ट्र में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 10.9 प्रतिशत था,रोजगार में वार्षिक वृद्धि दर मात्र 1 प्रतिशत थी। बाद के वर्षो में इनमें सुधार हुआ परन्तु तमिलनाडु में अभी भी यह मात्र 1.7 प्रतिशत वार्षिक थी।

तालिका 7.5.1

राज्यों में वार्षिक रोजगार वृद्धि

(वर्ष 1993-94 से 2004-05)

प्रतिशत में

क्रम राज्य रोजगार में हिस्सा रोजगार वृद्धिदर

	1993-94	1993-94 से 1999-2000	1999-00 से 2004-05	1993-94 से 2004-05
पंजाब	2.3	2.6	2.8	2.7
महाराष्ट्र	10.9	1.0	3.4	2.1
हरियाणा	1.9	1.2	5.6	3.1
गुजरात	5.5	2.3	2.6	2.4
तमिलनाडु	8.1	0.0	1.7	0.8
औसत उच्च पांच	28.6	1.4	3.2	2.2
केरल	3.3	1.1	1.3	1.2
कर्नाटक	6.3	0.8	3.1	1.8
आन्ध्रप्रदेश	10.3	0.2	1.9	1.0
पं. बंगाल	7.6	0.8	3.1	1.8
औसत मध्यम दर	27.6	0.8	2.4	1.5
मध्य प्रदेश	9.1	1.1	2.7	1.8
राजस्थान	6.3	0.8	3.0	1.8
उ. प्र.	15.5	1.1	3.8	2.3
उड़ीसा	4.1	0.8	2.5	1.6
बिहार	9.0	2.0	2.2	2.1
औसत के नीचे के पांच	43.8	1.1	2.8	1.9

कुल	100.00	1.0	2.8	1.8

स्रोत: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण

दूसरी तरफ तालिका 9.4 कें विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि आर्थिक सुधारो के इस समय (1993-94 से 2004-05) में सम्पन्न राज्यों में विभिन्न क्षेत्रो की रोजगार की हिस्सेदारी में आमूल चूल परिवर्तन हुआ। तमिलनाडु राज्य में 1993-94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी 52.6 प्रतिशत से घटकर 2004-05 में 41.2 प्रतिशत पहुँच गई अर्थात 11.4 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई। वही पंजाब राज्य में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 56.4 प्रतिशत से घटकर 47.4 प्रतिशत रह गई।

तालिका 7.5.2 राज्यों में क्षेत्रवार रोजगार की हिस्सेदारी

(वर्ष 1993-94 से 2004-05)

राज्य	1993-94			2004-05		
	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ
बिहार	76.7	4.9	15.6	68.9	7.2	18.0
उड़ीसा	73.7	7.5	15.0	62.3	11.4	19.1
ऊ.प्र.	68.4	8.7	20.1	60.6	12.3	20.9
राजस्थान	69.2	6.2	15.3	61.3	9.1	18.2
म.प्र.	77.2	5.5	13.4	69.1	7.5	18.2
औसत	73.1	6.6	15.9	64.4	9.5	18.9
प. बंगाल	48.8	19.9	27.1	45.7	17.5	31.6
अ.प्र.	67.1	9.2	19.6	58.4	11.0	24.8
कर्नाटक	65.1	10.7	19.7	60.8	10.6	23.8
केरल	48.3	14.3	29.6	35.5	14.4	37.7
औसत	57.3	13.5	24.0	50.1	13.4	29.5
तमिलनाडू	52.6	18.0	24.4	41.2	21.1	30.9
गुजरात	58.9	15.2	21.4	54.8	17.1	23.1
हरियाणा	56.9	9.1	27.7	50.0	13.5	27.7
महाराष्ट्र	59.4	11.3	25.1	53.1	12.5	28.7
पंजाब	56.4	10.3	28.1	47.4	13.5	29.8
औसत	56.8	12.8	25.4	49.3	15.5	28.0
कुल	64.5	10.5	20.7	57.0	12.4	24.1

स्रोत:राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण

मध्यम दर्जे में जिन राज्यों को रखा गया है उनमें केरल कर्नाटक आन्ध्र प्रदेश और पं. बंगाल को शामिल किया गया है। इनका कुल रोजगार में हिस्सा 1993-94 में 27.6 प्रतिशत था जो आगे सुधारो के काल में सम्पन्न राज्यों से अधिक हो गई। केरल को छोड़कर अन्य तीनो में किसी राज्य की सुधार प्रक्रिया के प्रारम्भिक वर्ष (1993-94 से 1999-2000) में रोजगार में वृद्धि दर पूर्णांक में नहीं थी। आन्ध्र प्रदेश में तो यह 0.2 प्रतिशत वार्षिक थी, बाद में कर्नाटक एवं पं0 बंगाल में सुधार के परिणाम स्वरुप चारों राज्यों के सन्दर्भ में (1993-94 से 2004-05) 1.5 प्रतिशत वार्षिक रही। इसका विशेष कारण यह दिखा कि औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी जो 1993-94में चारों राज्यों के सन्दर्भ में 13.5 प्रतिशत थी, से घटकर 13.4 प्रतिशत पर ही रह गई। जबकि इन्हीं राज्यांे के सन्दर्भ में इसी अवधि में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 57.3 से घटकर 50.1 प्रतिशत रह गई। जैसा कि अनुुमापन यही रहता है कि यदि कृषि क्षेत्र में रोजगार की हिस्सेदारी घटती है तो सेवा क्षेत्र के साथ ही औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी निश्चित रुप से बढ़ेगी।

पिछ़डे राज्य जिनमें बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राज्यस्थान और मध्य प्रदेश को लिया गया है इनकी रोजगार में हिस्सेदारी 1993-94 में 43.8 प्रतिशत थी। आर्थिक सुधारों के इस दौर में रोजगार में विशेष वृद्धि नहीं प्रदर्शित किया 1993-94 से 1999-2000 के काल में यह सम्मिलित रुप में 1.0 प्रतिशत वार्षिक थी बाद के वर्षो में मामूली वृद्धि के परिणाम स्वरुप समग्र रुप से 1993-94 से 2004-05 की अवधि में 1.8 प्रतिशत वार्षिक हो गई। इसका कारण इन राज्यों में 1993-94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार की हिस्सेदारी 73.1 प्रतिशत थी जो 8.7 प्रतिशत घटकर 2004-05 में 64.4 प्रतिशत पर पहॅुच गई। विशेष रुप में उड़ीसा की हिस्सेदारी उन्हीं वर्षो में कृषि क्षेत्र में 73.7 प्रतिशत से कम होकर 62.3 प्रतिशत पर पहुँच गई और उत्तर प्रदेश की 68.4 प्रतिशत से घटकर 60.6 प्रतिशत हो गई।

तालिका 7.5.3 संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर (वर्ष1983 से 2004)

	1983-1994	1994-2004
सार्वजनिक क्षेत्र	1.53	-0.70
निजी क्षेत्र	0.44	0.58
कुल संगठित क्षेत्र	1.20	-0.31

स्रोत: लोक उद्यम सर्वेक्षण वर्ष 2008-09

दूसरी तरफ संगठित क्षेत्र की कुल रोजगार में हिस्सेदारी समग्र रुप से 1994 में 7 प्रतिशत थी , वह घटकर 2005 में 5.5 प्रतिशत रह गई। सभी राज्यों की संगठित क्षेत्र में हिस्सेदारी घटी।

संगठित क्षेत्र के संन्दर्भ में बडी आश्चर्यजनक जानकारी तालिका 7.5.3 से मिलती है कि 1983 से 94 के समय में सार्वजनिक क्षेत्र की रोजगार वृद्धि दर जो 1.53 प्रतिशत वार्षिक थी वह आर्थिक सुधारो के काल में (1994-2004) ऋृणात्मक रुप में 0.70 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई अर्थात आर्थिक सुधारों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में कटौती हो गई। इसी प्रकार निजी क्षेत्र में 1983 से 94 के काल में 0.44 प्रतिशत वार्षिक रोजगार वृद्धि दर बढ़कर 1994-2004 के समय में 0.58 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई। जबकि सम्मिलित रुप में

संगठित क्षेत्र की रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 1.20 से घटकर सुधार काल में ॠणात्मक रुप में -0.31 प्रतिशत वार्षिक दर्ज हुई।

7.6बेरोजगारी दूर करने के सुझाव (SuggestionstoRemoveUnemployment)

तेजी से बढ़ रही बेरोजगारी के प्रति अर्थशास्त्री, राजनेता, चिन्तक और विद्वान सभी चिन्तित है। बेरोजगारी की इस गम्भीर समस्या ने अनेक ऐसी समस्याओं को जन्म दिया है जिनका समाधान खोज पाना अत्यधिक दुश्कर हो गया है। यदि समय रहते सुरसा की भांति मुँह बाये खड़ी बेरोजगारी के समाधान की दिशा में सार्थक प्रयास नही किये जा सके तो देश एवं समाज का विघटन अवश्यम्भावी है। बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कुछ सुझाव निम्नानुसार हैः-

1. तेजी से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण(ControltheRapidGrowthRateofPopulation):बेरोजगारी की गम्भीर समस्या के हल के लिए सर्वप्रथम राज्य में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या की गति को नियन्त्रित किया जाना अति आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किये बिना बेरोजगारी की समस्या का समाधान सम्भव नही है।

2. छोटे उद्योग धन्धो का विकास (DevelopmentofSmallScaleIndustries): बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे-छोटे उद्योग धन्धों का विकास किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि सरकार द्वारा बेरोजगार युवकों को अत्यधिक सुविधाजनक शर्तो पर ॠण उपलब्ध करायें जायें और बेरोजगारों द्वारा स्थापित उद्योगों के उत्पादन की बिक्री की समुचित व्यवस्था की जाये।

3. कृषि से सम्बद्ध उद्योगों का विकास(DevelopmentofAgricultureRelatedIndustries): देश की अर्थव्यवस्था में कृषि को प्रधानता प्राप्त है किन्तु अभी भी कृषि व्यवसाय मात्र ॠतुपरक या मौसमी रोजगार उपलब्ध कराता है। वर्ष के मात्र छः-सात माह के लिए कृषक और कृषि श्रमिक के पास रोजगार की व्यवस्था रहती है। शेष समय में कृषक और श्रमिक बेरोजगार रहते है ,अत: इस खाली समय के उपयोग के लिए कृषि से सम्बद्ध सहायक उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिएजैसे- दूध का व्यवसाय,,मुर्गीपालन,पशुपालन आदि।

4. ग्रामों में रोजगार उन्मुख योजनाओं का क्रियान्वयन (ImplementationofEmploymentOrientedSchemesinVillages): देश में सर्वाधिक बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में है , जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की सम्भावनायें भी बहुत अधिक है। सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ऐसी योजनाएं तैयार करनी चाहिए जो ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायाक सिद्ध हो सकें। इन योजनाओं का क्रियान्वयन भी अत्यधिक प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए।

5. रोजगार उन्मुख शिक्षा प्रणाली(EmploymentOrientedEducationSystem): देश की प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूरी तरह सैद्धान्तिक है। यह शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायता नहीं करती। अतः सरकार को रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था करनी चाहिए , ताकि युवक स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पूर्ण होने के बाद स्वयं का कोई व्यवसाय या रोजगार स्थापित करने में समर्थ व सक्षम हो सके।

6. उद्योगों की पूर्ण क्षमता का उपयोग (UtilizethefullPotentialoftheIndustries): देश में यद्यपि उद्योग तुलनात्मक रूप से कम लगे हुए है तथा उनका पूर्ण दोहन भी नहीं हो पा रहा है और आवश्यकता इस बात की है कि सिर्फ उद्योगों की संख्या को ही न बढ़ाया जाये बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता का भी पूर्ण उपयोग होना चाहिए।

7. विनियोग ढ़ांचे में परिवर्तन (ChangeinInvestmentStructure): आधारिक संरचना को मजबूत बनाकर विनियोग को प्रेरित किया जा सकता है जिससे रोजगार में बढ़ोत्तरी होगी तथा अनिवार्य उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का विस्तार भी होगा।

8. तकनीकी को प्रोत्साहन (PromotionofTechnology): नई तकनीकी का इस प्रकार से प्रयोग होना चाहिए जिससे रोजगार पर कोई विशेष फर्क न पड़ते हुए उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी हो।

9. जनशक्ति नियोजन (ManpowerPlanning): देश में बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि जनशक्ति का वैज्ञानिक ढंग से नियोजन होना चाहिए। जिससे जनशक्ति का गुणात्मक पक्ष मजबूत होगा और इसके लिए भौतिक ,मानसिक,मनोवैज्ञानिक तथा संगठनात्मक पहलुओं स्वस्थ आधारों पर विकसित किया जाये। जनशक्ति का व्यवसाय वितरण ,व्यवसायिक ढ़ाचा ,रोजगार की सम्भावनाओं की स्थिति तथा जन-वृद्धि में होने वाले परिवर्तन आदि के बारे में विस्तृत एंव पूर्ण सूचनायें एकत्रित की जाये।

10. अन्य सुझाव (OtherSuggestions): भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय श्रम ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु अनेक सुझाव दिये है ,जैसे- देश में रोजगार के लिए एक राष्ट्रीय नीति सुनिश्चित की जाये ,अखिल भारतीय स्तर पर मानव शक्ति सेवा का गठन किया जाये ,शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये जाये और उसे रोजगारोन्मुख बनाया जाये ,औद्योगिक सेवाओं को सुदृढ़ता प्रदान की जाये तथा देश के प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में कम से कम एक रोजगार कार्यालय की स्थापना की जाये।

उत्पादक गतिविधियों की पुर्नसंरचना द्वारा उत्पादन में वृद्धि लाकर सरकार द्वारा रोजगार सृजन की प्रक्रिया तो जारी है ही,किन्तु साथ ही सरकार प्रत्यक्ष रूप से युवाओं एवं अन्य बेरोजगारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने के लिए विशेष कार्यक्रम भी चला रही है।

7.7 बेरोजगारी निवारण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति (EmploymentPolicyinFiveYearPlansforUnemploymentPrevention)

बेरोजगारी एक ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक अभिशाप है , जिसके रहते कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता है। जैसा कि संविधान में नागरिको के लिए उचित रोजगार की व्यवस्था के मूलभूत दायित्व को इस प्रकार व्यक्त किया हैं- "राज्य अपनी नीति को इस प्रकार निर्देशित करेगा कि जिससे समस्त पुरूषों एवं स्त्रियों के लिए जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन ,समान कार्य के समान वेतन तथा आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर प्रत्येक के लिए कार्य करने और शिक्षा प्राप्त करने तथा बेकारी,वृद्धावस्था बीमारी एवं अयोग्यता की दिशा में सार्वजनिक सहायता प्राप्त करने के अधिकार की सुरक्षा के लिए प्रभावपूर्ण व्यवस्था हो सके। " इस दायित्व को पूर्ण करने के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओ में जो कार्य किए उनका विवरण निम्नवत हैः-

पहली पंचवर्षीय योजना में रोजगार वृद्धि से सम्बन्धित 11 सूत्री कार्यक्रम को ध्यान में रखा गया। श्रम प्रधान,कुटीर उद्योग,सड़क,परिवहन व सिंचाई परियोजनाओं को प्राथमिकता दी गई।

द्वितीय योजना के विकास प्रारूप में श्रम शक्ति के अधिकतम उपयोग का सैद्धान्तिक पक्ष मुख्य रूप से ध्यान में रखा गया। भारी व आधारभूत उद्योगों के साथ लघु व ग्रामीण उद्योगों के विस्तार को महत्व दिया गया।

तीसरी योजना में रोजगार के अवसरों में वृद्धि हेतु ग्रामीण विद्युतीकरण , ग्रामीण विनिर्माण कार्यों ,जिला स्तर पर बेकारी दूर करने की योजना व बेरोगारी से पीड़ित विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष कार्यक्रम चलाये जाने को

प्राथमिकता दी गई। 1 करोड़ 40 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया था ,जबकि श्रम-शक्ति में जुड़ने वाले नए लोगो की संख्या 1 करोड़ 70 लाख आंकी गई थी।

अनेक प्रयासों के बावजूद भी रोजगार प्रदान करने में असफलता ही रही। पुराने बेरोजगारो को क्या नये को भी रोजगार प्रदान नही किया जा सका। योजना के अन्त मे 120 लाख लोगो के लगभग बेरोजगार होने का अनुमान था।

चतुर्थ योजना में श्रम-गहन कार्यक्रमों पर काफी बल दिया गया जैसे सड़क , लघु सिचाई ,भू-संरक्षण, क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम ,सहकारिता,सिचाई,बाढ़ नियत्रंण ,ग्रामीण विद्युतीकरण ,लघु उद्योग ,आवास,डेयरी फार्मिंग आदि। तथा यह अनुभव किया गया कि ऐसे कार्यक्रमों के लिए भौतिक पूंजी के अतिरिक्त मानवीय पूंजी एवं कौशल निर्माण में भारी विनियोग करना आवष्यक होगा।

पाँचवी योजना का प्रमुख लक्ष्य गरीबी उन्मूलन था। गरीबी का प्रमुख कारण भूमि सम्पति की असमानता एवं रोजगार में कमी बतलाया गया। अतः श्रम प्रधान परियोजनाओं एवं स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न करने वाली परियोजनाओ को विशेष महत्व दिया गया। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर में वृद्धि हेतु विशेष जोर दिया गया। साथ ही गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार अवसरों में वृद्धि हेतु विकास केन्द्रो के विस्तार की योजना सामने रखी गई।

छठी योजना में अल्प रोजगार की समस्या व दीर्घकालीन बेरोजगारी दूर करने के उपायों को प्राथमिकता दी गई। इस उद्देश्य हेतु रोजगार उन्मुख तीव्र आर्थिक वृद्धि की आवश्यकता का अनुभव किया गया। साथ ही अतिरिक्त रोजगार वृद्धि के लिए राष्ट्रीय युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना (टाइसेम) ,न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम(I.R.D.P.) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ,तथा ग्रामीण भूमिहीन गारण्टी कार्यक्रम प्रमुख थे।

सातवीं योजना में उत्पादन रोजगार प्रदान करने के लिए विनियोग व उत्पादन की उपयुक्त संरचना को विकसित करने तथा समुचित तकनीक व संगठानात्मक आधार को निर्मित करने की प्राथमिकता दी गई। अतिरिक्त रोजगार के लिए (1)ग्रामीण क्षेत्रों में सिचाई सुविधाओं का विस्तार तथा पशुपालन ,डेयरी एवं सामाजिक वानिकी को बढ़ावा दिया गया है। (2) लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास ,भवन निमार्ण ,पर्यटन विकास एवं यातायात क्षेत्र के विकास के लिए विशेष व्यूह नीति बनाई गयी। (3)योजना में शिक्षित बेरोजगारी दूर करने के लिए अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध करने के प्रयास किये गये। (4)योजना के अन्तिम वर्ष 1989 में ग्रामीण रोजगार हेतु जवाहर योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना "भोजनकाम तथा उत्पादकता"को तीन केन्द्र-बिन्दु माना गया है।

आठवीं योजना में रोजगार पर प्रमुख बल दिया गया है। इस योजना के दौरान उचित विकास कार्यक्रमों से प्रत्येक नागरिक को काम करने के अधिकार की गारण्टी के प्रति वचनबद्धता को कार्यरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया । आठवीं योजना में कुल 5.8 करोड़ व्यक्तियों तथा 1992-2002 के दशक में कुल 9.4 करोड़ व्यक्तियों को काम देने की आवश्यकता स्वीकार की गई। इस योजना की विशेष बात यह रही कि शहरी बेरोजगारी के सन्दर्भ में विशेष ध्यान था। इस योजना में 4 कारोड़ अतिरिक्त रोजगार सृजित किये गयें।

नवीं योजना में रोजगार वृद्धि हेतु त्वरित कार्यक्रमों में तीव्रता लाने का लक्ष्य रखा गया। योजना काल में 5 करोड़ लोगो को अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने का लक्ष्य था।

दसवीं योजना का लक्ष्य रोजगार सृजन और समानता पर जोर देते हुए योजना अवधि के दौरान प्रगति की रफ्तार में तेजी लाना था। इसमें योजना अवधि के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का

लक्ष्य निर्धारित किया गया था। जिसमें 5 करोड़ अतिरिक्त रोजगार और स्वरोजगार अवसरों का लक्ष्य भी शामिल था। दसवीं योजना में श्रम शक्ति के साथ लाभदायक उच्च गुणवत्ता वाला रोजगार मुहैया कराने पर जोर दिया गया। इस योजना की रणनीति में तेज विकास के उन क्षेत्रों पर जोर दिया गया ,जो सूचना प्रौद्योगिकी,पर्यटन,वित्तीय सेवाए आदि की तरह उच्च गुणवत्तापूर्ण रोजगार अवसरों का सृजन करते है। ग्यारहवीं योजना में रोजगार की गुणवत्ता में सुधार को सुनिश्चित करते हुए रोजगार के अवसरो में तेजी से विकास किया जायेगा। इसमें कुल रोजगारो में नियमित कर्मचारियों के हिस्से को बढ़ाने की आवश्यकता के साथ अनियमित रोजगार तदनुरूप कटौती किया जाना शामिल है। योजना में रोजगार सृजन नीति में अधोस्तरीय रोजगार में कटौती का पूर्वानुमान लगाते हुए कृषि क्षेत्र में लगे अतिरिक्त श्रम को उच्च मजदूरी वाले क्षेत्रों में और कृषि भिन्न क्षेत्र मे अधिक लाभकारी रोजगार मे लगाया जाएगा। विनिर्माण में रोजगार के 4 प्रतिशत पर बढ़ाने की आशा है। जबकि निर्माण और परिर्वतन तथा संचार में रोजगार के क्रमशः 8.2 प्रतिशत और 7.6 प्रतिशत बढ़ने की आशा है। योजना के दौरान कुल श्रम बल में 45 मिलियन की वृद्धि होने का पूर्वानुमान लगाया गया है जबकि 58 मिलियन रोजगार के अवसरों का सृजन किया जाएगा। फलस्वरूप बेरोजगारी की दर में 5 प्रतिशत से नीचे तक की गिरावट आएगी।

7.8 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम (GovernmentPlanstoAlleviateUnemployment)

बेरोजगारी को दूर करने के लिए सरकार द्वारा चलाये जा रहे प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार है।

1. काम के बदले अनाज कार्यक्रम- 14 नवम्बर 2004 को इस कार्यक्रम को देश के 150 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में शुरू किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य पूरक रोजगार सृजन करना था। यह योजना लोगों को खाद्य सुरक्षा देने से भी सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक परिवार के कम से कम एक शारीरिक रूप से समर्थ व्यक्ति को 100 दिन का रोजगार दिया जा सकेगा। यह कार्यक्रम 100 प्रतिशत केन्द्रिय प्रायोजित योजना के रूप में कार्यन्वित किया जा रहा है।

2. ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (R.G.E.P.) - यह कार्यक्रम 1995 में ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे शहरों से शुरू किया गया। यह कार्यक्रम खादी और ग्रामोद्योग आयोग द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 25 लाख रुपये की लागत वाली परियोजनाओं के लिए उद्यमी खादी ग्रामोद्योग और बैंक ऋणों से प्राप्त मार्जिन धन सहायता का लाभ उठाकर ग्राम स्थापित कर सकते है।

3.इन्दिरा आवास योजना (I.A.Y.)- यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जिसका वित्तपोषण केन्द्र एवं राज्यों के बीच 75.25 (केन्द्र शासित प्रदेश 100) के अनुपात में किया जाता है। 1999-2000 से प्रारम्भ की गयी इन्दिरा भवन आवास योजना गांवो में गरीबो के लिए मुफ्त में मकानो के निर्माण की प्रमुख योजना है।

4.जवाहर ग्राम समृद्धि योजना(J.G.S.Y.)- इस योजना को अप्रैल 1999 से प्रारम्भ किया गया जो चली आ रही जवाहर रोजगार योजना (J.R.Y.) को ही पुनर्गठित तथा कारगार स्वरूप प्रदान करके किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अधिक मांग वाले ग्रामीण आधारभूत संरचना जिसमें ग्रामीण स्तर पर टिकाउ परिसम्पत्तियाँ सम्मिलित हैं, को विकसित करना है।

5.रोजगार (E.A.S.)- इस याजना का प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1993 को सूखा प्रवण, रेगिस्तान बहुल तथा पर्वतीय क्षेत्रों के चुने गये 1772 पिछड़े ब्लाकों में किया गया था। इसी योजना को एकल मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में 1 अप्रैल 1999 को पुनः तैयार किया गया है।

6. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY)-इस योजना को पहले से चल रही जवाहर ग्रामीण समृद्धि योजना (JGSY) तथा रोजगार बीमा योजना (EAS) को मिलाकर 25 सितम्बर 2001 को चलाया गया। यह अपने लक्ष्य स्वयं निर्धारित करने वाली योजना है। इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त खाद्यान सुरक्षा प्रदान करना है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाउ सामुदायिक सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थापना सृजित करना है।

7.शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम- शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री रोजगार योजना (P.M.R.Y.) को 1993-94 में शहरी क्षेत्रों में चलाया गया।

8. स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (S.J.S.R.Y.)-यह योजना दिसम्बर 1997 में लागू हुई जिसमें तीन शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों-नेहरू रोजगार (N.R.Y.),शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवाये योजना (U.B.S.P.) तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (P.M.I.U.P.E.P.) को एक में मिला दिया गया । इसका उद्देश्य स्वरोजगार उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देना या मजदूरी रोजगार के सृजन के द्वारा गरीबी रेखा के नीचे नवीं दर्जा तक शिक्षित शहरी बेरोजगारों या अर्धरोजगारों को रोजगार प्रदान करना है।

9.स्वशक्ति प्रोजेक्टर- यह प्रोजेक्टर अक्टूबर 1998 में ग्रामीण महिला विकास तथा सशक्तिकरण प्रोजेक्टर के रूप में केन्द्र द्वारा बिहार , छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, झारखण्ड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश में चलाया गया। यह प्रोजेक्टर वर्ल्ड बैंक तथा इन्टरनेशनल फण्ड फार एग्रीकल्चरल डेवेलपमेण्ट द्वारा संयुक्त रूप से प्राप्त सहायता से चल रही है।

10. इन्दिरा महिला योजना (I.M.Y.) का उद्देश्य महिलाओं की अधिकारिता प्रदान करना है।इस योजना को 1995-96 के दौरान 200 विकास खण्डों में चलाया गया था। योजना आयोग के एक अध्ययन दल की संस्तुति पर आई0 एम0 वाई0 को पुर्नगठित करके इसकी कमियो को दूर करके संशोधित रूप में अनुमोदित कर दिया गया है। महिला समृद्धि योजना को आई0 एम0 वाई0 के साथ जोड़ दिया गया है।

11. बालिका समृद्धि योजना (B.S.Y.) को 1997 में बालिकाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिर्वतन लाने के विशेष उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था।

12. एकीकृत बाल विकास तथा सेवा स्कीम (I.C.D.S.)1975 में शुरू इस स्कीम का उद्देश्य 6 वर्ष तक के उम्र के बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं का एकीकृत पैकेज प्रदान करना है , आँगनवाड़ी, भवनो, सीडीपीओ कार्यलयों एवं गोदामों के निर्माण के लिए ऋण प्रदान करना है।

13. प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (P.M.G.Y.) जिसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण लोगों की आवश्यक आवश्यकताओं दममकेद्ध को निर्धारित समयावधि में पूरा करना है।

14. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना- 25 दिसम्बर, 2000 को लागू की गयी। 60 हजार करोड़ रुपये की इस योजना का उद्देश्य 500 से अधिक जनसंख्या वाले गांवों को 2007 तक हर मौसमी सड़क से जोड़ना है। यह एक 100 प्रतिशत केन्द्र प्रायोजित योजना है। इसका वित्तपोषण डीजल पर उपकर से होता है।

15. अन्नपूर्णा योजना-1999-2000 की बजट में घोषित अन्नपूर्णा योजना का आरम्भ गाजियाबाद के सिखोड़ा ग्राम से हुआ। ज्ञातव्य है कि इस योजना को उद्देश्य देश के अत्यन्त निर्धन लागों के रोटी की व्यवस्था करनी है।

16. शिक्षा सहयोग योजना- यह योजना 1 अप्रैल 2001 से लागू, 2001-02 के बजट में प्रस्तावित योजना है। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे के बच्चों के माता-पिता को 100 रुपये प्रतिमाह शैक्षिक भत्ता प्रदान किया जायेगा जिससे वे 9 से 12 वीं कक्षा तक की शिक्षा के व्यय को पूरा कर सके।

17. अन्तोदय अन्न योजना- यह योजना दिसम्बर 2000 में चालू की गयी। इसके तहत लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत पहचान किये गये बी.पी. एल. परिवारों में से 1 करोड़ निर्धनतम परिवारों को चुना जाता है। शुरू में इसके अन्तर्गत प्रत्येेक अर्ह परिवारों को 25 किलोग्राम अन्न 2 रुपया प्रति किलो गेहूं तथा 3 रुपया प्रति किलों ग्राम चावल दिया जाता था। अप्रैल 2002 से 25 किलोग्राम को बड़ाकर 35 किलो ग्राम कर दिया गया।

18. दीन दयाल स्वालम्बन योजना- केन्द्रीय युवा मामलें व खेल मंत्रालय द्वारा ग्रामीण युवकों को स्वयं सहायता समूहों के रूप में संगठित कर उनमें स्वरोजगार के जरिये आय अर्जित करने के लिए क्रियान्वित।

19. प्रधानमन्त्री आदर्श ग्राम योजना- 2009-10 बजट में प्रस्तावित नयी योजना है जो उन 44000 गांवों के समन्वित विकास से सम्बन्धित है जिनकी जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 50प्रतिशत से अधिक है।

20. प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (P.M.E.G.P.)-15 अगस्त 2008 से प्रारम्भ प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (P.M.E.G.P.)अपने ढंग का एक नया प्रयास है जिसका प्रमुख उद्देश्य सब्सिडि पर कराये गये ऋण के माध्यम से शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में माइक्रो इन्टरप्राइज़ेज़ की स्थापना के द्वारा रोजगार के अवसर सृजित करना है। पहले से चली आ रही दो रोजगार योजनाओं प्रधानमंत्री रोजगार योजना (P.M.R.Y.) तथा ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (R.G.E.P.) को इसमें मिला दिया गया है।

21. राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा फण्ड- असंगठित क्षेत्रीय कामगारों सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 के अनुपालन में इस फण्ड को 1000 करोड़ रुपये के व्याय के साथ 2010 -11 बजट से चालू किया गया हैं। यह फण्ड धुनियों, रिक्सा चालकों, बीड़ी कारगरों आदि से सम्बन्धित स्कीमों को सहायता देगा।

22. स्वावलम्बन-2010-11 से शुरू यह स्कीम नयी पेंशन स्कीम में असंगठित लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहन करने से सम्बन्धित है। ऐसे लोग जो न्यूनतम 1000 रु. तथा अधिकतम 12000 रु. से इस स्कीम को अपना खाता खोलकर ज्वाइन करेंगे उसमें 1000 रु. सरकार अंशदान के रूप में देगी। यह तीन वर्ष तक उपलब्ध होगी।.

23. महिला किसान सशक्तीकरण परियोजना- 2010-11 से शुरू परियोजना है जो किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित है। यह राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (N.R.L.M.) के एक उप भाग के रूप में 100 करोड़ रुपया से शुरू की गयी है।

24. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण योजना गारन्टी एक्ट 2004 (मनरेगा) तथा राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी कार्यक्रम-नेशनल रूरल एम्प्लवायमेंट गारण्टी (N.R.E.G.A.) नरेगा सितम्बर 2005 को पारित हुआ तथा 2फरवरी, 2006 को इसकी शुरूआत प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा आन्ध्र प्रदेश के बन्दापाली से की गयी। 2 अक्टूबर 2009 इसका नाम बदलकर महात्मागांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी ऐक्ट कर दिया गया।

2 फरवरी को सरकार ने रोजगार दिवस के रूप में घोषित कर दिया। शुरू में यह योजना 200 जिलों में लागू की गयी पर 2007-08 बजट में इसे बढ़ाकर 330 जिलों में कर दिया गया।इस समय यह देश के सभी 614 जिलों में लागू है। रोजगार सृजन करने वाली यह पहली योजना है और इस दृष्टि से यह सभी स्कीमों से भिन्न है , जो पार्लियामेंट द्वारा पारित एक्ट के द्वारा ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार प्राप्त करने की गारण्टी के साथ कानून द्वारा अधिकार प्रदान करती है।

(1) प्रत्येक ग्रामीण परिवार के कम से कम एक प्रौढ़ सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन का गारण्टी रोजगार प्रदान की जिम्मेदारी होगी, जिसमें कम से कम 1/3 स्त्रियां होंगी।

(2) इसके तहत दिया गया रोजगार अकुशल शारीरिक श्रम रोजगार होगा जिसके लिए वैधानिक न्यूनतम मजदूरी देय होगी तथा जिसका भुकतान कार्य किये जाने के 7 दिन के भीतर देय होगी।

(3) रोजगार दिये जाने के सम्बन्ध में आवेदन के 15 दिन के भीतर रोजगार प्रदान किया जायेगा तथा रोजगार श्रमिक के निवास से 5 किलोमीटर दूरी के भीतर होगा। इससे बाहर काम दिए जाने पर श्रमिक को 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी। जॉब कार्ड प्राप्त होने के 15 दिन तक काम न पाने पर वह बेरोजगारी भत्ता प्राप्त करेगा। जॉब कार्ड 5 वर्ष तक वैध रहेगा।

(4) यदि इस समय सीमा के भीतर रोजगार नहीं प्रदान किया गया तो आवेदक को बेराजगारी भत्ता देय होगा जो न्यूनतम वैधानिक मजदूरी के 1/3 से कम नहीं होगा।

(5) सम्पूर्ण ग्राम राजगार योजना (S.G.R.Y.) तथा कार्य के लिए राष्ट्रीय अनाज योजना का इसमें विलय।

(6) केंद्रीय रोजगार गारंटी परिषद तथा प्रत्येक राज्य द्वारा राज्य परिषद की स्थापना जो इससे सम्बन्धित कार्य सम्पादित कर सके।

(7) जिला स्तर पर पंचायत अपने सदस्यों की स्थाई समिति बनाएगी जो जिला के भीतर कार्यक्रमों की देखरेख , निगरानी तथा क्रियान्वयन देखेगी।

(8) इस स्कीम के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकार प्रत्येक ब्लाक के लिए कार्यक्रम अधिकारी की नियुक्ति करेगी।

(9) ग्राम पंचायत परियोजनाओं की पहचान, क्रियान्वयन तथा देखरेख के लिए जिम्मेदारी होगी।

(10) केन्द्र सरकार इसकी निधिकरण की व्यवस्था के लिए राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कोष तथा राज्य सरकार राज्य रोजगार गारंटी कोष की स्थापना करेगी।

(11) पूरी स्कीम इस अर्थ में स्वचयनात्मक (SelfSelecting) होगी कि गरीबों में जो लोग न्यूनतम मजदूरी पर कार्य करने के इच्छुक हैं वे स्वयं इस स्कीम में कार्य के लिए आयेगें।

(12) यह प्रस्तावित है कि परियोजना से सम्बन्धित मजदूरी भाग का भुगतान (जो कुल लागत की लगभग 80 होगी) केन्द्र सरकार करेगी जबकि उसमें लगने वाली सामग्री की लागत का 75 प्रतिशत तथा प्रशासनिक लागत का कुछ भाग केन्द्र सरकार वहन करेगी तथा शेष राज्य सरकार वहन करेगी। इसमें होने वाले व्यय को केन्द्र तथा राज्य सरकार 90:10 में वहन करती हैं।

(13) ग्राम पंचायत इस स्कीम की क्रियान्वयन इकाई है तथा परिवार लाभ प्राप्तकर्ता इकाई है।

इस योजना के अन्तर्गत जल सम्भरण ,वाटरशेड मैनजमेन्ट,बाढ़ तथा सूखा संरक्षण ,फोरेस्ट्री,भूमि विकास,गांवों को सड़क के द्वारा जोड़ना ,मरूस्थल विकास आदि से सम्बन्धित परियोजनाओं में रोजगार प्रदान किया जायेगा,इस प्रकार रोजगार के द्वारा अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति सृजन होगा।

उल्लेखनीय है कि इस योजना के अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान 'एकाउन्टपेयी चेक' या पोस्ट आफिस में खाते के द्वारा ही होना है जिससे मध्यस्थों या बिचोलियों से मुक्ति मिल सके।

निःसन्देह राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी योजना सर्वथा अलग योजना है। अन्य रोजगार सृजन कार्यक्रमों की तरह इसकी सफलता इसके क्रियान्वयन तथा उसके साथ जुड़े हुए भ्रष्टाचार घूसखोर ,फर्जीहाजिरी,जबावदेही आदि के स्तर पर निर्भर करेगी। रोजगार सृजन की यह योजना सार्वजनिक वस्तुओं को विकसित करने के लिए मजदूरी की व्यवस्था करती है। चूंकि सार्वजनिक वस्तु किसी की अपनी नहीं होती है ,इसीलिए इसके सृजन में होने वाले हर सम्भव दुरूपयोग सम्भव हैं। आवश्यकता इसकी है कि पूरी योजना इस प्रकार से योजनाबद्ध हो कि जहां एक ओर यह गरीबों को अधिक से अधिक लाभप्रद रोजगार प्रदान करे वहीं दूसरी ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्र आर्थिक विकास सुनिश्चित हो।

7.9अभ्यास हेतु प्रश्न(Practice Questions)

1. प्रच्छन्न बेरोजगारी और खुली से आप क्या समझते है?
2. बेरोजगारी के प्रमुख कारण क्या है?
3. बेरोजगारी के दुष्प्रभावों को संक्षेप में बताइए।
4. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के विभिन्न स्वरूप को बताइए।
5. बेरोजगारी को दूर करने के प्रमुख कार्यक्रम क्या है?

7.10सारांश(Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या बेरोजगारी है। बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता हैं , जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो। इस बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिए हैं,सरकार ने अनेक बेरोजगारी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए हैं ,जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या बेरोजगारी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

7.11शब्दावली (Glossary)

बेरोजगरी की दर(UnemploymentRate) = (बेरोजगारोंकीसंख्या)/(कुलश्रमशक्ति)×100

माइग्रेशन(Migration) - एक जगह से दूसरी जगह जाकर रहने लगना।

अदृश्य बेरोजगारी (InvisibleUnemployment) - खेतों पर से यदि अतिरिक्त लोगों को हटा लिया जाय और उत्पादन में कमी न आये।

कुशलतम प्रयोग (OptimalUse) - न्यूनतम नुकसान पर अधिकतम इस्तेमाल द्वारा उत्पादन करना।

7.12अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

टिप्पणी लिखिए- 1-देखिए 7.4, 2-देखिए 7.8,3-देखिए 7.9, 4-देखिए 7.4,5-देखिए 7.11।

7.13संदर्भग्रन्थसूची(Reference/Bibliography)

MisraandPuri,IndianEconomy(2010) HimalayaPublishingHouse

Kapila,Uma(2008-09),IndianEconomy, AcademicFoundation.

दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था , एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि 0, नई दिल्ली।

लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था - सर्वेक्षणतथा विश्लेषण , शिवम पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

7.14उपयोगी / सहायकपाठ्य सामग्री(Useful/Helpful Text)

www.ibef.org/economy/agriculture.aspx

www.economywatch.com/database/agriculture

business.gov.in/Indian_economy/agriculture

आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।

कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

7.15 निबन्धात्मकप्रश्न (Essay type Questions)

1. किसी देश के अविकसित रहने के लिए बेरोजगारी किस रूप में जिम्मेदार है ?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।
2. बेरोजगारी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।

इकाई 8असमानता (Inequality)

8.1प्रस्तावना (Introduction)

8.2 उद्देश्य (Objectives)

8.3 भारत में असमानता (Inequality in India)

8.3.1 भारत में बढ़ती आर्थिक असमानताएं (Increasing Inequalities in India)

8.3.2 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण (Reasons for Unequal Distribution of Income and Wealth in India)

8.3.3 भारत में आर्थिक असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ (Measures and Achievements to Eliminate Economic Inequalities in India)

8.4 काला धन (Black Money)

8.4.1 काले धन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र (Definition, Sources and Areas of Black money)

8.4.2 काले धन का अनुमान (Estimation of Black Money)

8.4.3 काले धन पर सरकार की पहल (Government Initiative on Black Money)

8.4.4 काले धन को रोकने के उपाय (Measures to Stop Black Money)

8.4.5 काले धन की वृद्धि के प्रभाव (Effects of Increase of Black Money)

8.5 वित्तीय कार्रवाई कार्यदल (Financial Action Task Force)

8.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

8.7सारांश(Summary)

8.8 शब्दावली(Glossary)

8.9 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

8.10 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

8.11 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

8.12निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

8.1प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाइयों से आप अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

वर्तमान इकाई में आप देश में बढ़ती आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे। भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था एक प्रमुख आर्थिक समस्या के रूप में विद्यमान है । यहाँ आगे आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था का आशयउससे जुड़े कारणों,समस्याओं एवं नीतियों का उल्लेख भी किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था को सामान्य दृष्टि से समझ सकेंगे। आप यह भी समझ सकेंगे कि आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के क्या कारण एवं इसके क्या दुष्प्रभाव है। देश और राज्यों में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था का विश्ले ,षण कर सकेगें और इसे दूर करने के उपाय और उपलब्धियों को जान सकेंगे।

8.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

भारत में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था की प्रकृति को जान सकेंगे।

भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बढ़ती आर्थिक विषमताएँ का वर्णन कर सकेंगे।

भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताओं के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।

भारत में आर्थिक विषमताओ असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियों को जान सकेंगे।

8.3 भारत में असमानता (Inequality in India)

किसी भी देश का आर्थिक विकास केवल राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन में वृद्धि में ही निहित नहीं , वरन उसका एक महत्वपूर्ण पहलू आय एवं उत्पादन का न्यायोचित वितरण भी है। वितरण का स्वरूप कैसा है। व्यक्तिगत एवं प्रादेशिक वितरण की स्थिति कैसी है , वितरण में समानता है अथवा असमानता और विषमता का आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव है?इन कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय के वितरण से है जिसका अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

आर्थिक असमानता का अर्थ (Meaning of Economic Inequality): आर्थिक असमानता अथवा आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण से अभिप्राय अर्थव्यवस्था की उस परिस्थितियों से है जिसमें कि राष्ट्र के कुछ लोगों की आय, राष्ट्र की औसत आय से बहुत अधिक तथा अधिकांश लोगों की आय , राष्ट्र की औसत आय से बहुत कम होती है। आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण की समस्या का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्तिगत आय के वितरण में विषमताओं से होता है। इससे अभिप्राय यह है कि कुछ व्यक्तियों की आय बहुत अधिक है जबकि अधिकतर लोगों की आय बहुत कम है।

आय के वितरण का अर्थव्यवस्था में महत्व (Importance of Income Distribution in the Economy): किसी भी राष्ट्र में आय और धन के वितरण का इसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब तक आय का वितरण वैयक्तिक एवं प्रादेशिक स्तर पर समान रहता है तो आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है, समृद्धि बढ़ती है और राजनीतिक शान्ति के साथ-साथ सामाजिक सद्भावना बनी रहती है , व्यक्तिगत

कुशलता एवं प्रेरणा बढ़ती है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है , गरीबी और अमीरी की घृणा नहीं पनपती और सर्वत्र शान्ति एवं सौहार्द पनपता है।

इसके विपरीत समाज में धन एवं आय का असमान वितरण और देश में व्याप्त आर्थिक विषमताओं से अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। देश में आय तथा धन की वैयक्तिक एवं प्रादेशिक वितरण जितना विषम एवं असमान होगा उतनी ही आर्थिक विकास की गति धीमी होगी। समाज में वर्गसंघर्ष और तनाव से राजनीतिक अशान्ति होगी क्योकि देश के किसी भी भाग में व्याप्त गरीबी से विश्व सदृढ़ता को खतरा होगा यह कहना अति समृद्धि के लिए सबसे बड़ा खतरा है। आर्थिक क्षेत्र में विषमताएं आर्थिक शोषण को बढ़ावा देती हैं। अमीरों से गरीबों का द्वेष ही क्रान्ति को बुलावा देता है। गरीबी में नीचा जीवनस्तर उत्पादन क्षमता को अधिक गरीब बनाता है जबकि दूसरी ओर विलासिता में डूबे धनी लोग उन्हीं आर्थिक साधनों को कम उपयोगी क्षेत्रों में ले जाकर सामाजिक कल्याण में कमी करते हैं।

भारत में आर्थिक असमानता की प्रकृति एवं विस्तार (Nature and Extent of Economic Inequality in India): भारत में आर्थिक असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है। भारत में आय के वितरण की जांच करने के लिए सरकार ने सर्वप्रथम प्रो. महालनोबिस की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी। सी.पी. इस समिति के अतिरिक्त राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Research), भारतीय रिज़र्व बैंक तथा कई अर्थशास्त्रियों जैसे लाइइल. ओझा और भट्ट रानाडिवे. अहमद, भट्टाचार्य आदि ने आय के वितरण के सम्बन्ध में जांच की है। भारत में कई प्रकार की आर्थिक असमानताएं पाई जाती है। इनमें से निम्नलिखित प्रकार की असमानतायें अधिक महत्वपूर्ण है।

परिसम्पति की असमानता
आय तथा उपभोग की असमानता
क्षेत्रीयअसमानता

8.3.1 भारत में बढ़ती आर्थिक असमानताएं (ncreasing Inequalities in India)

चाहे अर्थव्यवस्था का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, प्रत्येक में कुछ न कुछ आर्थिक विषमताएं अवश्य होती हैं। जहाँ समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताएं नगण्य और आर्थिक विकास के अनुकूल , सामाजिक दृष्टि से न्यायोचित और राजनीतिक दृष्टि से उपयुक्त हैं वहीं पूजीवादी , विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक विषमातएं बहुत व्यापक और कष्टदायी हैं। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक विषमताएं अनेक प्रकार से देश को झकझोर रही हैं और उनकी बढती प्रवृत्ति ने कई प्रकार की आर्थिक , सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को जन्म दिया है। भारत में आर्थिक विषमता के विभिन्न स्वरूप इस प्रकार हैं

1. वैयक्तिक आर्थिक असमानताएं (Personal Economic Inequalities): यद्यपि भारत में व्यक्तिगत आय वितरण के आंकड़ें संकलित नहीं किए जाते, किन्तु समय- समय पर किए गए अध्ययनों के मोटे अनुमानों से पता लगता है कि राष्ट्रीय आय के व्यक्तिगत वितरण में भारी असमानताएं हैं।

आयंगर एवं मुकर्जी (Iyengar and Mookerjee) के अनुसार 1956-57 में ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत हजम कर जाते थे जबकि नीचे के 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 8.5 प्रतिशत भाग ही मिलता था।

प्रो लिण्डाल ने अनुमान लगाया कि जहाँ ऊपर के 5 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 23 प्रतिशत, ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 34 प्रतिशत तथा ऊपर के 50 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 75 प्रतिशत हड़प कर जाते, वहीं नीचे के 20 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का केवल 9.5 प्रतिशत तथा नीचे के 50 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का केवल 25 प्रतिशत ही मिल पाता था।

राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Research), ने 1960 के अनुमान में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत वितरण की असमानता अलग है। इसके अनुमानों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग प्राप्त करते हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में उनका भाग 42.4 प्रतिशत है जबकि नीचे के 10 प्रतिशत लोग दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय का प्रतिशत भाग ही प्राप्त करते हैं।

व्यक्तिगत आर्थिक वितरण की असमानायें केवल आय में ही नहीं दिखतीं , वरन व्यक्तिगत उपभोग व्यय के अनुमानों में भी झलकती है। राष्ट्रीय पतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (National Sample Survey Organisation) 1959-60 के अनुमानों के अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत लोगों का उपभोग व्यय कुल का 42 प्रतिशत था। वहीं नीचे के 20 प्रतिशत लोगों का भाग केवल 8 प्रतिशत अर्थात् बहुत कम था। इसी प्रकार का अनुमान राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Research) के 1964-65 के अध्ययन में दृष्टिगोचर होता है। इसके अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों का कुल व्यय में 33 प्रतिशत भाग था वहीं नीचे के 20 प्रतिशत परिवारों का उपभोग व्यय में केवल 13 प्रतिशत ही भाग था। दाण्डेकर एवं रथ (Dandekar and Rath) के अनुसार 1960-61 की कीमतों के स्तर पर 1967-68 में शहरी क्षेत्र के केवल 5 प्रतिशत लोगों का प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग व्यय 1,330 रू था, जबकि नीचे के 5 प्रतिशत लोगों का यह व्यय मात्र 78 रू ही था। इस प्रकार दोनों में 17 गुना अन्तर वैयक्तिगत असमानता को उजागर करता हैं।

प्रो. महालनोबिस (Prof. P.C. Mahalanobis) ने भी राष्ट्रीय आय वितरण सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन में इस असमानता पर विचार व्यक्त करते हुए बताया कि देश के 1 प्रतिशत धनिक राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत भाग को हड़प जाते हैं जबकि नीचे के 50 प्रतिशत गरीबों को राष्ट्रीय आय का केवल 22 प्रतिशत भाग ही मिलता है। ये विभिन्न अनुमान संक्षेप में निम्न तालिका में दर्शाये गये हैं।

विश्व विकास प्रतिवेदन (World Developmental Report) 1988 के अनुसार 1975-76 में भारत के सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग मिल रहा था जबकि निम्नतम 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का केवल 7 प्रतिशत भाग प्राप्त हो रहा था। जहां ऊपर के 20 प्रतिशत धनी राष्ट्रीय आय का 49.4 प्रतिशत भाग हड़प रहे थे वहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या को राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत भाग मिल रहा था।

तालिका 8.3.1.1 भारत में वैयक्तिक आय वितरण की असमानता के अनुसार

(प्रतिशत के रूप)

लोग

भारतीय रिजर्व बैंक लिण्डाल के अनुमान आयंगर एवं मुकर्जी के अनुसार NCAER के अनुमान

	गाँव शहर	गाँव शहर					
ऊपर के 5 प्रतिशत लोग	17	26	23		17.5	-	31
ऊपर के 10 प्रतिशत लोग		25	37	34	25	33.6	42.4
ऊपर के 50 प्रतिशत लोग	69	75	75	-	79.3	83	

वैयक्तिक आय वितरण की असमानताएं और कई गुना बढ़ जायें अगर हम काले धन के वितरण का भी समावेश कर लें क्योंकि काले धन का सर्वाधिक भाग धनिकों की जेब में जाता है और भारत में काले धन का बाहुल्य किसी से भी छिपा नहीं है।

2.परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता (Economic Inequality of Assets) भारत में परिसम्पत्ति की असमानता के संबंध में प्राप्त आंकड़े अपर्याप्त तथा अविश्वसनीय है। परन्तु उपलब्ध आकंडे स्पष्ट करते हैं कि भारत में परिसम्पत्ति की असमानता काफी अधिक एवम् व्यापक है। परिसम्पत्ति की असमानता का अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है

1. ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता (Economic Inequality of Assets in Rural Areas)

भारत की लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। ग्रामीण क्षेत्र में विद्यमान सम्पत्ति की असमानता निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट हो जाती हैः (रिजर्व बैंक द्वारा किये गये अखिल भारतीय ऋण एवम् कुल परिसम्पत्ति का असमान वितरण) सारा निवेश सर्वेक्षण के अनसार , ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता का विस्तार काफी अधिक है।

तालिका 8.3.1.2ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पत्ति का विवरण व्यक्ति

व्यक्ति कुल सम्पत्ति में प्रतिशत भाग

	1961	1971
नीचे के 10 प्रतिशत	0.1	0.1
ऊपर के 10 प्रतिशत	51.4	51.0
नीचे के 30 प्रतिशत	2.5	2.0
ऊपर के 30 प्रतिशत	79	81.9

तलिका 8.3.1.2 में प्रस्तत ग्रामीण क्षेत्रों की सम्पत्ति के वितरण सम्बन्धी आकड़ों से निम्न तथ्य स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाते हैंः

(क) गांवों में निवास करने वाली जनसंख्या का नीचे के 10 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण परिसम्पत्ति में केवल 0.1 प्रतिशत भाग है। जबकि ऊपर के 10 प्रतिशत वर्ग का लगभग 51 प्रतिशत भाग है। अन्य शब्दों में ऊपर के वर्ग

के 10 प्रतिशत लोगों में से एक व्यक्ति के पास इतनी सम्पति है , जितनी की नीचे के वर्ग के 510 व्यक्तियों के पास है। सन् 1961 से 1971 तक के 10वर्षों में इस असमानता में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

(ख) तालिका यह भी इंगित करती है कि नीचे के (30 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण सम्पत्ति में भाग सन् 1961 में 2.5 प्रतिशत था सन् 1971 में यह कम होकर 2 प्रतिशत रह गया। इसके विपरीत ऊपर के 30 प्रतिशत का भाग जो 1961 में 79 प्रतिशत था वह 1971 में बढ़कर 81.9 प्रतिशत हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता कम होने के स्थान पर बढ़ती जा रही है।

2. भूमि के वितरण में असमानता (Inequality of Land Distribution)

ग्रामीण क्षेत्र में भूमि उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है। कृषि के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि के वितरण में काफी असमानता पाई जाती है। इस समय भारत में लगभग 9 करोड़ 77 लाख जोतें या खेत हैं। इनके वितरण की असमानता निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

तलिका 8.3.1.3कार्यशील भूजोतों का आकार के अनुसार वितरण

भू जोतों का आकार (हेक्टेयर)	1970-71		1985-86	
	कुल जोतो का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	कुल जोतो का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
1.0 हेक्टेयर से कम	51	9	58	13.1
1 से 2 हेक्टेयर	18.9	11.9	18.2	15.5
2 से 4 हेक्टेयर	15	18.5	13.6	22.2
4 से 10 हेक्टेयर	11.2	29.7	8.2	28.7
10 से अधिक हेक्टेयर	3.9	30.9	2.00	20.5
कुल	100	100	100	100

Source: Agricultural Situation in Brief 1998

उपरोक्त तालिका

1.सन् 1985-86 में सीमान्त जोतों (1 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा लघु जोतों (2 हैक्टेयर तक की) जोतों की संख्या कुल कार्यशील जोतों की (76 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का 28 प्रतिशत भाग था। इसके विपरीत मध्यम (10 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा बड़ी जोतों (10 हैक्टेयर से अधिक तक की जोतो केवल की संख्या कुल जोतों की (10 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का लगभग 49 प्रतिशत भाग था। इस प्रकार 10 प्रतिशत जोतों के स्वामी धनी किसानों का 49 प्रतिशत कृषि भूमि पर स्वामित्व है। इसके विपरीत 76 प्रतिशत निर्धन किसानों का केवल 28 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है । सन् 1970-71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है। सन् 1970-71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व था। तालिका -8.3.1.2 में प्रस्तुत आंकड़ों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि भारत में भूमि के स्वामित्व की असमानता काफी अधिक है।

3. शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता (Economic Inequality of Assets in Urban Areas)

भारत के केवल ग्रामीण क्षेत्रों में ही नहीं अपितु शहरी क्षेत्रों में भी सम्पत्ति की असमानता बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसे निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट किया जा सकता है

1. भवन सम्पत्ति का स्वामित्व (Building Property Ownership)शहरों में सम्पत्ति के वितरण की असमानता और भी अधिक है।नेशनल सैम्पल सर्वे के आठवें दौर के अनुसार शहरी क्षेत्र के ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी जमीन का 93 प्रतिशत भाग था। इनमें से सबसे अधिक धनी 5 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी भूमि का 52 प्रतिशत भाग था। नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च के अनुसार शहरी क्षेत्र के सबसे उच्च वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 57 प्रतिशत भवन सम्पत्ति केन्द्रित है। इसके विपरीत नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 1 प्रतिशत से भी कम भवन सम्पत्ति है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण में काफी असमानताएं पाई जाती हैं।

2. शेयर सम्पत्ति का स्वामित्व (Ownership of Share Property) भारत में शेयर सम्पत्ति से सम्बन्धित असमानताएं और भी अधिक हैं । महालनोबिस समिति के अनुसार आय कर देने वालों में सबसे धनी वर्ग 10 प्रतिशत लोगों को शेयरों के लाभांश से प्राप्त कुल आय का 52 प्रतिशत लाभ मिला था। नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों का भाग केवल 2.5 प्रतिशत था। इकोनोमिक टाइम्स रिसर्च ब्यूरों के अनुसार भारत में 20 व्यावसायिक घरानों की परिसम्पत्ति 10,000 करोड़ रूपये से भी अधिक है। इन 20 बड़े घरानों का अर्जित लाभ 900 करोड़ रूपये से भी अधिक है। इससे सिद्ध होता है कि देश में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण होने के फलस्वरूप सम्पत्ति की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है। संक्षेप में , भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती हैं। पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में कमी होने के बजाय बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

4. भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताएं (Regional Disparities in Income Distribution in India)

भारतीय अर्थव्यवस्था एक विशाल अर्थव्यवस्था है और उसके विभिन्न क्षेत्रों में भी आय वितरण में काफी असमानताएं हैं। आर्थिक दृष्टि से विकसित एवं प्राकृतिक दृष्टि से सम्पन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है जबकि पिछड़े राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। नेशनल कौन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च के एक सर्वेक्षण के अनुसार 1960-61 में बिहार में प्रति व्यक्ति आय 220.6 रू सबसे कम थी जबकि दिल्ली में प्रति आय सर्वाधिक 871.61 रुपये थी। महाराष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय 668.5 रु तथा पश्चिमी बंगाल में 464.6 दूसरे और तीसरे स्थान पर थे।

योजनाबद्ध विकास में यद्यपि लक्ष्य प्रादेशिक विषमताओं को यथासम्भव कम करने का था , किन्तु वास्तविकता यह रही कि धनी राज्य और अधिक धनी एवं समृद्ध हुए और पिछड़े राज्यों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के बावजूद धनी राज्यों के मुकाबले कम रही। इस विषमता की झलक निम्न तालिका से मिलती है।

तलिका 8.3.4 भारत में प्रादेशिक आय वितरण (प्रति व्यक्ति आय)

राज्य	1981-82	1985-86	1987-90	1992-95	2005-06	राज्यों में स्थान
पंजाब	3122	4084	6303	12538	30701	3
महाराष्ट्र	2519	3208	5368	11369	32170	2

हरियाणा	2581	3322	5371	10563	32712	1
गुजरात	2211	2814	4602	8829	28355	4
राजस्थान	1417	2069	2878	5665	16593	11
उड़ीसा	1308	1754	2684	4263	13601	15
बिहार	1417	2026	2026	3482	5772	17

उपर्युक्त तालिका 8.3.4 से स्पष्ट है कि 2003-04 में हरियाणा में प्रति व्यक्ति आय सर्वाधिक थी जबकि बिहार में सबसे कम है। दोनों की प्रति व्यक्ति आय में साढ़े चार गुना अन्तर है। राजस्थान की प्रति व्यक्ति आय पंजाब से आधी से भी कम है जबकि बिहार से ढाई गुना है। हरियाणा , गुजरात और महाराष्ट्र में प्रति व्यक्ति आय बिहार , उड़ीसा, केरल, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुकाबले कहीं अधिक है।

8.3.2 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण (Reasons for Unequal Distribution of Income and Wealth in India)

भारत में आय तथा सम्पत्ति में पाई जाने वाली असमानता का मुख्य कारण जमींदारी प्रथा के फलस्वरूप भूमि के स्वामित्व में विद्यमान असमानता है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में जमींदारी प्रथा पाई जाती थी। इसके फलस्वरूप भूस्वामित्व में भारी असमानता पाई जाती थी। स्वतंत्रता के पश्चात् - जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई परन्तु भूमि के स्वामित्व की असमानता में कोई विशेष कमी नहीं हुई है।इस समय देश के 10 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास कृषि भूमि का 56 प्रतिशत भाग है तथा 70 प्रतिशत जनसंख्या के पास केवल 14 प्रतिशत भाग है। भूमि के स्वामित्व में पाई जाने वाली असमानता ग्रामीण क्षेत्र में पाई जाने वाली आय की असमानता का मुख्य कारण है। ग्रामीण क्षेत्र में भूमिहीन कृषि श्रमिकों तथा छोटे किसानों की आय बहुत कम है। वे बड़ी कठिनाई से अपना जीवन निर्वाह कर पाते हैं। इसके विपरीत बड़े किसानों की आय बहुत अधिक है तथा इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। इन किसानों के पास पूंजी अधिक होती है इसलिए ये ट्रैक्टर,ट्यूबवैल,रासायनिक खाद,उत्तम बीज आदि का प्रयोग करके अधिक उत्पादन करते हैं। इससे इनकी आय में और अधिक वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत छोटे किसान पूंजी के अभाव में अपने खेतों से अधिक उत्पादन नहीं कर पाते। वे पिछड़े तथा निर्धन रह जाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में भूस्वामित्व की असमानता के कारण आय तथा सम्पत्ति की असमानता में वृद्धि होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानताओं के कई कारण है। वैयक्तिक आय में भिन्नता ,योग्यता,अवसर कुशलता एवं सम्पत्ति स्वामित्व पर निर्भर है जबकि क्षेत्रीय विषमताएं तो कई कारणों का सामूहिक परिणाम है ,अतः उनमें प्रमुख कारण इस प्रकार हैं जन्मजात योग्यताओं में अन्तर यह वैयक्तिक आय में सम्पत्ति की असमानताओं का एक प्रमुख - कारण है। कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान,योग्य,परिश्रमी एवं कुशल होते हैं और ऐसे लोगों की आय कम बुद्धिमानों ,अयोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ही होगी।

1. अवसरों की असमानता (Inequalities of Opportunities): व्यक्तियों के जन्मजात गुणों में समानता होते हुए भी उन व्यक्तियों की अधिक आय एवं सम्पत्ति प्राप्त होती है जिन्हें अच्छा अवसर मिल जाता है। जिन व्यक्तियों को अवसर नहीं मिल पाता वे पिछड़ जाते हैं। जहां धनी वर्ग के सामान्य बुद्धि वाले बच्चे उचित अवसर

मिलने से आर्थिक उन्नति कर जाते हैं जबकि कुशाग्र बुद्धि वाले परिश्रमी एवं योग्य बच्चे अच्छे अवसर के अभाव में पिछड़ जाते हैं।

2. आर्थिक शोषण (Economic Exploitation):व्यक्तिगत लाभ एवं सम्पत्ति के स्वामित्व की लालसा व्यक्ति को मानव से दानव भी बना सकती है। यही भावना पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण ,उत्पादकों एवं व्यापारियों द्वारा उपभोक्ता का शोषण , धनी व्यक्तियों द्वारा गरीबों का शोषण तथा सबलों द्वारा निर्बलों के शोषण की प्रवृत्ति समाज में धन एवं आय में अन्तराल पैदा करती है। भारत में शोषणकर्ताओं की आय शोषितों के मुकाबले काफी अधिक है।

3. सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की भावना (Feeling of Ownership and Property): पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की असमानता आर्थिक विषमता का मुख्य घटक है। यह आर्थिक असमानता को बढ़ाने के साथ-साथ ही उसे स्थायी बनाती है, क्योंकि वितरण का आधार व्यक्ति की कुशलता नहीं, वरन् साधनों की मात्रा से है, जितनी ही जिसके पास सम्पत्ति एवं पूँजी अधिक है उसको राष्ट्रीय आय में इतना ही अधिक भाग मिलता है। भारत में जागीरदारों , बड़े-बड़े भूस्वामियों, उद्योगपतियों एवं सम्पत्ति स्वामियों को राष्ट्रीय आय में भूमिहीनों, श्रमिकों और सम्पत्तिहीनों से कहीं अधिक हिस्सा मिलता है जो आर्थिक विषमता को बढ़ाता है।

4. उत्तराधिकार (Succesion):भारत प्रचलित उत्तराधिकार प्रथा से पैतृक सम्पत्ति उत्तराधिकारियों को मिलती रहती है। धनी घर में जन्म लेने वाले बच्चे भाग्यशाली होते हैं और चाँदी का चम्मच मुँह में लेकर जन्मते हैं जबकि निर्धन घर में जन्म लेने वाले बच्चों को गरीबी, ऋणग्रस्तता एवं भुखमरी विरासत में मिलती
प्रो टाजिंग ने ठीक ही कहा है , “उत्तराधिकार प्रथा ही पूँजी तथा आय अर्जित करने वाली सम्पत्तियों की असमानताओं को स्थायित्व प्रदान करती है और धनी तथा निर्धनों के बीच गहरी खाई की व्याख्या करती है।“

5. शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति का निजी स्वामित्व (Private Ownership of Property in Urban Areas): शहरी क्षेत्र में उद्योगों , व्यापार, भूमि, मकानों आदि सम्पत्ति पर निजी स्वामित्व पाया जाता है। कुछ लोगों के अधिकार में अधिकतर शहरी सम्पत्ति होती है। इसके विपरीत शहरों की अधिक जनसंख्या निर्धन होती है। शहरों में पूंजीपति, उद्योगों, व्यापार, यातायात तथा अन्य व्यवसायों में पूंजी का निवेश करके अधिक आय प्राप्त कर पाते हैं , परन्तु शहरों का मध्यम तथा निर्धन वर्ग अपना जीवन निर्वाह भी बड़ी कठिनाई से कर पाता है। यद्यपि यह वर्ग अधिक शिक्षित तथा योग्य होता है परन्तु पूंजी की कमी के कारण इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार सम्भव नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप शहरी क्षेत्र में भी आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमनता बनी रहती है।

6. उत्तराधिकार के नियम (Rules of Succesion):

7. व्यावसायिक प्रशिक्षण में असमानता (Inequality in Vocational Training): आय की असमानता का ज्ञान उपभोग व्यय के वितरण से किया जा सकता है। विभिन्न स्रोतों द्वारा एकत्रित किये गये उपभोग सम्बन्धी आंकड़े निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये।

तालिका 8.2.1 भारत में उपभोग की असमानता के अनुमान

व्यक्ति	NCAER	N.S.S.
ऊपर के 20 प्रतिशत	42.39	37.87

नीचे के 20 प्रतिशत 8.66 8.47

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से आभास होता है कि नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च (NCAER) के अनुसार सबसे ऊंचे वर्ग के 20 प्रतिशत व्यक्तियों का कुल उपभोग में 42.39 प्रतिशत भाग था सबसे निचले 20 प्रतिशत लोगों का केवल 8.66 प्रतिशत भाग था। इसी प्रकार राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे छण्ैण्ैण् के अनुसार उपरोक्त वर्गों का कुल उपभोग में क्रमशः भाग 37.87 प्रतिशत तथा 8.47 प्रतिशत था। इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में आय की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है।

उपरोक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप आर्थिक असमानता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती है। योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

8.3.3 भारत में आर्थिक असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ (Measures and Achievements to Eliminate Economic Inequalities in India)

भारत के संविधान में ही समानता का अधिकार है। समानता का कतई यह अभिप्राय नहीं है कि सबकी समान आय तथ सम्पत्ति हो , निरपेक्ष समानता न तो सम्भाव है और न वांछित ही। निपुण और अकुशल , योग्य और अयोग्य, श्रेष्ठ एवं सामान्य व्यक्ति की मजदूरी , वेतन एवं आय में कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए , क्योंकि इसके बिना कुशल श्रमशक्ति का विकास सम्भव नहीं। अतः आर्थिक विषमता में यथासम्भव कमी करना ही आर्थिक समानता का आदर्श है। आर्थिक असमानताओं को कम करने के लिए समाजवादी राष्ट्रों में तो उग्र उपायों का सहारा लिया जाता है जिसमें निजी सम्पत्ति का बिना मुआवजा दिये राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है। सभी व्व्यक्तियों को जाति, लिंग एवं धर्म के भेदभाव किये बिना समान आय प्रदान की जा सकती है , किन्तु पूँजीवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए उदार उपाय किये जाते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विषमताओं को यथासम्भव कम करने के लिए द्वि दिशा आक्रमण-(Two Pronged Attack) के उदार उपायों का सहारा लिया है। जहां एक और वैधानिक एवं प्रजातान्त्रिक तरीकों से धनी व्यक्तियों की आय और सम्पत्ति को कम किया जा रहा है वहां दूसरी ओर निर्धनों की आय, उत्पादन क्षमता, धनोपार्जन विधियों में वृद्धि की जा रही है। धनी एवं निर्धनों के अन्तराल को पाटने के लिए काफी उपाय किये गये हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि देश में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम किया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई नीति की मुख्य विशेषताएं या सरकार द्वारा अपनाए गए मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं-

भूमि सुधार (LandReforms): ग्रामीण क्षेत्र में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करने के लिए भूमि सुधार किये गए हैं। भूमि सुधार सम्बन्धी नीति का मुख्य उद्देश्य भूमि स्वामित्व की असमानता में कमी लाना है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने स्वतन्त्रता के शीघ्र पश्चात् ही भूमि उन्मूलन सम्बन्धी कानून बना दिए थे। इसके फलस्वरूप जमींदारी समाप्त कर दी गई तथा जमींदारी की उच्चतम सीमा से अधिक भूमि का वितरण उस पर काश्त करने वाले काश्तकारों में कर दिया गया। कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए कानून बनाए गए हैं। सीमा से ऊपर की जमीन उनके स्वामियों से ली जा रही है। इस जमीन का वितरण उन लोगों में किया जा रहा है जिनके पास बहुत थोड़ी भूमि थी या जो भूमिहीन थे। परन्तु भारत में भूमि सुधार की प्रगति बहुत धीमी रही है। भूमि सुधार के अधिकतर उद्देश्य अधिक सफल नहीं हो सके हैं।

रोजगार में वृद्धि (IncreaseinEmployment): भारत में आर्थिक विषमता एवं गरीबी मिटाने के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत पिछले 56 वर्षों में लगभग 26.5 करोड़ से अधिक अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया है। सातवीं योजना में 4 करोड़ अतिरिक्त मानक मानव वर्ष को रोजगार दिये जाने का लक्ष्य था। जहाँ पहली योजना में 75 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया वहां चौथी योजना में लगभग 170 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया। गरीबी हटाओ कार्यक्रम के अन्तर्गत भी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार तथा ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारन्टी योजना द्वारा रोजगार दिया जा रहा है। जवाहर रोजगार योजना के तहत भी गरीबी रेखा के नीचे 4-6 करोड़ परिवारों को रोजगार देने का लक्ष्य था। आठवीं योजना में रोजगार में 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था। दसवीं योजना में 5 करोड आर्थिक रोजगार का लक्ष्य था।

सार्वजनिक क्षेत्र का विकास (DevelopmentofPublicSector): सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विकास करने की नीति को अपनाया है। इस क्षेत्र के विकास के कई उद्देश्य आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करना है। यह क्षेत्र निजी क्षेत्र के स्वामित्व के विस्तार को रोकने में सहायक है। बैंकों के राष्ट्रीयकरण का भी यह एक मुख्य उद्देश्य है। इसके फलस्वरूप निजी लोगों के हाथ में धन तथा आय में केन्द्रीयकरण को रोकने तथा इस प्रकार समानता को बढ़ाने में मदद मिलेगी। किन्तु सरकार द्वारा जिस आदर्श की प्राप्ति हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की नीति का अनुकरण किया गया उसमें असफलता ही प्राप्त हुई। अतः विवशतावश अब सार्वजनिक क्षेत्र की बजाय निजी क्षेत्र को विकसित किये जाने को अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है।

जनकल्याण कार्यक्रमों में वृद्धि (IncrementinPublicWelfare): भारत में आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए जनकल्याण कार्यक्रमों में निरन्तर वृद्धि की है ताकि गरीबों का आर्थिक स्तर ऊपर उठे। इस दिशा में समाज कल्याण विभाग द्वारा सहायता, अनुदान, बेकारी भत्ता, चिकित्सा सुविधायें, न्यायिक सहायता, निःशुल्क शिक्षा, 20- सूत्रीय कार्यक्रम द्वारा आय एवं रोजगार में वृद्धि महत्वपूर्ण है , किन्तु कुल व्यय जनसंख्या को देखते हुए नगण्य है, अतः स्थिति में विशेषकर सुधार नहीं हुआ है।

लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन (PromotionofSmallandCottageIndustries): पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने की नीति को अपनाया गया है। इन उद्योगों को प्रोत्साहन देने से आय तथा सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने में सहायता प्राप्त होगी , सम्भावना है। इस नीति के फलस्वरूप बेरोजगार मजदूरों को रोजगार दिया जा सकेगा। इस प्रकार निर्धन लोगों की आय में वृद्धि होगी। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक असमानता कम होगी। कुटीर उद्योगों के विकास के फलस्वरूप निम्न आय वाले लोगों को अपनी आय में वृद्धि करने के अवसर प्राप्त हो सकेंगें।

जनसंख्या नियन्त्रण (PopulationControl): गरीबों के अधिक बच्चे और कम आय आर्थिक विषमता को बढ़ाते हैं, अतः जनसंख्या पर नियंत्रण के लिए देश में पिछले 56 वर्षों में 50,100 करोड़ रू व्यय किया गया है और उसमें नसबन्दी, लूप तथा परिवार नियोजन पद्धतियों से लगभग 30 करोड़ बच्चों का जन्म रोका गया है। सातवीं योजना में भी परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया गया। भारत में जन्मदर - घटकर सातवीं योजना के अन्त तक 30 प्रति हजार हो गई और आठवीं योजना में 23 से 25 प्रति हजार करने का लक्ष्य था किन्तु 2005 में जन्म दर-23.8 प्रति हजार रही।

एकाधिकारी तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक व्यवहार पर नियंत्रण (MonopoliesandRestrictiveTradePracticesAct): शहरी सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए

सन् 1969 में एकाधिकार तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक अधिनियम (MonopoliesandRestrictiveTradePracticesAct 1969) पास किया गया है । इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना है। सरकार ने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए औद्योगिक लाइसेंस की नीति को भी अपनाया है। औद्योगिक लाइसेंस की नीति के द्वारा औद्योगिक तथा व्यावसायिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को कम करने के प्रयत्न किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में हजारी समिति , दत्त समिति आदि की रिपोर्टों से ज्ञात होता है, ये सभी उपाय अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके हैं।

मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण (InflationControl): गरीबों को महंगाई की मार से बचाने तथा मुद्रास्फीति द्वारा साधनों का - हस्तान्तरण गरीबों से अमीरों के हित में रोकने के लिए हीनार्थ प्रबन्ध एवं फिजूलखर्ची पर नियंत्रण किया है। उत्पादक विनियोग को बढ़ावा दिया गया है। आवश्यकता की वस्तुओं के लिए गल्ले की 4.6 लाख दुकानें खोली गई हैं। अधिकतम मूल्यों पर नियन्त्रण रखा गया है । मुनाफाखोरी एवं चोरबाजारी को नियन्त्रित किया गया है। गरीबों को सस्ती गल्ले की दुकानों से आधी दर पर खाद्यान्न बेचने की व्यवस्था की जा रही है।

रोजगार तथा मजदूरी नीतियां (EmploymentandWagePolicies): देश की बेरोजगार जनता को रोजगार प्रदान करके भी आय की असमानता को कम किया जा सकता है। पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार के अवसर अधिक से अधिक बढ़ाने पर जोर दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में अनेक विशेष योजनाओं जैसे छोटे किसानों के विकास की एजेन्सी , सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक एजेन्सी (M.F.A.L.A.), सूखा क्षेत्र कार्यक्रम, काम के बदले अनाज आदि को लागू किया गया था। पांचवी योजना के अन्त में देश में रोजगार के अवसर अधिक बढ़ाने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा छठी योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। सातवीं योजना में जवाहर रोजगार योजना आरम्भ की गई थी। देश में रोजगार कार्यालयों की संख्या में भी काफी वृद्धि की गई है। परन्तु इन योजनाओं का आय तथा सम्पत्ति के वितरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। अभी हाल ही में सरकार द्वारा आर्थिक असमानता कम करने हेतु पूर्व में घोषित कार्यक्रमों के स्थान पर नवीन कार्यक्रमों की घोषणा की है। इन कार्यक्रमों में प्रमुख सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक सुधार():प्रदर्शनात्मक प्रभाव (Demonstration Effect) से प्रेरित होकर गरीब लोग जब धनिकों जैसी फिजूलखर्ची करें तो आर्थिक विषमता में वृद्धि होती है। अतः सरकार ने मृत्यु , विवाह तथा दहेज की रोक के लिए, भोज एवं विवाहोत्सवों के भारी व्यय पर रोक लगा रखी है। बाल अधिनियम पारित किये हैं , पर प्रभावी क्रियान्वयन नहीं हो पाया है।

'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों का क्रियान्वन ():इस कार्यक्रम के अन्तर्गत समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P.), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (N.R.E.P.), ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारण्टी योजना (R.L.G.E.P.) तथा 20-सूत्रीय कार्यक्रम लागू करके देश में लगभग 4.5 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाया है जबकि सातवीं योजना में लगभग 6 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का लक्ष्य था। जवाहर रोजगार योजना से भी गरीबी मिटाने का प्रयास चालू है।

कीमत तथा वितरण नीतियां (Price and Delivery Policies):आय की असमानता को कम करने के लिए कीमत तथा वितरण नीतियों को भी अपनाया गया है। उनका उद्देश्य समाज के निर्धन वर्ग को सहायता

देना है। आवश्यकता की कई वस्तुओं जैसे चीनी , कपड़ा, कागज आदि के लिए सरकार ने दोहरी नीति अपनाई है। इसके फलस्वरूप निर्धन वर्ग को सम्पन्न वर्ग की तुलना में वस्तुएं सस्ती प्राप्त होती हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा निर्धन वर्ग को आवश्कताओं की वस्तुएं कम कीमत पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। परन्तु इस उपाय का आय तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर करने पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में आर्थिक विषमता को कम करने के प्रयास किये जा रहे हैं ,पर देश में प्रजातान्त्रिक मित्रित अर्थव्यवस्था में काला धन , भ्रष्टाचार, भाईभतीजावाद, रिश्वतखोरी, प्रशासनिक अकुशलता, गरीबी निवारण की असफलता तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में आर्थिक विषमता घटने के बजाय बढ़ती जा रही है। मुद्रास्फीति ने आय का वितरण अमीरों के पक्ष - में कर आर्थिक विषमताओं को और बढ़ाया है और आर्थिक विषमता की खाई निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। अतः इन सामाजिक बुराईयों एवं आर्थिक विषमता के कारणों को जब तक प्रभावी ढंग से नियन्त्रित नहीं किया जाता , आर्थिक समानता की कल्पना एक राजनीतिक नारा बनकर रह जायेगी।

8.4 काला धन (Black Money)

8.4.1 काले धन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र (Definition, Sources and Areas of Black money)

काले धन की समस्या में सौदों का आदान प्रदान छुपकर किया जाता है ताकि कानून के दायरे से ये सौदे बाहर रहें और इनमें होने वाली आय से सरकार को जो अंश मिलना चाहिए उससे वंचित हो जाती है , इसी को काले धन की समस्या कहते है। इसके विपरीत श्वेत धन वो धन होता है जिसका लेन देन खुले रूप से होता है ताकि कानूनी तौर पर जो अंश सरकार को प्राप्त होना है वह उसको मिल जाये। काले धन की समस्या के लिए कुछ बातें जिम्मेदार है। काला धन एक निश्चित क्षेत्र में उत्पन्न होता है और उसको चोरी छिपे ही खर्च किया जाता है। काले धन के इस क्षेत्र को समानान्तर अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है , क्योंकि यह श्वेत धन के साथ साथ चलती है। इसका कुप्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर कितना पड़ता है उसको उसी समय समझा जा सकता है जब हम ये जाने कि देश में काला धन कितनी मात्रा में है। जब काला धन श्वेत धन के साथ साथ चलता है और इसकी मात्रा बढ़ती जाती है तो इससे देश को अत्यधिक हानि होती है और इस प्रकार काले धन को रखने वाले सरकारी निर्णय को भी प्रभावित करने लगते है। अतः ऐसे कदम उठाये जाने चाहिए कि जिससे इस प्रकार के प्रभाव को जहां तक संभव हो समाप्त किया जा सके। हमें सह समझना चाहिए कि इस समस्या से देश में वित्तीय स्रोतों की कमी आ जाती है और विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है।
दूसरे इससे समाज के विभिन्न वर्गो में आय विषमता बढ़ने के कारण समाज के विभिन्न वर्गो में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसके कारण कुछ असामाजिक तत्व देश के धन के एक बड़े भाग को अनुचित रूप से हथिया कर बैठ जाते है।

काला धन की परिभाषा (Meaning of Black Money)

वे धन जिस पर कर न चुकाया गया हो या अवैधानिक तरिके से आय सृजित की गई हो , जिसका खुलासा न किया जा सके या आयकर के अंतर्गत घोषित सम्पत्ति से अधिक सम्पत्ति को कालाधन कहते है। भारत कालाधन की मार से त्रस्त है , कालाधन के व्यवस्थित करने के उपाय होने के कारण भ्रष्टचार को बढ़ावा मिलता है और भ्रष्टाचार के कारण कालाधन बढ़ता है। कालेधन का अर्थव्यवस्था में प्रयोग से ही मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने

के सरकार के राजकोषीय एवं आरबीआई की मौद्रिक नीति निष्प्रभावी हो जाती है , जिससे अर्थव्यवस्था का सही दिशा में विकास कर पाना तथा निर्धनों की स्थिति में सुधार नहीं हो पाता है।

काला धन, काली आय अथवा छिपाई हुई आय का प्रयोग उस आय अथवा धन के लिए किया जाता है जिसको कानून की नजर से बचाकर रखा जाता है। इसको चुरा छिपा कर रखा जाता है तथा इस पर कर नहीं दिया जाता। अतः इसका विकास तेजी से होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि इस प्रकार श्वेत अर्थव्यवस्था के साथ साथ समानान्तर अर्थव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

काले धन का उदय द्वितीय युद्ध काल में हुआ जबकि बाजार में वस्तुओं की कमी हो गई थी और व्यापारियों ने वस्तुओं को अधिक दाम पर बेचने के लिए उसका संग्रह करना शुरू कर दिया। दूसरा वस्तु आम आदमी को प्राप्त नहीं होती थी पर वहीं वस्तु अत्यधिक दाम पर चोरी छिपे धनी वर्ग को बेची जाती थी। इस प्रकार से प्राप्त आय को व्यापारियों ने चोरी छिपे रखना शुरू कर दिया ताकि वे कानून की नजर से दूर रहें और उस पर किसी प्रकार के कर के भुगतान से बचा जा सके।

कालेधन की उत्पत्ति के स्रोत- काला धन तीन प्रकार से उत्पन्न होता है।

1.कर वंचन

2.कर न देना

3.श्वेत धन का चोरी छिपे इस्तेमाल।

इन तीनों ही से कर योग्य आय को छिपाया जाता है और सरकार को कर से वंचित रखा जाता है। धन सरकार को न मिलकर गलत तरीके के व्यापारियों के हाथ में जाता है , जो उसका अनुचित प्रयोग करते है तथा सरकार पर गलत असर डाल सकते है। इस प्रकार का लाभ कभी साथ बड़े बड़े सरकारी अधिकारी भी ले भागते है। अर्थात वे सरकारी संगठनों अथवा उद्योगों के धन को चुरा छिपाकर अपने कब्जे में कर लेते है।

कर वंचन (Tax Evasion)

कर वंचन का अर्थ यह है कि इसके द्वारा कर देने वाला खातों में हेर-फेर करके कर कम देता है या कर देने से बच जाता है। कर वंचन के अनेक तरीके हो सकते है, जैसे बही खाते में हेर-फेर करना अथवा कई प्रकार के बही खाते रखना अथवा कृत्रिम नाम से खाते खोलना जिसे बेनामी खाता कहते है। इसी प्रकार ठेके अथवा व्यापार कृत्रिम नाम से करना, व्यापारिक लेन देन को खाते में न दिखाना, सम्पत्ति का कम मूल्य आंकना तथा विदेशी विनियम के साथ हेर-फेर करना। इस प्रकार व्यापारी तथा काले धन का धंधा करने वाले समाज तथा सरकार को धोखा देते है। जिसके लिए वे एक साथ कई खाते विभिन्न बैंको में खोलते हैं ताकि आयकर अधिकारी को उसकी सही आय का पता न लग सके। हमारी बैंकिंग पद्धति कुछ इस प्रकार है , कि हम खाता खोलने वालों के बारे में पूरी जानकारी नहीं प्राप्त करते। विभिन्न बैंकों में प्रतिस्पर्धा के कारण भी ऐसा होता है कि किसी पार्टी के बारे में संदेह होने पर भी बैंक चुप्पी साध लेते है अथवा पार्टी इतनी प्रभाव शाली होती है कि वह उसके बारे में कुछ पूछताछ तो करता नहीं और यदि करता भी है तो उसे सही बात का पता नहीं चलता। कभी- कभी ठेके विभिन्न नामों से लेकर ठेकेदार आयकर बचा जाता है। इसी प्रकार सम्पत्ति का मूल्य कम दिखाकर आयकर अधिकारियों को धोखा दिया जाता है। कभी कभी जमीन तथा मकान की बिक्री का एक ही भाग श्वेत धन के रूप में दिखाया जाता है और शेष चोरी छिपे दिया जाता है। उपर्युक्त केवल कुछ उदाहरण ही कर वंचन है।

कर न देना (Do Not Pay Tax)

इसका अर्थ ये है कि व्यापारी तथा सरकारी कर्मचारी कानून के अन्तर्गत अपनी आय को इस प्रकार दिखाता है कि उस पर या तो बहुत थोड़ा कर पड़ता है अथवा कर से वो पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यहां पर व्यापारी आयकर कानून की कमियों से फायदा उठाता है अतः उसे प्रायः गैर कानूनी या अनैतिक नहीं समझा जाता।

इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से है , जैसे धार्मिक ट्रस्ट खोलना , पति-पत्नि की आय को एक साथ न दिखाना। उपहार कर, मृत्यु कर इत्यादि से बचना। वैसे तो समाज में गरीबों के लिए , यतिमों के लिए , असहाय औरतों तथा बच्चों के लिए या धर्म कर्म के लिए धन व्यय करना , बहुत अच्छा माना गया है परन्तु अभाग्यवश आजकल इस प्रकार की संस्थायें चलाने के पीछे समाज सेवा का उद्देश्य उतना नहीं है जितना कि सरकार तथा समाज को धोखा देना। समाज के ठेकेदार तथा धर्मात्मा इसका प्रयोग कर से बचने के लिए कर रहे है। कभी कभी कर से बचने के लिए निजि कम्पनियां बनाई जाती है जिससे बीबी बच्चे तथा दूसरे परिवार के लोग , सदस्य या अंश धारक बना दिये जाते हैं। इस प्रकार के बहुत से कार्य करके व्यक्ति कर से बच जाता है।

श्वेत धन का चोरी छिपे प्रयोग(Stolen Use of White Money)

यहां पर हम ये देखेंगे कि किस प्रकार से जब बड़े बड़े ठेके दिये जाते है तो उसमें अत्यधिक भ्रष्टाचार छिपा रहता है जैसे ठेका सही दाम पर न देना , अत्यधिक कमीशन लेना। अतः श्वेत धन का प्रयोग सरकारी अधिकारियों को देकर ठेकेदार ठेके अथवा खाते के मूल्य बढ़ा देता है इससे सरकार को नुकसान होता है और सरकारी अधिकारी तथा ठेकेदार को लाभ होता है। हम सब जानते है कि ये पद्धति अत्यधिक प्रचलित है पर इसको रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया जा रहा है। इसी में सामान की तस्करी तथा सामान का संग्रह व चोर बाजारी भी शामिल है। निम्नलिखित कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनके द्वारा काले धन का जन्म होता है।

मूल्यवान धातुओं तथा विलासिता की वस्तुओं की तस्करी,

आम उपभोग की वस्तुओं का संग्रह,

सट्टा मुनाफाखोरी तथा काला बाजार पद्धति,

रिश्वत तथा कमीशन के द्वारा,

शहरी क्षेत्रों में चल तथा अचल सम्पत्ति में विनियोग,

बेनामी खाते तथा बेनामी व्यापार,

धार्मिक तथा सामाजिक सेवा ट्रस्ट,

धनी वर्ग का विलासितापूर्ण रहन सहन।

8.4.2 काले धन का अनुमान (Estimation of Black Money)

भारत वर्ष में कितना काला धन है इसका केवल एक ही अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि इसकी सही मात्रा को जानना सरल नहीं। काले धन का लेन देन चोरी छिपे होता है अतः इसे सही तरीके से आंकना संभव नहीं। काले धन को सफेद में परिवर्तित किया जाता है और सफेद को फिर काले में परिवर्तित कर लिया जाता है। कभी कभी तो केवल वस्तु विनियम से ही लेन देन हो जाता है। ऐसा इसलिए सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनका पूरी तरह से मौद्रीकरण नहीं है और न कच्चे माल के उत्पादन से अन्तिम उत्पादन तक की विभिन्न अवस्थाओं को समन्वित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार हमें मुख्य रूप से ये समझना है कि काले धन का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर किस प्रकार पड़ता है ? भारत में जहां प्रायः आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो जाता है वहां इसके महत्व को आसानी से समझा जा सकता है।

1. अंतर्राष्ट्रीय निगरानी संस्था ग्लोबल फाइनेंशियल इंटीग्रिटी के ताजा अध्ययन के अनुसार, 1948 से 2008 के बीच भारत से 462 अरब डॉलर की रकम काले धन के रूप में विदेश ले जाई गई। यह रकम 2008 के अंत में

भारत के सकल घरेलू उत्पादन का करीब 16.6 प्रतिशत थी और 12 नवम्बर 2010 को भारत के करीब 300 अरब डॉलर के कुल विदेशी मुद्रा भंडार के डेढ़ गुना से ज्यादा है।

2. मैलकौम अधिशिसय्या का अनुमानः इसके अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्य पर यदि लिया जाये तो इसका लगभग 40 प्रतिशत काले धन के रूप में है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक सर्वेक्षण के अनुसार काला धन वर्तमान मूल्य पर राष्ट्रीय उत्पादन का 50 प्रतिशत है।

4. कोल्डर के अनुसार कर वंचन की मात्रा 1956-57 में लगभग 200-300 करोड़ थी।

5. वांचू कमैटो के अनुसार , (1971 रिपोर्ट) 1961-62 में इसकी मात्रा 700 करोड़ थी , 1965-66 में 1000 करोड़ तथा 1968-69 में 1400 करोड़ थी।

6. डॉ रगनेकी के अनुसार, 1961-62 में इसकी मात्रा 1150 करोड़, 1965-66 में 2350 करोड़, तथा

7. 1968-69 में 2833 करोड़ और 1969-70 में 3080 करोड़ थी।

8. सूरज बी. गुप्ता के अनुमान के अनुसार वर्ष 1987-88 में काली मुद्रा की मात्रा 1,49,297 करोड़ रुपये थी जो जीएनपी का 50.7 प्रतिशत थी वित्त पर संसदीय स्टेन्डिग कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1994-95 में चालू मूल्यों पर काली मुद्रा की मात्रा 11,00,000 करोड़ थी जबकि इस वर्ष जीएनपी 843294 करोड़ थी इस प्रकार काली मुद्रा जीएनपी का 130 प्रतिशत थी अर्थात जीएनपी से भी अधिक हमारे देश में काली मुद्रा प्रचलित थी। उपर्युक्त अनुमानों से यह विदित है कि देश में काले धन की समस्या अत्यंत विकराल है।

द ड्राइवर्स एंड डायनामिक्स ऑफ इल्लिसिट फाइनेंशियल फ्लोज फ्रॉम इंडिया (1948-2008) नामक इस अध्ययन को बड़े पैमाने पर अंजाम दिया गया है और इसमें 61 वर्षों की अवधि से जुड़ें तमाम कारकों और रूझानों पर गौर किया गया। जीएफआई अमेरिका की गैर सरकारी संस्था है , जो काले धन के खिलाफ विरोध कर रही है। भारत पर इस समय करीब 230 अरब डॉलर विदेशी कर्ज है। इतना काला धन भारतीय इकनॉमी में जायज तरीके से रहता तो देश न केवल अपना कर्ज चुका पाता , बल्कि बाकी रकम से गरीबी उन्मूलन और आर्थिक विकास कार्यक्रमों को रफ्तार दे पाता। काले धन के बारे में यह जानकारी भारत में अपनाए गए उदारीकरण के मॉडल की चमक को कुछ फीकी है। अध्ययन के अनुसार , देश से बाहर जाने वाले कुल काले धन का करीब 50 प्रतिशत हिस्सा साल 1991 के बाद ले जाया गया। जब भारत मंे आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत हुई।

8.4.3 काले धन पर सरकार की पहल (Government Initiative on Black Money)

करीब 25 साल बाद सरकार को एक बार फिर देश में काले धन का पता लगाने की सुध आई है। सरकार ने इस बारे में राष्ट्रीय संस्थानों से प्रस्ताव मांगे है। वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने चार संस्थाओं से कहा कि वे देश में काले धन के आंकड़े और उनकी प्रकृति का पता लगाने के बारे में सुझाव दें। राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान (N.IP.F.P.),राष्ट्रीय सांख्यिकी संस्थान (I.S.I.), नेशनल काउंसिल फॉर एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च(N.C.E.R.) तथा राष्ट्रीय वित्त प्रबंधन संस्थान (N.I.F.M.) को अपने प्रस्ताव सौपने को कहा गया है। केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (C.B.D.T.), केंद्रीय उत्पादन एवं सीमा शुल्क बोर्ड (C.B.E.C.), प्रवर्तन निदेशालय

और आर्थिक मामलों के विभाग और निर्यातकों के संगठन फियो के अधिकारी की भी मदद ली जाएगी। गृह मंत्रालय विदेशी मंत्रालय कैबिनेट सचिवालय और सांख्यिकी व कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के अधिकारियों का भी सहयोग लिया जाएगा। संसद की वित्त पर एक स्थाई समिति ने पहले भी इस तरह का अध्ययन कराने का प्रस्ताव किया था। करीब 50 प्रतिशत काला धन वर्ष 1991 के बाद देश से बाहर गया है। जबकि 2000-2008 के बीच इसमें करीब एक तिहाई राशि देश से बाहर भेजी गई है। सर्वेक्षण के जरिए यह पता लगाया जाएगा कि देश में कितना काला धन है और क्या इस धन को देश या देश के बाहर जमा किया गया है। अध्ययन में यह भी पता लगाया जाएगा कि अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र में काले धन का सृजन सबसे ज्यादा हो रहा है और इससे देश की राष्ट्रीय सुरक्षा को क्या खतरा है।

8.4.4 काले धन को रोकने के उपाय (Measures to Stop Black Money)

काले धन को रोकने के दो उपाय हैं

(1) प्रथम विधि के अनुसार काले धन रखने वाले लोगों को प्रोत्साहन देकर काले धन को बाहर निकालना। इसे नरम पद्धति भी कहा जा सकता है।

(2) दूसरी पद्धति के अनुसार कानून के द्वारा सख्ती करके काले धन को बाहर निकालना इसे दृढ़ पद्धति भी कहा जा सकता है।

1. नरम पद्धति- इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है
2. स्वेच्छा से काले धन को बताने की योजना,
3. धारक बॉडस द्वारा काले धन को बाहर निकालना,
4. काले धन को सही दिश में प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना,
5. समझौते से काले धन को बाहर निकालना।

स्वेच्छा से काले धन की मात्रा को बताने की योजना काफी उत्साह वर्धक सिद्ध हुई है क्योंकि इसमें यह नहीं पूछा जाता कि व्यक्ति काला धन कहां से लाया है , अभाग्यवश इसमें अन्त में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा ही धारक बॉड योजना में है। इसमें भी कोई सफलता नहीं मिली। इसके असफल होने के मुख्य कारण ये हो सकते है कि पहले तो इसमें ब्याज की दर बहुत कम है। दूसरे लोगों को डर था कि इस प्रकार उन्हें अन्ततः कर के जाल में फंसा लिया जायेगा। इसी प्रकार काले धन को अन्य सामाजिक रूप से लाभदायक स्रोत जैसे सड़क तथा पुल बनाना आदि की योजना भी असफल हो गई क्योंकि इसमें लाभ कम और जोखिम अधिक था , समझौता योजना भी सफल न हो सकी क्योंकि बड़े बड़े कर दाता अन्ततः कर के जाल में नहीं आना चाहते।

दृढ़ उपाय (Strong Measures) इस प्रकार के उपाय मुख्य रूप से काल्डर ने सुझाये थे जैसे, एक न्यूनतम आय के ऊपर वाले कर दाताओं के खातों की अनिवार्य जांच करना। प्रत्येक कर दाता के लिए स्थायी खाता संख्या देना, कर अधिकारियों की शक्ति को बढ़ाना तथा बही खातों के निरीक्षण में अथवा उनके जब्त कर लेने में पूर्ण छूट देना तथा उन व्यक्तियों पर जो दोषी पाये जायें जुर्माना लगाना और उनका आम जनता में प्रचार करके अन्य लोगों को डराना इत्यादि। इसी प्रकार की सिफारिश बांचू कमैटी ने की थी। इन दोनों के ही अनुसार एक निश्चित आय के ऊपर वाले करदाताओं के खातों का अनिवार्य रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिए। अथवा ये निरीक्षण तथा आडिट चार्टड एकाउन्टेन्ट के द्वारा किया जाना चाहिए इस संम्बध में न्यूनतम आय सीमा एक लाख से पांच लाख तक सुझाई गई थी। इस प्रकार के प्रयास किये गये थे कि चार्टड एकाउन्टेन्ट इस कार्य में मदद करेगें उन पर बड़े बड़े करदाताओं का प्रभाव न पड़े और इसी लिए सरकार ने उनको दिये जाने वाले पारिश्रमिक का एक भाग स्वंय वहन करने की घोषणा की। काल्डार का ये विचार था कि भारी जुर्माने और जनता में

बदनामी का असर करदाताओं पर अत्यधिक पड़ेगा। और कर की चोरी करने वाले कर देने को तैयार हो जायेंगे। परन्तु इसके लिए कर अधिकारियों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए। उनमें कर की चोरी करने वालों पर छापा मारने की क्षमता तथा हिम्मत होनी चाहिए। साथ ही साथ उनमें एक सीमा तक ईमानदारी भी होनी चाहिए , इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इस कार्य को ईमानदारी से किया जाये तो पर्याप्त काला धन बाहर लाया जा सकता है और समस्या का समाधान किया जा सकता है। परन्तु जैसा कि हम जानते है कि वर्तमान परिस्थितियों में जहां कर अधिकारियों की कार्य क्षमता तथा ईमानदारी का स्तर नीचा है वहां पूर्ण सफलता मिलने में कठिनाई होती है। अभाग्यवश राजनीतिज्ञ भी इसके भागी हो जाते है और इस प्रकार वे भी इस योजना के असफल होने के जिम्मेदार हैं। शायद लोक आयुक्त की नियुक्ति से तथा हर सरकारी अधिकारी की आय व सम्पत्ति का ब्यौरा लेकर इस क्षेत्र में कुछ किया जा सकता है।

कालाधन (बजट 2012-2013)

पिछले वर्ष काले धन के सृजन और उसके चलन की बुराई तथा भारत के बाहर इसके गैर कानूनी अंतरण की समस्या का सामना करने के लिए एक मंच आयामी कार्यनीति को रेखांकित किया गया था। सरकार ने इस कार्यनीति को अमल में लाने के लिए सक्रिय कदम उठाए है। इसके फलस्वरूपः

1. 82 दोहरे कराधान परिहार करार (डीटीएए) और 17 कर सूचना आदान प्रदान करारों (टीआईई) को अंतिम रूप दिया गया है और भारतीयों द्वारा विदेशों में धारित बैंक खातों और परिसंपत्तियों के संबन्ध में सूचना प्राप्त होना शुरू हो चुकी है। कुछ मामलों में अभियोजन शुरू किया जाएगा।

2. संधि किए गये देशों के साथ कर सूचना के शीघ्र आदान-प्रदान हेतु समर्पित सूचना आदान-प्रदान प्रकोष्ठ सीबीडीटी में कार्य कर रहा है।

3. भारत कर मामलों में पारस्परिक प्रशासनिक सहायता संबंधी बहुपक्षीय सम्मेलन का 33वां हस्ताक्षरकर्ता देश बन गया है।

4. सीबीडीटी में आयकर अपराधिक अन्वेषण निदेशालय की स्थापना की गई है। ससंद के वर्तमान सत्र में काले धन पर सदन में एक श्वेत पत्र प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है।

सरकारी अधिप्राप्ति कानून सरकार एक सरकारी अधिप्राप्ति कानून को अधिनियमित करने के प्रति वचनबद्ध है ताकि सरकारी खरीद में विश्वास बढ़ाया जा सके और इस प्रक्रिया में पारदर्शिता और कार्यदक्षता सुनिश्चित की जा सके। इस सम्बन्ध में संसद के बजट सत्र में विधेयक लाया जाएगा। भ्रष्टाचार रोधी ढांचा मजबूत करने के लिए निम्नलिखित विधायी उपाय अधिनियम के विभिन्न चरणों में है।

1. धन शोधन रोकथाम (संशोधन) विधेयक , 2011 संसद में प्रस्तुत किया गया है , ताकि इस अधिनियम के कतिपय उपबंध वैश्विक मानकों के अनुरूप हों।

2. बेनामी लेन-देन (निषेध) विधेयक , 2011 की वित्त संबंधी स्थायी समिति द्वारा जांच की जा रही है। यह बेनामी लेन-देन (निषेध)अधिनियम, 1988 का स्थान लेगा।

3. राष्ट्रीय स्वापक और मनोसुख सामाग्री (संशोधन) विधेयक , 2011 संसद में प्रस्तुत किया गया है , ताकि स्वापक दवा तथा मनोसुख की सामाग्री संबंधी राष्ट्रीय नीति को अमल में लाने के कानूनी उपबंधों को मजबूती प्रदान की जा सके।

8.4.5 काले धन की वृद्धि के प्रभाव (Effects of Increase of Black Money)

1. काले धन से होने वाले वित्तीय प्रभाव (The Financial Impact of Black Money)-

ये होते है कि विभिन्न राज्यों या सरकार की आय घट जाती है और इनके विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र जिसका महत्व अत्यधिक है उसके लिए भी धनाभाव हो जाता है। इस प्रकार देश महत्वपूर्ण सेवा योजना को पूरा नहीं कर पाता अथवा कुछ आवश्यक पूँजीगत वस्तुयें प्राप्त नहीं करता। इसका कुप्रभाव आधुनिक तकनीक पर भी पड़ता है। एक प्रकार से हम इसी कारण दूसरे देशों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेने के लिए बाध्य हो जाते है ताकि आवश्यक विनियोगों के लिए धन की कमी को पूरा किया जा सके। अभाग्यवश हमारे निर्यात इतने नहीं है कि हम विदेशी ऋण के भार को आसानी से वहन कर सकें। अतः विदेशी ऋण का भार हमारी अर्थव्यवस्था पर दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, और ऋण जाल की समस्या उत्पन्न हो गई है। इस कमी को पूरा करने के लिए आधुनिक तकनीक के आयात के लिए छूट देनी पड़ी। इसका भी प्रभाव देश में बहुत अच्छा नहीं पड़ा। और इस संम्बध में काफी वाद विवाद उत्पन्न हो गया कि बाहरी तकनीक को हम किस हद तक बढ़ावा दें। एक और प्रभाव इसका ये हुआ कि हमारे सार्वजनिक उद्योगों की लागत बढ़ गई है और हमारी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति घट गई है।

कर चोरी के कारण सरकार को आंतरिक प्रशासन के लिए भी धनाभाव हो जाता है जिसके कारण सरकार को आंतरिक ऋण लेना पड़ता है। और इस प्रकार इससे उत्पन्न होने वाली कई प्रकार की बुराइयों को झेलना पड़ता है जैसे जब इस धन का प्रयोग अनुत्पादक कार्यो के लिए किया जाता है तो देश में मुद्रा स्फीति की दर बढ़ने लगती है। यदि एक प्रकार से देखा जाये तो मुद्रा स्फीति का एक प्रमुख कारण काला धन है।

2. नियोजन की प्राथमिकता पर प्रभाव (Effect of Priority of Planning)

हमारे नियोजन का प्रमुख उद्देश्य आय विषमता को दूर करके गरीबी तथा बेकारी की समस्या को सुलझाना है। इसके लिए सरकार को पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है ताकि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन किया जाये और नये नये रोजगार के स्रोत खोले जायें। परन्तु जब देश में धन का एक बड़ा भाग चोरी छिपे कुछ लोगों के हाथ में हैं जो उसे अपनी व्यक्तिगत विलासिता पर व्यय करते है तो निश्चिय ही राष्ट्र के पास अपनी उपर्युक्त योजनाओं के लिए धनाभाव हो जाता है। काले धन से धनाभाव बढ़ता है तथा मुद्रा स्फीति भी। कुछ लोग बड़े-बड़े बंगलों में विलासिता की जिंदगी गुजारते है जबकि करोड़ों लोग आवश्यक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।

3. राजनैतिक ढांचे में भ्रष्टाचार (Corruption in Political Structure):

काले धन के कारण देश के राजनैतिक ढ़ाचे में भी भ्रष्टाचार उत्पन्न हो जाता है क्योंकि ये बड़े-बड़े धनवान राजनीतिक को तो ख़रीद लेते है या उन पर अत्यधिक प्रभाव बना लेते है। दुर्भाग्यवश हमारे राजनीतिक लोग अपनी ईमानदारी के स्तर को एक निश्चित स्तर तक बनाये रखने में असफल रहे है। यही नहीं ऐसा भी देखा गया है कि कभी कभी तो कानून के रखवालों को भी इनके सामने झुकना पड़ता है। पैसे में बड़ी शक्ति है और ये लोग इसे समझते है कि इससे किसी को भी अपने वश में किया जा सकता है। इस प्रकार काले धन के प्रभाव अत्यंत विनाशकारी है। अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के अनुमान के मुताबिक , मनी लांउडरिंग कारोबार दुनिया के कुल जीडीपी के लगभग 2 से 5 प्रतिशत (हर साल 800 अरब डॉलर से 2 लाख करोड़ डॉलर के बीच) हो सकता है। भारत को हाल ही में फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स की सदस्यता दी गई है।

8.5 वित्तीय कार्रवाई कार्यदल (Financial Action Task Force)

बहुराष्ट्रीय 'फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स' एक अंतर्सरकारी संगठन है। 1978 में इसकी स्थापना विश्व के सात बड़े औद्योगिक देशों (जी- 7) ने मनी लांडरिंग और टेरर फाइनेंसिंग के खिलाफ लड़ाई के लिए नीतियां तैयार करने के उद्देश्य से की थी। एफएटीफ ने कहा कि जिन देशों से भारत संधि मजबूत करने के प्रयास कर रहा है , क्योंकि इन देशों के सहयोग के चलते हवाला ऑपरेटरों (कालाधन विदेश में भेजने और आतंकियों को धन देने वाले लोग) को पकड़ने में सरकार को बाधा आ रही है। 36 देशों का एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है। जो मनी लांड्रिग

और आतंकी संगठनों को फंडिंग रोकने के लिए बनाया गया है। मार्च 2010 में भारत को इसकी सदस्यता मिली है। भारत 4 साल तक पर्यवेक्षक रहने के बाद यह संस्था का पूर्ण सदस्य हो गया है। एफएटीएफ के 40.9 सिद्धांत है जो मनी लाउंडरिंग पर अंकुश लगाने के लिए पॉलिसी बनाने और उसे बढ़ावा देने की जिम्मेदारी उठाई है। इन सिद्धान्तों का पालन किसी वित्तीय सेवा देने वाले संस्थान के लिए जरूरत बन गई है। इसके अलावा एफएटीएफ, विश्व बैंक और आईएमएफ करेगा। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फत्फ की अनुशंसा को काफी महत्व दिया जाता है। नकली भारतीय नोट छापने के मामले में भारत अब पाकिस्तान को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर बेनकाब करेगा। यह मुद्दा भारत फत्फ (फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्से-एफएटीएफ) में उठाने के बाद आईएमएफ और विश्व बैंक में भी उठाएगा।

वित्तीय कार्रवाई कार्यदल की सदस्यता का महत्व (Importance of Membership of Financial Action Task Force) एफएटीएफ की सदस्यता से भारत को इंटरनैशनल फाइनेंस के प्लेटफॉर्म पर बड़ी शक्ति बनने की अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने में सहायता मिलेगी। इससे उसे आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए जरूरी इंफ्रास्ट्रक्चर तैयार करने, आतंकवादियों को मिलने वाले फंड का पता लगाने , मनी लाउडरिंग की जांच करने और आतंकवादियों को फंड मुहैया कराने वाले दोषियों का पता लगाने में सहायता मिलेगी। इससे भारत को मनी लाउंडरिंग और आतंकवादियों को फंडिग पर ताजा हालात की जानकारी मिलेगी। इससे वित्तीय व्यवस्था में संगठित आपराधिक समूहों की घुसपैठ या दुरूपयोग की आशंका को खत्म करते हुए अधिक पारदर्शी और स्थित वित्तीय व्यवस्था कायम करने में मदद मिलेगी। आर्थिक वृद्धि की तेज और टिकाऊ रफ्तार और व्यापक भौगोलिक फैलाव के चलते भारत के सामने मनी लाउंडरिंग और आतंकवादियों की फंडिंग के जोखिम संबंधी समस्याएं बढ़ी है। इसे देखते हुए भारत के लिए फत्फ की सदस्यता का महत्व काफी बढ़ गया है। भारत में मनी लाउंडरिंग का सबसे बड़ा स्रोत कई तरह की आपराधिक गतिविधियां है। इनमें वित्तीय जालसाजी , जाली नोटों का कारोबार, नशीले पदार्थ और मानव तस्करी और भ्रष्टचार शामिल है।

8.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है?
2. शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है?
3. भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के चार कारण बताइये?
4. भारत में आर्थिक विषमताओं असमानताओं को दूर करने के उपाय बताइये?
5. काले धन के अनुमान किन प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते है
6. काले धन का राज्य के आर्थिक स्रोतों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
7. काला धन देश में आय विषमताओं को बढ़ाता है ऐसा कहा जाता है। काला धन इसे किस प्रकार बढ़ता है?
8. फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स पर टिप्पणी लिखिए?

8.7सारांश(Summary)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था है। अर्थव्यवस्था को आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए इसलिए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना गया। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और

गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था असमानता के कारणों ,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

8.8 शब्दावली(Glossary)

उदारीकरण (Liberalization):अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रतिबन्ध से मुक्त करके अधिक प्रतियोगी बनाना है। आर्थिक उदारीकरण का अर्थ है आर्थिक संबन्धी निर्णय एवं व्यापार संबन्धी निर्णय की स्वतंत्रता उद्योगों को होगी।

निजीकरण (Privatization):निजीकरण एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सरकारी व सार्वजनिक उद्यमों के संचालन, स्वामित्व और नियंत्रण में निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से है।

भूमण्डलीकरण (Globalization):भूमण्डलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किए जाने से है।

आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth):प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को संवृद्धि कहते हैं।

आर्थिक विकास (Economic Development):सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं।

प्रिवेंशन ऑफ मनी लॉड्रिंग एक्ट (पीएमएलए) (Prevention of Money Laundering Act (P.M.L.A.)):यह कानून प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) को आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और उसकी सम्पत्ति को जब्त करने का अधिकार देता है।

8.9 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

8.10 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

MisraandPuri, IndianEconomy (2010) HimalayaPublishingHouse.

KapilaUma (2008-09), India'sEconomicDevelopmentSince 1947, AcademicFoundation.

KapilaUma (2008-09), IndianEconomy, AcademicFoundation.

दत्त, रूद्र एवं के सुन्दरम .एम.पी.(2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एसचन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।

लाल एस लाल के.एवं एस .एन. (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षणतथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

8.11 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

www.ibef.org/economy/agriculture.asp

www.economywatch.com/database/agriculture

business.gov.in/Indian_economy/agriculture

आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।

कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

योजना योजना आयोग (विभिन्न अंक), नई दिल्ली।

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. भारत में आर्थिक असमानता की समस्या का स्वरूप कैसा है ? इसे दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ का विश्लेषण कीजिए।
2. आर्थिक असमानता के कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
3. आर्थिक असमानता किसी भी समाज के लिए अभिशाप है। इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।
4. समानान्तर अर्थव्यवस्था का अर्थ बतायें ? भारत वर्ष के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में इसका महत्व क्यों अत्यधिक हैं?
5. काले धन के प्रमुख स्रोतों का उल्लेख कीजिए? उन क्षेत्रों को भी बताइयें जहां काला धन प्रचलित है?

इकाई 9- कृषि क्षेत्र एवं विकास
(Agricultural Sector and Development)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)
9.2 उद्देश्य (Objectives)
9.3 कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास (Agricultural Sector and Economic Development)
9.4 आर्थिक विकास (Economic Development)
9.5 आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका (Role of Agriculture in Economic Development)
9.6. कृषि: एक पद्दलित क्षेत्र (विकासशील देशों के सन्दर्भ में) (Agriculture: A Depressed Sector (In the Context of Developing Countries)
9.7कृषि क्षेत्र विकास बनाम औद्योगिक क्षेत्र विकास (Agricultural Sector Development Vs Industrial Sector Development)
9.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
9.9 सारांश(Summary)
9.10 शब्दावली(Glossary)
9.11 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)
9.12 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)
9.13 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)
9.14 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

9.1प्रस्तावना (Introduction)

इससे पूर्व के खण्ड के अध्ययन से आप संसाधन की आर्थिक विकास में भूमिका को जान गये है। इस इकाई में कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास की पूर्ण जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आप को आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप:-

अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भूमिका को समझ सकेंगे।

आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के महत्व की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।

विकासशील देशों के सन्दर्भ में कृषि के महत्व को समझ सकेगें।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास बनाम औद्योगिक विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए।

9.3 कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास (Agricultural Sector and Economic Development)

कृषि मानव सभ्यता के विकास के आरम्भ से ही लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन रही है। आज भी कृषि विश्व की अधिकांश जनंसख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्रोत है। कृषि प्रमुख व्यवसाय के साथ-साथ राष्ट्रीय आय का बड़ो स्रोत , रोजगार औद्योगिक विकास, वाणिज्य एवं विदेशी व्यापार का आधार है। कृषि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ तथा विकास की कुंजी है। कृषि विकास की पूर्णता के बाद ही विश्व के देश विकसित राष्ट्र के पथ पर अग्रसर होते है। अमेरिका , इंग्लैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान जैसे अनेक देशों के विास में कृषि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा तीव्र औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ़ व मजबूत आधार प्रदान किया। इसीलिए विकास के प्रत्येक चरण में कृषि विकास पर विचारकों ने पर्याप्त बल दिया है।

भूमि और कृषि प्राचीन आर्य संस्कृति के आधार स्तम्भ रहे है। भारतीय संस्कृति में पृथ्वी (भूमि) को माता के समान माना गया है। यहां कृषि कर्म को प्रथम , वाणिज्य को द्वितीय, सेवा कार्य को तृतीय तथा मांगने को चतुर्थ स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन यूनानी विचारकों ने भी कृषि व्यवसाय को विषेश महत्व प्रदान किया था। प्रसिद्ध विचारक अरस्तु कृषि व पशुपालन द्वारा ही द्रव्य उपार्जन को प्राकृतिक मानते थे। सुकरांत के प्रमुख शिष्य जीनोफन के कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया। यूनानी विचारकों की तरह ही रोमन विचारकों ने भी कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया। प्रसिद्ध रोमन विचारक सिसेरों , केटो, वारो तथा कोलूमेला आदि ने भी कृषि कार्य को ही महत्व प्रदान करते हुए समस्त प्राप्तियों को आधार माना है। परम्परावादी वाणिकवादी अर्थशास्त्रीयों ने भी खाद्यान्न में आत्मनिर्भर होने की बात कही और मत्स्य उद्योग के विस्तार पर बल दिया।

प्रकृतिवादियों ने भी अनेक ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिनके द्वारा कृषि की महत्ता और बढ़ गई। उनका विश्वास था कि केवल कृषि ही समाज की सम्पत्ति सृजन का आधार है। केने के अनुसार , कृषि राज्य की समस्त सम्पत्ति तथा समस्त नागरिकों के धन की स्रोत है , अतः कृषि का लाभप्रद होना सरकार एवं राष्ट्र के लिए अनुकूल बात होगी। केने का कहना है कि उद्योग तथा वाणिज्य दोनों कृषि के ही अधीन है। क्योंकि दोनों क्षेत्र कृषि क्षेत्र से ही कच्चामाल प्राप्त करते है। प्रकृतिवादियों का मानना था कि केवल 'कृषक-राष्ट्र'की सृदृढ़ व टिकाऊ साम्राज्य स्थापित कर सकता है।

परम्परावादी अर्थशास्त्री तथा अर्थशास्त्र के जनक एडमस्थित ने प्रकृतिवादियों की इस विचारधारा का खण्डन किया कि केवल कृषि ही उत्पादक है , फिर भी उन्होंने सम्पत्ति उत्पादन क्रिया में कृषि का मुख्य स्थान दिया। उन्होंने निर्माण के दूसरा व व्यापार को तीसरे स्थान पर रखा। मार्शल और कई अनेक अर्थशास्त्रीयों ने भी

कृषि के महत्व के स्वीकार किया। श्री युगो पापी के अनुसार ''कृषि आय में वृद्धि आर्थिक विकास की कुंजी है और यदि कोई राष्ट्र सर्वप्रथम उसे प्राप्त करने में असफल रहता है तो समस्त विकार-प्रक्रिया अवरूद्ध हो सकती है।"प्रो. लुइस, कोले, हूवर, वाईनर तथा किण्डलबर्जर जैसे अर्थशास्त्रीयों का मत है , कि विकास-प्रक्रिया में कृषि विकास को प्राथमिक स्थान दिया जाना चाहिए, क्योंकि घरेलू मांग की आपूर्ति, आत्मनिर्भरता एवं निर्यात-वृद्धि जैसे आधारभूत समस्याएं कृषिगत विकास से ही हल की जा सकती है। प्रो 0 शुल्टज के अनुसार कोई भी अल्प विकसित राष्ट्र खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता प्राप्त किये बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं कर सकता।

डेविस ने इस धारणा के विपरीत मत व्यक्त करते हुए कहा है कि ''कृषि कोई असाधारण रूप से मौलिक क्रिया नहीं है तथा किसी राष्ट्र की समृद्धि मुख्य रूप से अन्य घटकों जो कि कृषि कार्य करने के अतिरिक्त है , पर निर्भर करती है।'' यद्यपि कृषि के महत्व के सन्दर्भ में विभिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न मत दिये , परन्तु इस बात से सभी सहमत थे कि कृषि विकास के बिना अन्य क्षेत्रों को विकास असम्भव है। क्योंकि कृषि क्षेत्र द्वारा ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वस्तुओं ओर सेवाओं का प्रवाह होता है। कोई राष्ट्र आर्थिक विकास के किसी भी स्तर पर पहुँच जाये कृषि की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि क्षेत्र पर ही निर्भरता बनी रहती है।

9.4 आर्थिक विकास (Economic Development)

आज पूंजीवादी तथा समाजवादी समस्त अर्थव्यवस्थाओं का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था को समृद्धिशाली बनाते हुए आर्थिक विकास को गति प्रदान करना है। अल्पविकसित तथा विकासशील देश जहां अपनी सामान्य गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता तथा पिछड़ेपन से छुटकारा प्राप्त करना चाहते है और अपने उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम विदोहन कर उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रयासरत है , वहीं विकसित देश अपने विकास को निरन्तर गतिशील बनाए रखना चाहते हैं।

आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि कर अपनी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हुए देश में गरीबी और आर्थिक विषमता को समाप्त कर नागरिकों के जीवन स्तर से सुधार लाने का पयास करता है। आर्थिक विकास की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

मायर एवं बाल्डविन के अनुसार , ''आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।"

प्रो. लुईस के शब्दों में - आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन के वृद्धि से लगाया जाता है।

प्रो. यंगसन के विचारानुसार - आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।

विलियमसन एवं बट्रिक के अनुसार , ''आर्थिक विकास अथवा संवृद्धि से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें किसी देश अथवा क्षेत्र के निवासी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते हैं।"

प्रो. रोस्टोव के अनुसार, ''आर्थिक विकास एक तरफ पूँजी व कार्यशील शक्ति में वृद्धि की दरों के मध्य और दूसरी तरफ जनसंख्या वृद्धि की दर के मध्य एक ऐसा सम्बन्ध है जिससे कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होती है।"

क्राउज के शब्दों में , ''आर्थिक विकास किसी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया को बताता है। इस पक्रिया का केन्द्रीय उद्देश्य अर्थव्यवस्था के लिए प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का ऊँचा और बढ़ता स्तर प्राप्त करना होता है।"

डी. ब्राइट सिंह के अनुसार, ''यह (आर्थिक विकास) एक बहुआयामी घटना है जिसके अन्तर्गत केवल मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि ही शामिल नहीं होती बल्कि वास्तविक आदतें , शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अधिक आराम के साथ-साथ एक पूर्ण एवं सुखी जीवन का निर्माण करने वाले समस्त सामाजिक एवं आर्थिक सुधार भी सम्मिलित होते हैं।"

संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की एक रिपोर्ट के अनुसार , ''विकास, मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की उन्नति से भी सम्बन्धित होना चाहिए। इस तरह , विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तन भी शामिल होने चाहिए।"

उपरोक्त परिभाषाओं की मूल धारणाओं के अनुरूप आर्थिक विकास की एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है - ''आर्थिक विकास वह सतत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन होता है , जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर एवं दीर्घकालीन वृद्धि होती है , आर्थिक विषमता में कमी आती है , सामान्य जनता के जीवन स्तर एंव कल्याण में बढ़ोत्तरी होती है।"

किसी भी क्षेत्र विशेष के लिए कृषि विकास के लक्ष्य निर्धारित करने तथा कृषिगत विकास की रणनीति तैयार करने के लिए अर्थव्यवस्था में कृषि महत्व तथा उसके आर्थिक विकास के साथ सम्बन्ध में समझना विशेष महत्व रखता है। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका का अध्ययन करना उचित होगा।

9.5 आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका (Role of Agriculture in Economic Development)

कृषि सभी उद्योगों की जननी और मानव जीवन की पोषक रही है। यह सभी विज्ञानों और कलाओं की सिरमौर, सभ्यता का प्रतीक और प्रगति का सूचकांक मानी जाती है। इसे आर्थिक विकास की कुंजी भी कहा जाता है क्योंकि औद्योगीकरण मूलरूप से कृषिगत-विकास की ही देन है। प्रमाण के रूप में इंगलैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान में विकास ने तीव्र औद्योगीकरण के लिये सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। विशेष रूप से अल्प-विकास राष्ट्र, जिनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है अपने सीमित साधनों द्वारा आथिक विकास की ऊँची दर तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि वे अपने आधारभूत कृषि उद्योग को उन्नत न कर लें।

कृषि विकास के महत्व को स्पष्ट करते हुए कोल एवं हूबर ने कहा है कि ''सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कृषि विकास पहले होना चाहिए और यदि किसी क्षेत्र के अविकसित होने से दूसरे क्षेत्र के आर्थिक विकास में बाधा पड़ती है तो वह अविकसित क्षेत्र कृषि ही होगा जो अन्य क्षेत्रों के विकास को बाधिक करेगा।"कृषि की बढ़ती हुई उत्पादकता से औद्योगिक विकास में अनेक तरह से सफलता प्राप्त होती है।

कृषि विकास का अर्थ होता है कृषि आधारित वस्तुओं का अधिक उत्पादन , अधिक आय , अधिक रोजगार तथा कृषकों के लिए बेहतर जीवन-स्तर। जब कृषि का विकास होता है तब क्षेत्र विशेष की सम्पूर्ण आर्थिक प्रगति को त्वरित करता है।

यूरोपीय अर्थशास्त्री के अनुसार , "कृषि-आय में वृद्धि आर्थिक विकास की कुंजी है और यदि कोई राष्ट्र सर्वप्रथम उसे प्राप्त करने में असफल रहताहै तो समस्त विकास-प्रक्रिया अवरूद्ध हो सकती है।"

प्रमुख अर्थशास्त्री किण्डलवर्जर ने छः महत्वपूर्ण कारक बताए है जिनके द्वारा कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में मदद पहुँचाता है - प्रथम , यह उद्योगों को श्रमिक प्रदान करता है , द्वितीय, यह औद्योगिक उत्पादन के लिए कच्चा माल उत्पन्न करता है; तृतीय, यह उ़द्योगों तथा सरकार के लिए बचत प्रदान करता है, चतुर्थ, यह क्षेत्र कर प्रदान कर सकता है; पंचम, कृषि द्वारा विदेशी विनियम प्राप्त हो सकता है; षष्टम, यह मुख्य क्षेत्रों को महत्वपूर्ण पूंजीगत उपकरण और कच्चा माल प्रदान कर सकता है।

साइमन कुजनेट्स ने आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका को तीन भागों में बांटा है:

1.खाद्यानों एवं अन्य कृषिगत उत्पादों में वृद्धि द्वारा कृषि क्षेत्र उत्पादकीय भूमिका निभाता है।

2.यह अन्य क्षेत्रों से व्यापार सम्बन्धों द्वारा बाजारीय भूमिका निभाता है।

3.अन्य क्षेत्रों को श्रम शक्ति की पूर्ति करने में कृषि क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कृषि क्षेत्र का आर्थिक विकास में मुख्य भूमिका को निम्न बातों से परिलक्षित होती है:

1. खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग को पूरा करना (To meet the increasing demand for food items) - मानव की मूल आवश्यकता भोजन की है। जिसका मुख्य स्रोत कृषि है। अल्पविकसित देशों में खाद्य उत्पादन का कृषि क्षेत्र में प्रभुत्व होता है। जब बढ़ती हुई उत्पादकता के साथ उत्पादन बढ़ता है तो वह किसानों की आय में वृद्धि करता है। उनकी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से खाद्यों के लिए मांग में काफी वृद्धि होती है। ऐसे देशों में खा़द्यों के लिए मांग की आय लोच बहुत ऊँची होती है। यह अक्सर 0.6 तथा 0.8 प्रतिशत के बीच में होती है। फिर, मृत्यु-दर में तीव्र कमी तथा जन्म-दर में धीमी गिरावट से जनसंख्या की वृद्धि दर में बढोत्तरी होती है। जिससे खाद्यों की माँग और बढ़ती है। इसके अतिरिक्त , शहरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या के प्रसार से खाद्यों की मांग बढ़ती है। इन सभी तत्वों को दृष्टिगोचर रखते हुए फार्म उत्पादन में बढ़ौतरी की दर खाद्य मांग से अधिक होनी चाहिए।

कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये पर्याप्त मात्रा में खाद्य़-सामग्री उपलब्ध कराना है। विशेष रूप से अल्प-विकसित देशों में कृषि महत्व निम्न दो बातों के कारण और भी अधिक है। प्रथम, इन देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर 2.5 से 3 प्रतिशत वार्षिक होने के कारण खाद्यान्न की मांग तेजी के साथ बढ़ती है। दूसरा , उन्नत देशों की अपेक्षा इन देशों में खाद्य-सामग्री की मांग की आय-लोच काफी ऊँची होती है एक अनुमान के अनुसार मांग की यह ऊँची आय-लोच खाद्यान्नों की मांग से लगभग 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि कर देती है। जो किसी भी अल्प-विकसित देश की कृषि के लिये एक खुली चुनौती है। अतः इन देशों के आर्थिक विकास के परिवेश में जब कृषि वस्तुओं की तेजी के साथ बढ़ती हुई मांग के तदनुरूप खाद्यान सामाग्री की आपूर्ति को नहीं बढ़ाया जा पाता तो आर्थिक विकास का ढाँचा चर-मरा उठता है , स्फीतिक दबाव बढ़ने लगते हैं और जीवन-स्तर गिर जाता है।

2. औद्योगिक विकास का आधार (Basis of Industrial Development) - बढ़े हुए कृषि अतिरेक के कारण ग्रामीण क्रय-शक्ति में वृद्धि होती है , जो औद्योगिक विकास के बहुत प्रोत्साहित करती है। कृषि औद्योगिक कच्चे-माल की आपूर्ति का मुख्य स्रोत है।यदि कृषि क्षेत्र पिछ़ड़ा हुआ है तो औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति न हो पाने के कारण उद्योगों का विकास मन्द होगा और आर्थिक विकास की दर नीची बनी रहेगी। प्रो. रोस्टोव के

अनुसार, "कृषि औद्योगिक विकास की आधारशिला है और कृषि-उपादन औद्योगीकरण के लिये मूलभूत चालू पूँजी है।"

विकासशील देशों में निर्मित वस्तुओं की मार्केट बहुत छोटी होती हैं , क्योंकि कृषक , फार्म श्रमिक, तथा उनके परिवार जो ग्रामीण जनसंख्या का दो-तिहाई अथवा तीन-चौथाई होते हैं , इतने गरीब होते हैं कि वे फैक्टरी वस्तुए नहीं खरीद सकते। नर्क्से के अनुसार , वास्तविक क्रय-शक्ति का अभाव होता है जो कृषि में कम उत्पादकता को व्यक्त करती हैं। इसलिए मूल समस्या, मार्केट के छोटे आकार के कारण निवेश में कम आय प्राप्ति की हैं जब कृषि-उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ने से ग्रामीण क्रय-शक्ति (आय) में वृद्धि होगी तो निर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ेगी जिससे मार्केट का आकार भी बढ़ेगा जिससे औद्योगिक क्षेत्र का प्रसार होगा। फिर , उर्वरक, अच्छे यंत्र, औजार, ट्रैक्टर, सिंचाई के साधन आदि आगतों की कृषि क्षेत्र में मांग बढ़ने से औद्योगिक क्षेत्र का और प्रसार होगा। इन सब के कारण औद्योगिक विकास होगा।

3. तृतीयक (सेवा) क्षेत्र का प्रसार (Expansion of Tertiary (Service) Sector)- जब बढ़ रहे विक्रेय अतिरेक को शहरी क्षेत्रों में बेचने हेतु मंडियों में ले जाना पड़ता है तो उससे परिवहन एवं संचार के साधनों का प्रसार होता है। इसी प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों की मांग पूरा करने के लिए जब निर्मित वस्तुएं शहरों से गांवों में लाई जाती हैं तो इन साधनों का विकास होता है। साथ में बैकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं का भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसार होता है।

द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों के प्रसार के दीर्घकालीन प्रभाव उनमें लाभ बढ़ाने की ओर होते हैं चाहे वे निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में चल रहे हों। ये लाभ उनके पुर्ननिवेश द्वारा पूँजी निर्माण की दर बढ़ाते हैं।

4.पूँजी निर्माण में सहायक(Helpful in Capital Formation)-अल्पविकसित देशों में पूँजी की न्यूनता रहती है। जबकि इन देशों को आधारभूत संरचना का विकास करने तथा विनिर्माणी उद्योगों की स्थापना के लिए भारी मात्रा में पूँजी निवेश कृषि उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र की आय बढ़ जाने से बचत करने की क्षमता का विस्तार होता है। इस तरह , ऐच्छिक तथा अनिवार्य बचतों (अर्थात् करारोपण) के रूप में आसानी में पूँजी उपलब्ध हो जाती है। दूसरा, कृषि में 'कम पूँजी प्रधान उपायों'अथवा 'पूँजी -बचत उपायों'का प्रयोग करके उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

अतः कृषि क्षेत्र में जीवन-स्तर को कम किए बिना ही पूँजी निर्माण के लिए साधन प्राप्त किए जा सकते हैं। तीसरें , कृषि कीमतों को कम करके भी पूँजी निर्माण किया जा सकता है लेकिन कृषि कीमतों का कम करना संभव नहीं होता जबकि उनका बढ़ना आवश्यक हे। केवल दीर्घकाल में ही कृषि कीमतों को कम किया जा सकता है। इसलिए अधिक उपयुक्त नीति फार्म पदार्थों की कीमतों को इस ढंग से स्थिर करना है जिससे किसानों को उत्पादन करने में प्रोत्साहन भी मिले। चौथे , पूँजी निर्माण के लिए सबसे बढ़िया तरीका फार्म प्राप्तियों को बढ़ाने का है। ऐसा बढ़ी हुई फार्म आमदनियों को , कृषि कराधान, भूमिकरों, कृषि सेवाओं पर फीस लगाकर, जुटाया जा सकता है। इस प्रकार , उन देशों में जहां कृषि प्रधान है , सिकी भी रूप में कृषि पर कर लगाना कृषि अतिरेक को जुटाने के लिए आवश्यक है ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र की जा सकें। कुजनेट्स इसे कृषि का 'घटक योगदान'कहता है जब संसाधनों का अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण होता है , क्योंकि वे संसाधन उत्पादकीय घटक होते है।

5. औद्योगिक माल के लिए बाजार की व्यवस्था (Market System for Industrial Goods)- कृषि औद्योगिक क्षेत्र द्वारा निर्मित वस्तुओं के लिए बाजार प्रदान करती है। जब कृषि का विकास होता है तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तब कृषकों की आय बढ़ती है। ग्रामीण जनसंख्या की आय बढ़ने से औद्योगिक वस्तुओं की मांग बढ़ती है जिससे फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार होता है। इस तरह , कृषि विकास, औद्योगिक क्षेत्र के विकास को गति प्रदान करते हुए आर्थिक विकास को स्फूर्ति प्रदान करता है।

6. औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम-शक्ति उपलब्ध कराना (Providing Manpower for the Industrial Sector)-कृषि क्षेत्र का एक अन्य योगदान पूंजीवादी क्षेत्रों के लिये आवश्यक श्रम-शक्ति को उपलब्ध कराना है। कृषिगत विकास के कारण जब उत्पादकता बढ़ती है तो वर्तमन जनसंख्या को खाद्य-सामग्री उपलब्ध कराने के लिए कृषि-क्षेत्र से पहले ही अपेक्षा कम लोगों की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में संलग्न श्रम-शक्ति का एक बड़ा भाग अन्य व्यवसायों के लिये मुक्त हो जाता है। विशेष रूप से , विकास की प्रारम्भिक अवस्था में गैर-कृषि क्षेत्रों के लिये श्रम-शक्ति का अधिकांश भाग कृषि-क्षेत्र द्वारा ही उपलब्ध कराया जाता है क्योंकि अन्य क्षेत्र बहुत कम-विकसित होते हैं।

7. रोजगार के योगदान (Employment Contribution)-कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ-साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अधिकांश जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन भी करता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में जनंसख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि क्षेत्र में कार्य करता है। जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ तद्नुरूप औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में समानान्तर वृद्धि न होने के कारण कृषि क्षेत्र को उत्तरोत्तर अधिक जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसर जुटाने होते हैं। उद्योग एवं सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की सृजन हेतु अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है जो विकासशील अर्थव्यस्थाओं के लिए सुलभ नहीं है। इसके विपरीत , कृषि क्षेत्र में विकास कार्यों एवं रोजगार के अवसरों के सृजन हेतु कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार वही दूसरी ओर आगामी जनसंख्या के लिए कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों के सृजन की अधिक सम्भावना रहती है।

8. विदेशी विनियम का स्रोत (Source of Foreign Regulation)-अल्पविकसित देश अधिकतर निर्यातों के लिए कुछ कृषि पदार्थों के उत्पादन में विश्टिीकरण करते हैं। जब निर्यात योग्य वस्तुओं का उत्पादन और उत्पादकता बढ़ते हैं तो उनके निर्यातों में वृद्धि होती है जिससे वे अधिक विदेशी विनियम कमाते हैं। इस प्रकार कृषि अतिरेक से पूँजी निर्माण होता है। जब इस कमाई गई विदेशी विनिमय में पूँजी पदार्थ आयातित किए जाते हैं। ज्यों-ज्यों औद्योगीकरण से विकास की गति तेज होती है तो देश की कुल निर्यातों में कृषि निर्यातों का अनुपात कम होता जाता है क्योंकि उनकी आयात योग्य वस्तुओं के घरेलू उत्पादन के लिए अधिक मात्राओं में आवश्यकता पड़ती है। ऐसी वस्तुएं आयात स्थानापन्न होती हैं जो विदेशी विनियम को बचाती हैं। इसी प्रकार जब अर्थव्यवस्था खाद्य उत्पादन में आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करती है तो खाद्यान्नों के के बढ़े हुए विक्रीत अतिरेक से विदेशी विनिमय में बचत होती है।

खाद्य तथा निर्यात योग्य फसलों के अधिक उत्पादन से न केवल विदेशी विनिमय की बचत तथा कमाई भी होती है बल्कि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों का विकास भी होता है। विदेशी विनिमय अर्जनों का प्रयोग दुर्लभ कच्चे माल , मशीने, पूँजी उपकरण तथा तकनीकी ज्ञान का आयात करके , नए उद्योगों की स्थापना करने और अन्य उद्योगों की क्षमता बढ़ाने में किया जा सकता है। कुजनेट्स इसे कृषि का 'पदार्थ योगदान'कहता है जो पहले, अर्थव्यवस्था के शुद्ध उत्पादन की वृद्धि करता है और दूसरे, प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि।

9. ग्रामीण कल्याण में सुधार (Improvement in Rural Welfare) - ग्रामीण आमदनियों में वृद्धि जो विक्रेय अतिरेक के कारण होती है उससे ग्रामीण कल्याण में सुधार होता है। ग्रामीण उच्च पौष्टिकता वाले पदार्थ जैसे अण्डे, घी, दूध, मछली, फल, बढ़िया किस्म के अनाज आदि का अधिक मात्रा में उपभोग करना प्रारम्भ करते हैं। वे पक्के और अच्छे घरों को निर्माण करते हैं जिनमें वे सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएं जैसे बिजली , फर्नीचर, पंखे, टी. वी., फ्रिज, ट्रांजिस्टर, आदि लगाते हैं। वे स्वयं और अपने परिवार के लिए साईकल , मोटर साईकल अथवा स्कूटर, घड़ियां, बने-बनाए वस्त्र, शूज आदि भी प्रदान करते हैं। वे गांव में अनेक प्रकार की सेवाओं एवं सुविधाओं जैसे स्कूल , स्वास्थ्य केन्द्र, सिंचाई, बैंकिंग, परिवहन, संचार आदि के लिए इंतजाम करके प्रत्यक्ष संतुष्टि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार , कृषि अतिरेक के बढ़ने का प्रभाव ग्रामीणों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करना होता है।

9.6.कृषि: एक पद्दलित क्षेत्र (विकासशील देशों के सन्दर्भ में) (Agriculture: ADepressed Sector (In the Context of Developing Countries)

कृषि अल्पविकसित देशों का प्रमुख व्यवसाय है फिर भी विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा यह व्यवसाय यहां अत्यन्त पिछड़ी हुई अवस्था में हैं। उदाहरण के लिए , अमेरिका और फ्रांस की क्रमशः 8 प्रतिशत तथा 24 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है जबकि अल्पविकसित देशों में 60-70 प्रतिशत लोग इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। इन देशों में जनाधिक्य के कारण प्रति व्यक्ति तथा प्रति-हेक्टेयर उत्पादन भी अपेक्षाकृत कम है। यही कारण है कि यहां कृषि जीवन-निर्वाह का साधन बनी हुई है तथा यहां के निवासी निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि कृषि क्षेत्र में विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में प्रति हेक्टेयर उत्पादन काफी कम है। वर्ष 2004-05 में भारत में चावल की पैदावार प्रति हेक्टेअर 2,900 किग्रा थी जबकि चावल का उत्पादन कोरिया में 6,730 किग्रा प्रति हेक्टेअर , अमेरिका में 7,830 किग्रा प्रति हेक्टेअर तथा जापान में 6,420 किग्रा प्रति हेक्टेअर है। इसी तरह गेहूं की प्रति हेक्टेअर औसत उपज यू 0के0 में 7,770 किग्रा, फ्रांस में 7,580 किग्रा, चीन मे 4,240 किग्रा तथा भारत में 2,710 किग्रा थी। विश्व के कुछ देशों में प्रति हेक्टेअर औसत उपज के निम्न सारणी में देखा जा सकता है।

सारणी 1, कुछ चुने हुए देशों में प्रति हेक्टेअर उत्पादन (किग्रा), 2004-05

देश	चावल	देश	गेहूं
भारत	2,900	भारत	2,710
कोरिया	6,730	चीन	4,240
मिस्र	9,800	फ्रांस	7,580
जापान	6,420	पाकिस्तान	2,370
यू0एस0ए0	7,830	यू0के0	7,770

स्रोत: आर्थिक समीक्षा, 2006-07

कृषि में नीची उत्पादकता के कारण इन देशों में ग्रामीण जनसंख्या की आय काफी कम है जिससे लोगों का रहन-सहन निम्न-स्तरीय है। फिर, बजत करने के कम क्षमता कृषि में निवेश की दर को सीमित बनाए हुए है।

कृषि कार्य पुराने और पिछड़े तरीकों द्वारा किया जाता है जो निम्न-उत्पादकता और निर्धनता के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार अल्प-विकसित देशों में निम्न कृषि-उत्पादकता एक तरफ ग्रामीण जनसंख्या को दरिद्र बनाती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास को सीमित करती है। अतः ऐसे देशों में विकास नीति का प्रमुख उद्देश्य कृषि-उत्पादकता में वृद्धि करके विपणन योग्य अतिरेक को बढ़ाने का होना चाहिये। चूँकि इन देशों का प्रतिकूल सामाजिक तथा संस्थानिक ढाँचा कृषि उत्पादकता की सबसे बड़ी बाधा है इसलिये हमारा पहला प्रयास वर्तमान ग्रामीण-ढाँचे में बदलाव लाने और उसे विकासेन्नमुख बनाने का होना चाहिए।

भू-व्यवस्था, भूमि सुधार और आर्थिक विकास -

भूव्यवस्था तथा भूमि सुधारों का उद्देश्य उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों को ऐसा स्वरूप प्रदान करता है, जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन को अधिकतम किया जा सकें।किसी देश का कृषिगत विकास काफी हद तक भूमि सम्बन्धी व्यवस्था पर निर्भर करता है। भूमि व्यवस्था से अभिप्राय भू-धारण की पद्धति , भू-स्वामित्व सम्बन्धी कानून , काश्त का स्वरूप , जोतों का आकार , लगान सम्बन्धी नियम , कृषि साख की व्यवस्था , कृषि उत्पादन तथा विपणन आदि बातों से लगाया जाता है। इस प्रकार भू-व्यवस्था एक अत्यन्त विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाल सभी बातें आ जाती है। भू-व्यवस्था का कृषिगत विकास से निकटतम सम्बन्ध है और इसलिये इसका प्रभाव आर्थिक विकास को बढ़ाने या अवरूद्ध करने का हो सकता है। दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था कृषि उत्पादकता को घटाकर आर्थिक विकास को धीमा करती है जबकि सुदृढ़ कृषि-व्यवस्था और भूमि सुधार कार्यक्रम उत्पादकता-वृद्धि और निवेश-प्रेरणा के रूप में आर्थिक विकास का बढ़ावा देते हैं।

सभी देशों में कृषि क्षेत्र में उत्पादन के सामन्ती सम्बन्ध आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध हुए है। यही कारण है कि यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के दौरान भूमि सुधारों के द्वारा सामन्ती व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया था। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका , जापान, ताईवान, मैक्सिको तथा भारत में भी भूमि सुधारों के द्वारा आर्थिक विकास के लिए रास्ता खोला गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन के अनुसार , "अल्पविकसित देशों की दोषपूर्ण काश्तकारी व्यवस्था इनके कृषिगत विकास की सबसे बड़ी बाधा है तथा भूमि-सुधार के प्रति जागरूकता व क्षमता की कमी निम्न उत्पादकता का कारण है। इसके परिणामस्वरूप पिछड़ी हुई कृषि-व्यवस्था , पिछड़े आर्थिक विकास का स्वरूप् ग्रहण कर लेती है।"

प्रतिवेदन के अनुसार अल्पविकसित देशों की दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था के दुष्परिणाम इस प्रकार सामने आते हैं:

1.असुरक्षित काश्त के कारण कृषकों में उत्पादकता की प्रेरणा नहीं रहती।

2.उपज का एक बड़ा भाग अनुपर्जित आय के रूप में भू-स्वामी को प्राप्त होता है जबकि कृषक को मात्र न्यूनत जीवन-निर्वाह भर ही उपलब्ध हो पाता है। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ भूमि पर निवेश की क्षमता व प्रेरणा घटती है तो दूसरी तरफ समाज में वर्ग-भेद का जन्म होता है जो सामाजिक तनाव को बढ़ाता है तथा सामाजिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

भूमि व्यवस्था में सुधार का कृषि विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है , क्योंकि भू-व्यवस्था किसानों के हित में हो जाती है और किसान कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु सभी सकारात्मक प्रयास करते है जो कृषि विकास में सहायक होता है मुख्य रूप से भूमि सुधार कृषि विकास पर निम्न प्रकार प्रभावित करता है।

1.भूमि सुधार कार्यक्रम काश्त की सुरक्षा प्रदान करके भूमि में विनियोग तथा स्थायी सुधार लाने की सम्भावना को बढ़ाते हैं।

2.चकबन्दी द्वारा अनार्थिक जोतों पर रोक लगाने से कृषि के यन्त्रीकरण को बढ़ावा मिलता है।

3.भूमि सुधार से खेती के तरीकों और श्रमिकों की कार्यकुशलता में सुधार होता है जिससे कृषि-उत्पादकता बढ़ जाती है।

4.भूमि सुधार कार्यक्रमों से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और

5.सरकारी राजस्व में भी वृद्धि होती है।

6.भू-सुधार द्वारा किसानों तथा सरकार में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिससे सरकार द्वारा दी जानी वाली विभिन्न सहायताओं का वह आसानी से लाभ उठा सकते है।

7.भू-सुधार के दौरान प्राप्त अतिरिक्त जमीन भूमिहीन किसानों में बाँटना।

वास्तव में, इन देशों के सन्तुलित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय सहित विकास के लिए भूमि व्यवस्था में सुधार की प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है। विकास की ओर उन्मुख धनी आबादी वाले ये देश , जहां व्यापक बेरोजगारी, अर्ध-बेरोजगारी विद्यमान है , कृषि विकास की अवहेलना नहीं कर सकते। खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना तथा कुल उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि करके विपणन योग्य आधिक्य का सृजन करना इन देशों की आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है। सत्य तो यह है कि कृषि क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति किए बिना तीव्र आर्थिक विकास की कोई भी योजना फलीभूत नहीं हो सकती। सन्तोष का विषय है कि आज विश्व के अधिकांश अल्पविकसित देश कृषि विकास की दिशा में सकारात्मक रूख अपनाए हुए हैं तथा देश के आर्थिक विकास की आवश्यकता के अनुरूप कृषिगत विकास हेतु सतत प्रयासरत है।

9.7कृषि क्षेत्र विकास बनाम औद्योगिक क्षेत्र विकास (Agricultural Sector Development Vs Industrial Sector Development)

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए अथवा औद्योगीकरण की नीति को अपनाया जाए , यह वाद-विवाद का विषय रहा है। अन्य शब्दों में , यह जानना आवश्यक है कि कृषि विकास तथा औद्योगीकरण एक-दूसरे के पूरक हैं अथवा प्रतियोगी ? वास्तविकता में तो यह है कि कृषि विकास तथा औद्योगीकरण परस्पर विरोधी धारणा न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। विकासशील देशों में आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए दोनों क्षेत्रों का साथ-साथ विकास होना आवश्यक है। ये एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित तथा आर्थिक विकास की दो संयुक्त एवं प्रेरक शक्तियां हैं। इस कथन में सत्यता का पर्याप्त अंश होने के बावजूद कुछ अर्थशास्त्री केवल कृषिगत विकास के पक्षपाती हैं तो कुछ औद्योगीकरण के समर्थक हैं तो कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो दोनों क्षेत्रों में सामंजस्य बनाए रखने के पक्षधर हैं। उपरोक्त विचारधाराओं के सन्दर्भ में इनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

प्रथम मत: कृषि औद्योगीकरण की जननी है -

इस मत के समर्थकों का कथन है कि कृषि औद्योगीकरण का आधार तथा आर्थिक विकास की कुंजी है। यदि विकसित देशों के आर्थिक इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो यह ज्ञात होता है कि कृषि विकास के सोपान पर चढ़कर ही ये देश औद्योगिक विकास के शिखर पर पहुँचे हैं। अन्य शब्दों में , कृषि विकास के अनुसार , “आर्थिक इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि लगभग प्रत्येक औद्योगिक देश की प्रारम्भिक अवस्था में उद्योगों का विकास कृषकों की शक्ति पर निर्भर रहा है।”

बावर एवं यामे के अनुसार , "वर्तमान में औद्योगिक दृष्टि से विकसित कहे जाने वाले देश अतीत में मूलरूप से कृषि प्रधान देश रहे हैं। इतिहासकारों द्वारा की गई खोज से पता चलता है कि इन देशों में प्रगतिशील एवं विकासयुक्त कृषि ने विनिर्माणी उद्योगों की स्थापना एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन में भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि "कृषि क्षेत्र में पूरक परिवर्तन किए बिना औद्योगिक क्षेत्र का असन्तुलित एवं तीव्र विकास , अर्थव्यवस्था में ऐसी दशाएं उत्पन्न कर सकता है जिससे कि आर्थिक विकास पूर्णतया अवरूद्ध हो जाए , जैसे - भुगतान सन्तुलन की कठिनाईयां , मुद्रास्फीति, अत्यधिक नगरीकरण तथा सामाजिक ढांचे का विकृत होनपा आदि।"

इस सम्बन्ध में अपने मत व्यक्त करतेम हुए प्रो. रोस्टोव ने लिखा है कि "कृषि उत्पादन औद्योगीकरण के लिए मूलभूत कार्यशील पूँजी है।"

श्री एच. मिन्ट के मतानुसार , "विनिर्माणी उद्योगों का निरन्तर विकास , कृषि क्षेत्र के विकास के बिना अधिक समय तक सम्भव नहीं है क्योंकि अर्थव्यवस्था के विकास की दर अंततः कृषि के विकास की दर पर निर्भर करती है।"

संक्षेप में, आर्थिक विकास की दृष्टि से कृषि के विकास को निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण समझा जा सकता है:

1.कृषि विकास से निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के खाद्य-सामग्री सुलभ होती है।

2.अनेक विनिर्माणी उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। सूती वस्त्र , चीनी, पटसन, चाय, कॉफी, रबड़, वनस्पति घी, तेल, आदि अनेक उद्योग अपने कच्चे माल के लिए मुख्य रूप् से कृषि पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त अन्य लघु उद्योगों को भी कच्चा माल कृषि से प्राप्त होता है।

3.कृषि क्षेत्र, उद्योगों को पूँजी प्रदान करने के साथ-साथ नई औद्योगिक वस्तुओं के लिए बाजार तैयार करता है।

4.कृषिगत उपज का निर्यात करके औद्योगीकरण के लिए आवश्यक मशीनें एवं उपकरण आयात किए जा सकता है।

5.इससे विनियम-अर्थव्यवस्था का विकास होता है , साहसिक तथा प्रशासकीय योग्यता को बल मिलता है और यह आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था के सफल संचालन को सम्भव बनाता है।

कृषि के विकास के महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कोल एवं हूबर ने लिखा है कि ''सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए कृषि का विकास पहले होना चाहिए।"

दूसरा मत: औद्योगीकरण आर्थिक विकास की कसौटी है -

आर्थिक विकास में कृषि विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है फिर भी अर्थशास्यिों ने औद्योगीकरण को तीव्र आर्थिक विकास की कसौटी माना है। उनका तर्क है कि विकासशील देशों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण परम आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। विभिन्न प्रकार के उद्योगों के अभाव में देश का समुचित विकास होना अधूरा ही रहेगा। विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाएं औद्योगीकरण के माध्यम से ही आज आर्थिक विकास के उन्नत शिखर पर पहुंच सकी हैं। अधिकांशतया कृषि की अपेक्षा उद्योगों में प्रति व्यक्ति आय एवं उत्पादन अधिक होता है। आन्तरिक व बाह्य बचतें आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। औद्योगीकरण के फलस्वरूप तकनीकी ज्ञान, बाजार का क्षेत्र तथा आय आदि में वृद्धि की प्रवृत्ति बढ़ती है जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लक्षण परिलक्षित होने लगते हैं। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना है कि

अल्पविकसित देशों को कृषि की अपेक्षा औद्योगीक विकास पर अधिक बल देना चाहिए क्योंकि कृषि एवं आर्थिक विकास अतंतः देश के औद्योगीकरण के ढांचे पर निर्भर करता है। आर्थिक विकास हेतु औद्योगीकरण की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है।

1.देश के आर्थिक विकास के लिए कुछ राष्ट्रीय उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि आवश्यक है। उद्योग-धन्धों के विकास से इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है। उद्योगों में कृषि की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है। अर्थात् उद्योगों में विकास की दर ऊँची होती है।

2.अल्पविकसित देशों में कृषि एक अनिश्चित व्यवसाय होता है। इसमें क्रमागत उत्पत्ति ह्यास नियम शीघ्र ही क्रियाशील होने लगता है।

3.औद्योगीकरण से देश में पूँजी निर्माण की दर को अधिक बल मिलता है। पूँजी निर्माण में वृद्धि तभी सम्भव है जब देश में बचतें अधिक मात्रा में हों तथा उसे लाभप्रद उत्पादन में लगाने के लिए क्षेत्र और अवसर अधिक हों। औद्योगीकरण से आय में वृद्धि होती है। आय में वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त बचत प्रवृत्ति में भी वृद्धि होती है , साथ ही उद्योग-धन्धों में पूँजी लगाने के लिए क्षेत्र और अवसर में वृद्धि होती है। इस तरह , औद्योगीकरण पूँजी निर्माण में सहायक है।

4.प्रति व्यक्ति आय एवं जीवन-स्तर में वृद्धि की सम्भावना कृषि की अपेक्षा औद्योगीकरण में अधिक होती है। ऐसा विकसित देशों के आर्थिक इतिहास से स्पष्ट होता है।

5.कृषि में उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक रासायनिक खादों , कीटनाशकों, कृषि संयन्त्रों, उपकरणों तथा बिजली आदि महत्वपूर्ण सुविधाएं औद्योगीक विकास से ही सुलभ हो सकेंगी।

6.उत्पादन एवं तकनीक प्रगति मुख्य रूप से औद्योगीकरण की ही देन है।

समन्वित दृष्टिकोण: दोनों का विकास साथ-साथ हो!

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषि-विकास तथा औद्योगीकरण की नीति के बीच किसी प्रकार का चुनाव करना न्यायसंगत न होना क्योंकि ये दोनों क्षेत्र न केवल परस्पर पूरक हैं बल्कि आर्थिक विकास की दो ऐसी समानान्तर शक्तियाँ हैं जिन्हें एक ही धरातल पर बनाये रखना आवश्यक है। यूजीन स्टेनले ने इन दोनों क्षेत्रों की पूरकता सिद्ध करते हुए कहा है कि "कृषि उत्पादकता में सुधार औद्योगीकरण को प्रोन्नत करने का एक ठोस साधन है। जब तक कृषि का आधुनिकीकरण नहीं हो जाता जब तक अल्प-विकसित देशों में , जनंसख्या के एक बड़े भाग के पास निम्न क्रय-शक्ति के रूप में बाजारों का अभाव औद्योगिक विस्तार को सीमित कर देगा। इसी प्रकार कृषिगत विकास भी तब तक सम्भव नहीं है जब तक जन-शक्ति को रोजगार दिलाने और आधुनिक कृषि के लिये आवश्यक सम्भार , यन्त्र तथा सेवाओं को ठोस तकनीकी आधार प्रदान करने के लिये तीव्र औद्योगिक विकास न हो जाये "भारत में भी कृषि तथा औद्योगीकरण के सह-अस्तित्व अर्थात् समन्वित विकास को स्वीकार कर लिया गया है।

पी. काँग. चाँग के मतानुसार "कोई भी देश औद्योगीक दृष्टि से कितना ही उन्नतशील क्यों न हो , वह कृषि तथा उद्योगों के बीच एक वांछित सन्तुलन स्थापित किये बिना न तो अपनी आर्थिक क्रियाओं को जारी रख सकता है और न ही दीर्घकालीन विकास कर सकता है।"

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की एक विज्ञप्ति के अनुसार, "यह नहीं मान लेना चाहिए कि विकास के क्षेत्र में उद्योगों का अत्यधिक संकेन्द्रण अल्प-विकसित देशों के हित में होगा। परन्तु इसका यह अभिप्राय भी नहीं कि इस प्रकार के

देशों में औद्योगीकरण की नितान्त उपेक्षा की जाए , वरन् कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ाकर सन्तुलित विकास की नीति अपनाई जानी चाहिए।"

श्री मुर्रे का कहना है कि "इन दोनों क्षेत्रों का विकास घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास की नीति, कृषि तथा उद्योग दोनों में उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से संतुलित विकास पर आधारित होनी चाहिए?"

इस प्रकार कृषि और औद्योगिक उत्पादन परस्पर सम्बन्धित हैं और प्रत्येक दूसरे की वृद्धि को ऊपर वर्णित तरीकों से प्रभावित करता है। इसलिए अल्पविकसित देशों को अर्थव्यवस्था की सतत वृद्धि के लिए कृषि और उद्योग का सुसंगत ढंग से विकास करना चाहिए।

9.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरों:-

1.आज भी .... विश्व की अधिकांश जनंसख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्रोत है।

2.भारतीय संस्कृति में पृथ्वी (भूमि) को .... के समान माना गया है।

3.प्रसिद्ध विचारक अरस्तु.................. द्वारा ही द्रव्य उपार्जन को प्राकृतिक मानते थे।

4.प्रकृतिवादियों का मानना था कि केवल.................. की सुदृढ़ व टिकाऊ साम्राज्य स्थापित कर सकता है।

5.विकास-प्रक्रिया में कृषि विकास को .... स्थान दिया जाना चाहिए ।

6.प्रो0 शुल्टज के अनुसार कोई भी अल्प विकसित राष्ट्र.................. में आत्म-निर्भरता प्राप्त किये बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं कर सकता।

7.आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में .... में वृद्धि कर अपनी वास्तविक.................. आय में वृद्धि करते है।

8..................के शब्दों में - आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन के वृद्धि से लगाया जाता है।

9.आर्थिक विकास वह.................. प्रक्रिया है।

10. ....सभी उद्योगों की जननी और मानव जीवन की पोषक रही है।

11. प्रमुख अर्थशास्त्री किण्डलवर्जर ने .... महत्वपूर्ण कारक बताए है जिनके द्वारा कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में मदद पहुँचाता है।

12. साइमन कुजनेट्स ने आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका को .... भागों में बांटा है।

13. नर्क्से के अनुसार, वास्तविक क्रय-शक्ति का अभाव होता है जो कृषि में .... उत्पादकता को व्यक्त करती हैं।

14. कुजनेट्स इसे कृषि का.................. कहता है जो पहले, अर्थव्यवस्था के शुद्ध उत्पादन की वृद्धि करता है और दूसरे, प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि।

15. कुजनेट्स इसे कृषि का .... कहता है जब संसाधनों का अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण होता है , क्योंकि वे संसाधन उत्पादकीय घटक होते है।

16. भू-व्यवस्था एक .... शब्द है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाल सभी बातें आ जाती है।

9.9 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ गये होंगे कि कृषि और आर्थिक विकास का सम्बन्ध मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही रहा है। प्राचीन आर्य संस्कृति , यूरोपियन तथा प्रकृतिवादों ने भी कृषि के महत्व को स्वीकार किया। यद्यपि आर्थिक विकास का अभिप्राय उत्पादन, आय वृद्धि, प्रतिव्यक्ति आय वृद्धि तथा सामाजिक कल्याण से लगाया जाता है। लेकिन कृषि विकास ही किसी अर्थव्यवस्था की नींव मजबूत होती है। कृषि के द्वारा ही खाद्य पदार्थों की आपूर्ति होती है, उद्योगों के लिए कच्चेमाल की आपूर्ति होती है, पूँजी निर्माण में सहायक, रोजगार का मुख्य आधार है। विदेशी मुद्रा की प्राप्ति तथा ग्रामीण कल्याण को बढ़ावा मिलता है।

आर्थिक विकास हेतु भू-व्यवस्था तथा भूमि सुधार एक महत्वपूर्ण शर्त है। क्योंकि भूमि सुधार द्वारा कृषि विकास सम्भव है और कृषि विकास द्वारा आर्थिक विकास होता है। संस्थागत स्रोत- जिनकी कार्यप्रणाली निश्चित नियमों पर आधारित होती है। अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए अथवा औद्योगीकरण की नीति को अपनाया जाए। इन दोनों क्षेत्रों का विकास घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास की नीति, कृषि तथा उद्योग दोनों में उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से संतुलित विकास पर आधारित होनी चाहिए।

9.10 शब्दावली (Glossary)

प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector)-कृषि, खनन व मत्स्य उद्योग

कृषि का व्यवसायीकरण (Commercialization of agriculture) - लाभ प्राप्ती के उद्देश्यों से कृषि करना।

वाणिज्य बैंक (Commercial Bank)- व्यापारिक बैंक जो लाभ प्राप्ति के लिए धन का लेने-देन करते हैं।

काश्तकार (Cultivator)- जो लोग किसी दूसरे की भूमि पर ठेके पर कृषि करता है।

अनुदान/रियायत (Grant/Concession)- सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।

कृषिविपणन (Agricultural Marketing)- कृषि उत्पादन की विक्रय/बिक्री व्यवस्था।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answer for Practice Questions)

(1) कृषि (2) माता (3) कृषि व पशुपालन (4) कृषक-राष्ट्र

(5) प्राथमिक (6) खाद्यान्नों (7) उत्पादन एवं उत्पादकता; प्रति व्यक्ति आय

(8) प्रो. लुईस (9) सतत प्रक्रिया (10) कृषि (11) छः महत्वपूर्ण कारक

(12) तीन भागों (13) कम उत्पादकता (14) पदार्थ योगदान (15) घटक योगदान

(16) अत्यन्त विस्तृत

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची(Bibliography)

माथुर बी0 एल0; (2011) कृषि अर्थशास्त्र; अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

गुप्त डॉ0 शिव भूषण'; (2010) कृषि अर्थशास्त्रसाहित्य भवन आगरा

Singh, S.P. (2010), Economics of Development and Planning and Practices Sultan Chand Publishing House.

Mishra, S.K. and Puri, V. K.(2007),Economics of Development and Planning Theory and Practice Himalaya Publishing House.

Dhingra, I. C. (2009), Development Economics Sultan Chand and Sons.

9.13 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

Taylor, H.C., (1949),'Outlines ofAgricultural Economic's, MacMillan

Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), 'Agriculture and Economic Development'; Select books, New Delhi.

Sandh A. N., Singh, Amarjit (2009), 'Fundamentals Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.

Desai, R.G. (2009), 'Agricultural Economics', Himalaya Publishing House.

Dantawala, M.L. et al. (1991): 'Indian Agricultural Development since Independence', Oxford & IBH, New Delhi.

Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "Development Economics" Oxford University Press India.

9.14 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

1. आर्थिक विकास से आप क्या समझते है? कृषि तथा आर्थिक विकास में क्या सम्बन्ध है ?
2. कृषि क्षेत्र की आर्थिक विकास में भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. कृषि क्षेत्र भू-व्यवस्था का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को अथवा औद्योगीकरण को प्राथमिकता प्रदान की जाए व्याख्या करो।

इकाई 10- औद्योगिकक्षेत्रऔरविकास

(Industrial Sector and Development)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

10.2 उद्देश्य (Objectives)

10.3 औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास (Industrial Sector and Economic Development)

10.4 आयात स्थानापन्नता तर्क - आयात स्थानापन्नता और आर्थिक विकास (Import Substitution Argument – Import Substitution and Economic Growth)

10.5 शिशु उद्योग तर्क - शिशु उद्योग और आर्थिक विकास (Infant Industry Argument – Infant Industry and Economic Development)

10.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

10.7 सारांश(Summary)

10.8 शब्दावली(Glossary)

10.9 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

10.10 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

10.11 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

10.12 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई से पहले आप आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है। इस इकाई में आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आप को औद्योगीकरण के दो महत्वपूर्ण तर्कों -आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप:-

आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका को जान सकेंगे।

तीव्र औद्योगिक विकास हेतु आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

औद्योगीकरण में शिशु उद्योग तर्क की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।

10.3 औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास (Industrial Sector and Economic Development)

औद्योगिक प्रगति तीव्र आर्थिक विकास की एक आवश्यक शर्त है। विकसित देश औद्योगिक विकास के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है। जबकि इसके विपरित अल्पविकसित देशों की अथाह गरीबी काफी हद तक उनके औद्योगिक पिछड़ेपन का परिणाम है। इन देशों में वैज्ञानिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकी की ने केवल कमी है , बल्कि औद्योगिक प्रगति करने की उत्कण्ठा , तकनीकी परिवर्तन लाने की पहल और उसके लिए उपयुक्त आधारभूत ढाँचे का अभाव भी होना है। इसमें कोई सन्देह नहीं , कि अल्पविकसित देशों को आर्थिक विकास के लिए तीव्र औद्योगिक विकास को अपनाना होगा , जिससे वह भी विकास के पथ पर अग्रसर हो सके।

औद्योगिक विकास हेतु बड़ी मात्रा में उद्योगों की स्थापना की जाती है। उद्योगों का कार्य वस्तुओं और सेवाओं को मानव-प्रयास द्वारा वाणिज्यक उत्पादन में परिवर्तन करना है। उद्योग शब्द लैटिन भाषा के शब्द Industrialसे बना है, जिसका अर्थ हैं - कुछ प्रयोजन के लिए गतिविधि को निर्देशित करना। प्राचीन फ्रांसीसी Industriesशब्द का प्रयोग मूलरूप से 'कौशल', 'एक युक्ति'और 'परिश्रम'के लिए किया जाता था। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान अधिक से अधिक मानव प्रयास वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में शामिल हो गयें।किसी देश में श्रम शक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने तथा राष्ट्रीय आय में योगदान के आधार पर अर्थव्यवस्था कृषि , उद्योग व सेवा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। उद्योग आधारित अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान यूरोपीय व अमेरिकी देश में विनिर्माण उद्योग वस्तु-सेवा उत्पादन व श्रम का प्रमुख क्षेत्र बन गयें है। जिससे औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र प्रगति हुई है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद दुनिया के आर्थिक उत्पादन का लगभग एक तिहाई विनिर्माण उद्योगों से प्राप्त होता है। कई विकसित व विकासशील देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार उद्योग ही है।

औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए उद्योगों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। प्राथमिक या कृषि उद्योग, माध्यमिक, द्वितीयक या विनिर्माण तथा तृतीय या सेवाएं। कुछ विचारक इसमें ज्ञान , संस्कृति तथा अनुसंधान को भी शामिल करते है। प्राथमिक क्षेत्र में पृथ्वी से सम्बन्धित संसाधनों-कृषि , खनन तथ मत्स्य उद्योग को शामिल किया जाता है। द्वितीयक क्षेत्र में प्राथमिक उद्योगों के प्रसंस्करण उत्पादों को शामिल किया जाता है, जिसमें निर्माण, विनिर्माण तथा प्रसंस्करण उद्योग आते है। तृतीयक क्षेत्र में सेवायें - शिक्षा , प्रबन्धन व व्यापार सम्बन्धी सेवाओं को शामिल किया जाता है। उद्योग के कई अन्य प्रकार भी होते है जैसे - बाजार

आधारित उद्योग के कई अन्य प्रकार भी होते है जैसे - आजार आधारित उद्योग , ग्लोबल उद्योग, वित्तीय उद्योग व व्यापारिक सम्बन्धी उद्योग/ बाजार व सम्बन्धित उत्पादों के हिसाब से उद्योग को पहचाना जाता है , जैसे - रासायनिक उद्योग, पेट्रोलियम, मोटर वाहन, इलेक्ट्रॉनिक, खाद्य, मछली, कागज, मनोरंजन तथा संस्कृतिक उद्योग आदि।

आर्थिक विकास में उद्योग की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। अल्पविकसित देश कृषि प्रधान होतें हैं जिनमें केवल उपभोक्ता वस्तुओं से सम्बन्धित कुछ उद्योग पाए जाते हैं। ऐसे देशों में बिना औद्योगीकरण के कृषि , परिवहन, संचार, निर्यात, रोजगार आदि में वृद्धि संभव नहीं है। औद्योगीकरण के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

औद्योगीकरण उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूँजी पदार्थों एवं सामाजिक उपरि पूँजी (social overhead capital) के निर्माण की प्रक्रिया है। जिससे व्यक्तियों और व्यवसायों को वस्तुएँ एवं सेवाएं प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार औद्योगीकरण विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में निम्नलिखित कारणों से मुख्य भूमिका निभाता है:

1. कृषि में आगतों की पूर्ति (Supply of Inputs in Agriculture):-अधिक जनसंख्या वाले अल्पविकसित देशों में भूमि पर अत्यधिक दबाव होता है जिससे जोतें उपविभाजित और टुकड़े-टुकड़े होती हैं तथा किसान परंपरागत खेती करते हैं। वे तीव्र आर्थिक विकास के लिए कृषि तरीकों में परिवर्तन आने तक इंतजार नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें खेतों पर उत्पादकता बढ़ाने के लिए उर्वरक , मशीनरी तथा अन्य लागतों की पूर्ति हेतु औद्योगिक विकास प्रांरभ करना आवश्यक है।

2. कृषि का व्यापारीकरण (Commercialization of Agriculture):-औद्योगीकरण से कृषि का व्यापारीकरण होता है। कृषि के व्यापारीकरण से अभिप्राय है कि कृषि को उतना लाभदायक बनाना जितना कि उद्योग, जिससे कृषि घरेलू और विदेशी मार्केट की माँग पूरी करने की क्षमता रखती हो। ऐसा औद्योगीकरण द्वारा कृषि में मूल परिवर्तनों से होता है जब कृषि के आधुनिकीकरण से निर्वाह खेती की बजाय व्यापारिक खेती प्रारम्भ होती है। परिवहन और संचार के साधनों का विकास होता है। किसान सहायक धंधे जैसे दूध , घी मक्खन, आदि का उत्पादन, फूल, फल, सब्जी आदि उगाना ; मुर्गी, मछली आदि का पालन करते हैं। इससे रोजगार का विविधीकरण होता है। कृषि-उत्पादन बढ़ता है। ग्रामीण जनंसख्या की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है।

3. शहरों और रोजगार और आय में वृद्धि (Cities and Employment and Income Growth):- औद्योगीकरण से शहरों में रोजगार के साधनों में वृद्धि होती है जिससे आय बढ़ती है। औद्योगिक क्षेत्रों में नयी तकनीकों तथा नयी और विविध कुशलताओं से उद्योगों के लाभ बढ़ते हैं जिससे बचतें अधिक होती हैं तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए मांग में वृद्धि होती है और आगे निवेश प्रोत्साहित होता है।

4. रोजगार प्रदान करना (To Provide Employment):-कृषि क्षेत्र में बेरोजगार तथा अल्परोजगार को रोजगारा प्रदान करने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। ऐसे व्यक्तियों का सीमांत उत्पाद शून्य या नगण्य होता है और उन्हें कृषि उत्पादन में बिना किसी कमी अथवा नुकसान के कृषि से उद्योग में स्थानांतरित किया जा सकता है। क्योंकि कृषि की अपेक्षा उद्योग में श्रम का सीमांत उत्पाद अधिक होता है, इसलिए ऐसे वर्करों को औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण करने से कुल उत्पादन बढ़ेगा। इसलिए अतिजसंख्या वाले अल्पविकसित देशों के लिए औद्योगीकरण के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।

5. व्यापार की शर्तें सुधारना (Improving the Terms of Trade):-ऐसे देशों की प्राथमिक वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय मार्केट में उतार-बढ़ाव के कारण उनकी व्यापार शर्तों में ह्रास हो जाता है , जिनमें सुधार करने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। वे मुख्य तौर से प्राथमिक वस्तुएं निर्यात करते हैं तथ निर्मित वस्तुएं आयात करते हैं। विकसित देशों की संरक्षणात्मक नीतियों के कारण प्राथमिक वस्तुओं की कीमतें गिरती जा रही हैं जबकि निर्मित वस्तुओं की कीमतें बढ़ती जा रही हैं। इससे उनकी व्यापार की शर्तों में मूल्यह्रास (depreciation) होता जा रहा है। इस कारण आर्थिक विकास के लिए इन देशों को प्राथमिक वस्तुओं पर निर्भरता कम करनी चाहिए, जिसका एकमात्र उपाय औद्योगीकरण है ताकि वे आयात स्थानापन्न तथा निर्यात प्रधान उद्योग स्थापित कर सकें।

6. शहरीकरण (Urbanization):-औद्योगीकरण से शहरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यह प्रक्रिया ग्रामीण लोगों और क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन लाती है।

1.शहरीकरण से ग्रामीणों का शहरों की ओर प्रस्थान होता है जहाँ उन्हें रोजगार के अनेक सुअवसर प्राप्त होते हैं। वे शहरों से गांवों में अने कुटुम्बों को पैसा भेजते हैं।

2.इससे ग्रामीणों की आय में वृद्धि होती है।

3.वे बढी हुई आय का खेती के लिए आगतें खरीदने , पशुपालन, मुर्गी पालन, मछली पालन, तथा अन्य घरेलू उद्योग धंधे चालू करने पर व्यय करते हैं।

4.औद्योगीकरण से सुधरे हुए यातायात के साधनों से मार्केट का प्रसार होता है जिससे कृषि पदार्थों जैसे फल , सब्जियाँ, अनाज तथा व्यापारिक फसलों को शहरी मण्डियों में लाभकारी कीमतों पर बेचने की सुविधा हो जाती है।

5.जो ग्रामीण शहरों के पास के गाँवों से नौकरी अथवा व्यवसाय करने के लिए शहरों में जाते हैं, वे अपने घरों में अंशकालिक काम करके अपनी आय को बढ़ाते हैं।

6.शहरीकरण में ग्रामीणों का शिक्षा , यात्रा तथा नये लोगों , नये विचारों एवं नयी वस्तुओं द्वारा उनके ज्ञान में वृद्धि होती है जिससे उनका दृष्टिकोण विस्तृत होता है तथा उनकी जीवन के प्रति प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है और वे आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर होते हैं।

7. पूँजी में वृद्धि (Increase in Capital)-अल्पविकसित देशों के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है क्योंकि इससे बढ़ते प्रतिफल तथा पैमाने की किफायतें प्राप्त होती हैं जिनसे पूँजी मे वृद्धि होती है। इससे न केवल छोटे , मध्य और बढ़े उद्योग स्थापित होते हैं बल्कि इससे कृषि का आधुनिकीकरण होता है जिससे फार्म उत्पादन में वृद्धि होती है। कृषि में अनुसंधान और तकनीकी सुधार जिनसे सभी साधनों की उत्पादकता में वृद्धि होती है , औद्योगीकरण द्वारा ही संभव है।

8. विविध वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग (Consumption of Various Goods and Services):-औद्योगीकरण से लोग विविध प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग से आधुनिकीकरण के लाभों का आनन्द प्राप्त करते हैं। इनका प्रदर्शनकारी प्रभाव द्वारा ग्रामीणों को भी लाभ होता है। इस प्रकार , औद्योगीकरण रहन-सहन के स्तरों को बढ़ाता है तथा सामाजिक कल्याण को प्रोत्साहित करता है।

9. शीघ्र आर्थिक विकास (Rapid Economic Growth):-शीघ्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण एक पूर्व-शर्त है जैसा कि विकसित देशों का अनुभव बताता है। विकास के लिए , राष्ट्रीय आय में औद्योगिक क्षेत्र का

भाग बढ़ाना चाहिए तथा कृषि क्षेत्र का कम होना चाहिए। ऐसा केवल , आयोजित औद्योगीकरण की नीति द्वारा ही संभव है। इसके परिणामस्वरूप , कृषि और सेवा क्षेत्रों के विकास के रूप में औद्योगीकरण के लाभ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में धीरे-धीरें पहुँच जाते हैं।

10. सामाजिक कल्याण (Social Welfare):-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में औद्योगीकरण सामाजिक , रूपान्तरण, सामाजिक समानता, आय का अधिक न्यायसंगत वितरण तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास लाता है।

विकास की प्रारंभिक प्रावस्था में अल्पविकसित देशों द्वारा अपनाई गई औद्योगीकरण के नीति से उन्हें संभावित आर्थिक एवं सामाजिक लाभ नही हुए हैं। यह आय और धन की असमानताएं, बेरोजगारी, और क्षेत्रीय असंतुलन कम करने में असमर्थ रही है। अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि के विकास की उपेक्षा होने के कारण विकास के रूप में औद्योगीकरण के लाभ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में धीरे-धीरे पहुँच जाते हैं।

विकास की प्रारंभिक प्रावस्था में अल्पविकसित देशों द्वारा अपनाई गई औद्योगीकरण की नीति से उन्हें संभावित आर्थिक एवं सामाजिक लाभ नहीं हुए हैं। यह आय और धन की असमानताएं, बेरोजगारी, और क्षेत्रीय असंतुलन कम करने में असमर्थ रही है। अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि के विकास की उपेक्षा होने के कारण विकास की गति समरूप नहीं हुई है। इनके अतिरिक्त, औद्योगीकरण ने ऐसी गंभीर समस्याओं को पैदा किया है जैसे कि:

(1) ग्रामीण गतिहीनता,

(2) शहरी निम्न वर्ग की आकस्मिक वृद्धि,

(3) विकास आवश्यकताओं के साथ अभावपूर्ण ढंग से जुड़ी हुई शिक्षा,

(4) सरकारी नौकारशाही में संगठनात्मक "अधिकतर विफलताएँ" तथा

(5) श्रम-शक्ति और जनसंख्या की अत्यधिक ऊँची वृद्धि दरें।

इसलिए, अर्थशास्त्री इस मत की ओर परिवर्तित हो गए हैं कि इस तर्क का कोई आधार नहीं कि औद्योगीकरण से विकास प्रारंभ करना चाहिए। बल्कि , विकास की प्रक्रिया कृषि और उद्योग की सुव्यवस्थित वृद्धि के साथ जुड़ी हुई है। वास्तव में , अधिकतर अल्पविकसित देशों में सफल औद्योगीकरण सतत् कृषि विकास द्वारा समर्थित किया गया है।

औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्कों की व्याख्या की जाती हैं आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क।

10.4 आयात स्थानापन्नता तर्क - आयात स्थानापन्नता और आर्थिक विकास (Import Substitution Argument – Import Substitution and Economic Growth)

विकास के आयोजित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अल्पविकसित देश भुगतान-शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। आयातों तथा निर्यातों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है , जो विकास के साथ-साथ बढ़ता जाता है। ऐसा आयातों में वृद्धि और निर्यातों में कमी के कारण होता है। विद्युत , सिंचाई, परिवहन आदि परियोजनाओं जैसे आर्थिक आधारिक संरचना तथा प्रत्यक्षतः उत्पादक क्रियाओं जैसे लोहा और इस्पात , सीमेंट, बिजली का सामान आदि को स्थापित करने के लिए अल्पविकसित देशों को पूँजी उपकरण, मशीनरी, कच्चे माल, पुर्जे, आदि बड़ी मात्रा में आयात करने पड़ते हैं , जिससे उनके विदेशी व्यापार का आयात अंश बढ़ जाता है। आयातों के बढ़ने का एक अन्य कारण शीघ्रता से बढ़ रही जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की वृद्धिशील माँग होता

है। अतः खुराक के आयात अल्पविकसित देशों में भुगतान-शेष में असंतुलन उत्पन्न करने का एक महत्वपूर्ण तत्व होते हैं।

खाद्यान्नों के अतिरिक्त, बहुत-सी आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की घरेलू माँग को पूरा करने के लिए उन्हें आयातित किया जाता है क्योंकि देशी उत्पादन से उस माँग को पर्याप्त रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। ऐसी नीति अपने आप में, ऐसे उद्योगों को स्थापित और चालू करने के लिए बड़ी मात्राओं में मशीनरी, पूँजी उपकरण, पूर्जे, कच्चे माल आदि की आयातों की आयातों की आवश्यकताओं पर जोर देती है। निर्यात आयातों के पीछे रह जाते हैं। अल्पविकसित देशों के निर्यातों में विविधता और लोचशीलता का अभाव पाया जाता है। ये देश मुख्यतः कच्चे माल और कृषि पदार्थों जैसे प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इसलिए उनके सीमित और बहुत प्रतियोगी बाजार होते हैं। फिर वे , बढ़ रही आय और उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग की आय लोच बढ़ने से निर्यात-योग्य वस्तुओं के बढ़े हुए उपभोग के कारण अधिक निर्यात करने में असमर्थ होते हैं।

एक अन्य समस्या स्फीति के दबावों के कारण उनकी ऊँची उत्पादन लागत होती है। अत्यन्त प्रतियोगी अन्तर्राष्ट्रीय मार्केटों के होते हुए ऊँची लागत निर्यातों के रास्ते में बड़ी बाधा होती है। फिर प्रशुल्क प्रतिरोध , कोटा प्रतिबन्ध और प्रादेशिक आर्थिक संगठन भी अल्पविकसित देशों के निर्यातों को निम्न रखते हैं। अन्तिम , निर्यात योग्य वस्तुओं की घटिया किस्म और विदेशों में वस्तुएं बेचने के लिए उपयुक्त साख सुविधाओं का अभाव उनकी निर्यातों को निम्न रखने का कारण है। इस प्रकार ऊपर चर्चित तत्वों के कारण अल्पविकसित देशों के निर्यात को निम्न रखने का कारण है। इस प्रकार ऊपर चर्चित तत्वों के कारण अल्पविकसित देशों के निर्यात कम और आयात ऊँची रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है, जिससे उनमें भुगतान शेष की समस्या चिरस्थाई बन गई है।

भुगतान-शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका आयात स्थानापन्नता है। इसकी कूटनीति यह है कि कि उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में कटौती करें और उन्हें देश में ही उत्पादित करें। जैसा कि मिर्डल ने संकेत किया है, "विदेशी विनिमय के समक्ष खतरे ऐसी वस्तुओं के उत्पादन की ओर उद्योगों में निवेश को निर्देशित करने का कारण प्रदान करते हैं, जो आयतों के स्थानापन्न होते हैं।"

हर्षमैन के अनुसार, आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण के चार आवेग होते हैं। वे है: भुगतान-शेष की कठिनाइयां , युद्ध, आय में धीरे-धीरे वृद्धि और आयोजित विकास नीति। पहला आवश्यक उद्योगों के पक्ष में झुकावा लाता है और अन्तिम पूर्णतया विपरीत झुकाव पैदा करता है।

आयात स्थानापन्नता द्वार औद्योगीकरण के लिए विकासशील देशों में भुगतान शेष की कठिनाईयों और आयोजित विकास नीति दो प्रेरणात्मक शक्तियां है। औद्योगीकरण की इस नीति के पालन में जो तरीके अपनाए जाते हैं, वे कीमत-संरक्षण विधियों के रूप में आयात प्रशुल्क , कोटा, आयात या विनिमय, अधि-प्रभार और बहु विनिमय दरें हैं। जबकि आयात प्रतियोग उद्योगों में लागतें कम करने के लिए कर-छूटें और सहायिकी प्रयोग किए जाते हैं।

आयात स्थानापन्नता अनिवार्यतः उत्पादन के अन्तिम चरणों में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण में प्रारम्भ होती है। देश बहुत में परिवर्तन , एकीकरण और मिश्रित करने वाले प्लांटों की आयात करता है और पहले आयातित की जाने वाली तैयार उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करता है और फिर प्रायः शीघ्रता और सफलता के साथ, उत्पादन की ऊँची स्टेजों पर और पश्यवर्ती अनुबंधन प्रभावों द्वारा मध्यवर्ती वस्तुओं की ओर चला जाता है।

आयात स्थानापन्नता के पक्ष में तर्क –

आयात स्थानापन्नता के पक्ष में तर्क इस तथ्य पर आधारित है कि ऐतिहासिक तौर से व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय असमानता यन्त्र के रूप में पिछड़े हुए देशों के अहित में चालित रहा है। इसलिए वह दीर्घकाल में आत्म-निर्भरता और आयात को घरेलू उत्पादन द्वारा स्थानापन्न करके विदेशी मुद्रा बचाने के उद्देश्य से आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगीकरण की कूटनीति को अपनाने में उचित है।

1.विकसित देशों का अनुभव (Experience of Developed Countries):-आयात स्थानापन्नता के पक्ष में विकसित देशों के अनुभव को भी दिया जाता है। कुछ देशों के ऐतिहासिक अध्ययनों के आधार पर चेनरी ने यह दिखाया है कि विकास के साथ केवल औद्योगिक उत्पादन का भाग ही नहीं बढ़ता बल्कि औद्योगिक उत्पादन में कुल वृद्धि का एक बड़ा अनुपात, आयात स्थानापन्नता पर आधारित उद्योगों की वृद्धि का कारण होता है।

2.घरेलू माँग पूरा करने हेतु (To Meet Domestic Demand):-एक अन्य तर्क इस आधार पर आधारित है कि एक विकासशील देश की औद्योगिक आयातों के लिए माँग इसके निर्यातों के लिए विदेशी माँग की अपेक्षा बहुत तेजी से बढ़ती है। ऐसे देश प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करते हैं जिनकी विदेशी माँग मन्द होती है तथा इसलिए वे निर्यातों के बदले में पर्याप्त औद्योगिक वस्तुएं आयात नहीं कर पाते। अतः घरेलू माँग को पूरा करने के लिए देश में औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यकता पड़ती है।

3.रोजगार बढ़ाने के लिए (To Increase Employment):-औद्योगीकरण द्वारा आयात स्थानापन्नता के पक्ष में रोजगार का तर्क भी दिया जाता है। जनसंख्या वृद्धि के साथ बढ़ रही श्रम-शक्ति को काम पर लगाने के लिए , आधुनिक श्रम-बचत तकनीकों के प्रयोग द्वारा कृषि उत्पादकता से बढ़ रही अतिरेक मानव शक्ति को खपाने के लिए, और वर्तमान अल्प-रोजगार में लगे लोगों को लाभदायक रोजगार के साधन प्रदान करने के लिए आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण आवश्यक है।

4.घरेलू बचत और निवेश दर बढ़ानें के लिए (To increase Domestic Savings and Investment Rates):-फिर, यह भी तर्क दिया जाता है कि आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण घरेलू बचत और निवेश की दर को बढ़ाता है। जब राज्य विदेशी प्रतियोगिता से आयात स्थानापन्न उद्योगों की रक्षा करने के लिए प्रशुल्क , लाइसैंस, कोटा आदि प्रतिबन्धात्मक विधियां अपनाता है , तो उत्पादक अपनी वस्तुओं की कीमतें बढ़ा लेते हैं और इस प्रकार ऊँचे लाभ कमाते हैं। जब यह लाभ बचाकर पुनर्विनियोजित किए जाते हैं , तो विकास की गति तेज होती है। फिर, यह भी तर्क दिया जाता है कि आयात स्थानापन्न उद्योगों की शर्तें संरक्षण व्यापार की शर्तों को असंरक्षित क्षेत्रों के विरूद्ध कर देंगे और आय वितरण को इस ढंग से परिवर्तित करेंगे कि बचतें और निवेश अर्थव्यवस्था में प्रोत्साहित हो जाते हैं।

5.मार्केट ढूँढने की आवश्यकता नहीं (No Need to Find Market):-आयात स्थानापन्नता की नीति के पक्ष में एक प्रमुख तर्क यह है कि यह आयात स्थानापन्नता उद्योगों की लिए मार्केट ढूँढने की अनिश्चितताओं और जोखिम से दूर रहती है क्योंकि जब आयातों को रोक दिया जाता है, तो नए उद्योगों को पहले से ही स्थापित मार्केट प्राप्त की जाती है।

6.आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से (From the Point of View of Economic Welfare):-आयात-स्थानापन्न औद्योगीकरण के पक्ष में एक तर्क अल्पविकसित देश में दीर्घकालीन आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से है। यदि आयात स्थानापन्नता की नीति प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों द्वारा चलाई जाती है, जैसे कि साधारणतया होता

है, तो आधुनिक औद्योगी तकनीकों और ज्ञान से देश लाभ उठाता है। उन्नत देशों के प्रौद्योगिकीय ज्ञान में प्रत्यक्षतः भाग लेकर यह अपनी पूँजी-संचय की दर को तीव्र करने में समर्थ हो जाता है।

7.उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना (Achieving Self-Reliance in Production):-आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगीकरण का अन्तिम उद्देश्य दो तरह का है - तैयार उपभोक्ता वस्तुओं, मध्यवर्ती वस्तुओं और मशीनरी के उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना , और उन्हें विकासशील और विकसित देशों में निर्यात करना।

आयात स्थानापन्नता के विपक्ष में तर्क

भारत, पाकिस्तान और बहुत से लेटिन अमरीकी देशों में आयात स्थानापन्नता की नीति सही ढंग से नहीं चल रही है बल्कि इसने अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं में गड़बड़ पैदा कर दी है जिससे उनकी औद्योगीकरण की प्रक्रिया महँगी हो गई है। अब हम इस नीति के गुणों के संदर्भ में आयात स्थानापन्नता के विपक्ष में तर्कों का विवेचन करते हैं।

1.उत्पादन में वृद्धि आयातों में वृद्धि से नहीं (Increase in Production not due to Increase in Imports):-आयात स्थनापन्नता द्वारा औद्योगीकरण के पक्ष में चेनरी द्वारा दिया गया ऐतिहासिक प्रमाण सभा विकासशील देशों पर लागू नहीं हो सकता। यह दलील दी जाती है कि औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि आयातों में वृद्धि से हुई है। कच्चे माल , मध्यवर्ती वस्तुएं और पूँजी उपकरणों का आयात , अल्पविकसित देश में घरेलू उद्योग स्थापित करने में सहायक होते हैं। वास्तव में , निर्यात अर्थव्यवस्था के भीतर उद्यमीय क्रियाओं को प्रोत्साहित करने माँग पैदा करने, और अल्प रोजगार में लगे साधनों को उत्पादकीय तौर से प्रयोग करने में सहायक होते हैं। ये आयातें ही हैं, जो अन्ततः उनके लिए आधार बनाकर, आयात स्थानापन्नता उद्योगों के लिए मार्ग दिखाती है।

2.विदेश मुद्रा बचाने में विफल (Failed to Save Foreign Exchange):-आयात स्थानापन्नता की नीति का विदेशी मुद्रा बचाने का मुख्य उद्देश्य विफल रहा है। ऐसे उद्योग स्थापित नहीं किए गए , जिन्होंने विदेशी मद्रा की बचत की है। वास्तव में , स्थापित उद्योग किसी प्रकार की वास्तविक बचतें करने में असफल रहे हैं बल्कि उनसे विदेशी मुद्रा निर्वाचित हुई है। अल्पविकसित देशों में आयात स्थानापन्नता उद्योग प्रारम्भ करने के लिए कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओं और पूंजीगत उपकरणों का अभाव होता है। इसलिए इस नीति में आयातों की अधिक आवश्यकता पड़ती है, अपेक्षा किसी और नीति के।

3.रोजगार उत्पन्न करने में असफल (Fail to Generate Employment):-यह तर्क कि अल्पविकसित देशों में आयात स्थानापन्नता उद्योगों की स्थापना से अतिरेक श्रम खप जाता है , इससे कोई सन्देह नहीं कि आयात स्थानापन्नता निर्माणकारी क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाता है परन्तु यह ऐसे देशों में बढ़ रही श्रम-शक्ति के लिए नौकरियाँ उत्पन्न करने में असफल रहा है। ग्रिफिन और एनोज ने यह व्यक्त किया है कि निर्माणकारी उद्योगों में रोजगार की वृद्धि किसी भी तरह उत्पादन में वृद्धि के साथ तुलना योग्य नहीं है। वास्तव में , रोजगार में वृद्धि उतनी देर तक नहीं होती, जब तक कि निर्माणकारी उत्पादन 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से नहीं बढ़ता है।

4.बचत और निवेश पर कुप्रभाव (Adverse Effect on Savings and Investment):-जॉन पावर ने यह तर्क दिया है कि तैयार उपभोक्ता वस्तुओं की आयात स्थानापन्नता घरेलू बचतों और निवेश को बढ़ाने की अपेक्षा

कम करती है। घरेलू प्रयोग के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर बल उनके उपभोग को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखता है और इस प्रकार उनके निर्यात को आघात पहुँचाता है। ऐसी नीति आर्थिक और तकनीकी दक्षता पर बुरा प्रभाव डालती है जिससे आय , लाभ और बचत कम होते हैं। इसलिए , और विकास के लिए राष्ट्रीय आय , बचत और निवेश की दरें बढ़ाने के लिए , जॉन पावर उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र की अपेक्षा पूँजी पदार्थ और निर्यात क्षेत्रों में निवेश का पक्षपात करता है।

5.संसाधनों का विवरण (Description of Resources):-औद्योगिक उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के साधन के रूप में आयात स्थानापन्नता की कटूनीति के प्रयोग से संसाधनों का कुवितरण और औद्योगिक उत्पादकता पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ है। आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के जोश में अल्पविकसित देशों ने अदक्ष और निम्न प्राथमिकता वाले उद्योगों को अभेदपूर्ण संरक्षण प्रदान किया है। परिणामस्वरूप , ऊँची लागत पर प्राप्त किए गए कच्चे माल , मध्यवर्ती पदार्थ और पूंजीगत उपकरणों का दुरूपयोग हुआ है। अतः इस नीति से अति संरक्षण के अन्तर्गत ऊँची उत्पादन लागतों के साथ अदक्ष उद्योगों की स्थापना हुई है। आयात स्थानापन्नता के क्षेत्र में भारत का यही अनुभव रहा है।

6.अति-संरक्षण को अपनाना (Adopting Over-Protection):-रॉल प्रेबिश के अनुसार , ऐसे देशों में अति-संरक्षण के साधार तौर से राष्ट्रीय मार्केटों को विदेशी प्रतियोगिताओं से अलग कर दिया है। इसने उसकी वस्तुओं की किस्म को सुधारने और लागतें कम करने की प्रेरणा को कमजोर नहीं किया बल्कि समाप्त भी कर दिया है। ऊँची उत्पादन लागत न अति संरक्षण को अपनाना आवश्यक बना दिया है। आगे इसने औद्योगिक ढांचे पर कुप्रभाव डाला है क्योंकि इसने छोटी अनार्थिक इकाइयों की स्थापना को प्रोत्साहित किया है , आधुनिक तकनीकों को प्रारम्भ करने की प्रेरणा को कमजोर किया है और उत्पादकता में वृद्धि को धीमा किया है।

निष्कर्ष में, ऐसा प्रतीत होता है कि आयात स्थानापन्नता की नीति न केवल विदेशी मुद्रा को बचाने मं असफल रही है बल्कि कई देशों में इसने कमी को बढ़ाया है। उपभोक्ता वस्तुओं की आयात स्थानापन्नता पर बल उत्पादन, बचत और निवेश को बढ़ाने में सफल नहीं रहा है। यह औद्योगिक उत्पादन में अर्थव्यवस्था को कहीं भी आत्म-निर्भरता के उद्देश्य के पास लाने में भी असफल रही है। ना तो यह बढ़ रही श्रम-शक्ति को खपाने के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करने में सफल रही है और ना ही निर्यात क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

परन्तु भारत जैसे देशों ने जो व्यवहार-कुशल मशीनरी और उपकरण बनाने के लिए उद्योग स्थापित किए हैं, उन्होंने आयात स्थानापन्नता में महत्वपूर्ण प्रगति की है। इसने भावी निवेश प्रोग्रामों और सुरक्षा सामर्थ्य सम्बन्धी आत्म-निर्भरता के लिए काफी अच्छी नींव रखने में देश की सहायता की है। बाईसिकल , पंखे, सिलाई मशीनें आदि अनेक टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं-जो यह देश निर्यात करता है - के इलावा कई प्रकार की मशीनरी , लोहा और इस्पात, कच्चा पेट्रोल और पेट्रोल वस्तुओं , रासायनिक खाद, भारी रसायन आदि आधारभूत उद्योगों के बारे में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। आयात स्थानापन्नता की नीति द्वारा भारत अपने विकास प्रोग्रामों के लिए अब तीन-चौथाई पूँजी उपकरण उत्पादित करता है।

10.5 शिशु उद्योग तर्क - शिशु उद्योग और आर्थिक विकास (Infant Industry Argument – Infant Industry and Economic Development)

फ्रैडरिक लिस्ट का प्रसिद्ध 'शिशु उद्योग'तर्क अल्पविकसित देशों को उनके औद्योगीकरण की गति बढ़ाने में काफी प्रेरणा देता है। कुछ उद्योग ऐसे हैं कि यदि उन्हें विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जाए तो अल्पविकसित देशों में उन्हें सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है। हो सकता है कि कुछ आधारभूत

सुविधाओं के अभाव के कारण अभी तो उनकी उत्पादन लागतें अधिक हों , परन्तु कुछ समय बाद जब प्रारंभिक कठिनाइयाँ पार की ली जाएँ, तो उनके उत्पादनों में कम लागत पड़े।

यदि उद्योगों को उनकी प्रारम्भिक (शिशुत्व की) अवस्था में स्थापित विदेशी उत्पादकों से नहीं बचाया जाता है, तो वे विकसित नहीं कर सकेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि वे इष्टतम आकार तक विकसित हों ताकि वे अत्यधिक दक्षता तथा प्रतियोगिता पूर्वक कार्य करे और अपेक्षाकृत कम लागतों पर उत्पादन करें। शिशु उद्योगों में संसाधनों के प्रवाह को सुगम बनाने के लिए भी संरक्षण की जरूरत है , भले ही उपभोक्ताओं को अस्थायी तौर पर ऊँची कीमतों को बोझ उठाना पड़े।

दीर्घकालीन में प्रतियोगितामूलक बनने के लिए शिशु उद्योगों को कुछ समय चाहिए जिसमें वे अनुभव में सीखने की प्रक्रिया में से गुजर सकें। इसलिए उन्हें संरक्षण प्रदान करना जरूरी है। जोनसन मानता है कि शिशु उद्योग विषयक तर्क स्पष्ट रूप से अल्पकालिक विकृतियाँ दूर करने के लिए अस्थायी हस्तक्षेप के पक्ष में जानदार तर्क हैं। इसलिए शिशु उद्योगों को थोड़े समय के लिए संरक्षण की जरूरत है ताकि वे विदेशी उत्पादकों से भय रहित होकर विकास कर सकें। जब वे बड़े हो जाएं तो संरक्षण वापिस लिया जा सकता है और तब उन्हें विदेशी उपयोगिता का सामना करने के लिए खुले छोड़ दिया जाए।

शिशु उद्योग के पक्ष में यह तर्क भी है कि जब कोई नया उद्योग शुरू होता है तो वह पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताओं का लाभ उठा सकता और अपने विदेशी प्रतियोगिताओं के मुकाबले उसकी उत्पादन लागत अधिक होती है। परन्तु यदि सभी प्रकार की सुविधएं, जैसे सहायिकियां, विदेशी वस्तुओं पर भारी आयात शुल्क आदि , प्रदान करके उसे संरक्षण दिया जाए तो उसका विस्तार होगा और उसे पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताएं प्राप्त होंगी। आगे , इसके परिणामस्वरूप उद्योग में सभी फर्मों को पैमाने की बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त हो सकती हैं। प्रशिक्षित श्रम-शक्ति की उपलब्धता , उन्नत उत्पादन तकनीकों, अनुसंधान सुविधाओं इत्यादि के माध्यम से उत्पादन की कम लागतों के रूप में ये मितव्ययिताएं प्राप्त होंगी।

यदि उनके उद्योगों को एक साथ शिशु उद्योग संरक्षण प्रदान किया जाए , तो सड़क, रेलमार्ग, शक्ति और अनुसंधान सुविधाओं, इत्यादि के रूप में अनेक बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं और फिर , शिशु उद्योगों को लाभ होता है जो संरक्षित उद्योग के उत्पादनों को प्रयोग करते हैं। संरक्षण सामाजिक लाभ प्रदान कर सकें , इसलिए शिशु उद्योगों का पनपना जरूरी है। यह आवश्यक है कि वे अन्त में विश्व बाजार कीमतों पर प्रतियोगिता में ठहर सकें। उन्हें उस कसौटी पर खरा उतरना होगा जिसे मिल का टैस्ट कहते हैं। जिसके अनुसार, संरक्षण देने से पहले यह देख लेना हैं कि नहीं। केवल शिशु उद्योग का पनपना ही जरूरी नहीं बल्कि यह भी आवश्यक है कि वे हानियों का पुनर्भुगतान भी कर सकें जो उन्हें संरक्षण के दौरान उठानी पड़ी थीं। उन्हें बैस्टेबल टैस्ट भी पास करना पड़ेगा। जिसके अनुसार संरक्षण उसी स्थिति में देना चाहिए जबकि संरक्षण के अतिरिक्त उस उद्योग के विकास की संभावना नहीं।

प्रोफेसर मिर्डल ने अल्पविकसित देशों में औद्योगिक संरक्षण के लिए चार विशेष कारण बताए हैं:

1. नई पूर्ति के मुकाबले माँग खोजने की कठिनाइयाँ;
2. अतिरेक श्रम का पाया जाना;
3. बाह्य मितव्ययिताओं के निर्माण में व्यक्तिगत निवेश बड़े पुरस्कार; और
4. उद्योग के प्रतिकूल एक ओर झुका हुआ आन्तरिक कीमत ढांचा। ये कारण परस्पर सम्बद्ध है और अल्पविकसित देश के समक्ष शिशु उद्योग संरक्षण के पक्ष में तर्क प्रदान करते हैं।

अल्पविकसित देश के सन्दर्भ में शिशु उद्योग तर्क को चित्र द्वारा समझाया गया है। एक अल्पविकसित देश को किसी एक विशेष वस्तु के उत्पादन में संभावित तुलनात्मक लाभ हो सकता है परन्तु ज्ञान के अभाव में तथा उत्पादन का प्रारंभिक स्तर छोटा होने के कारण इसकी प्रारम्भिक उत्पादन लागतें बहुत ऊँची होती हैं। इसके परिणामस्वरूप विदेशी प्रतियोगिता के सामने यह उद्योग अल्पविकसित देश में स्थापित या विकसित नहीं हो सकता है। इस प्रकार एक अल्पविकसित देश के लिए एक उद्योग स्थापित करने और उसे शिशुत्व में संरक्षण देने हेतु आयात प्रशुल्क लगाना आवश्यक होता है। ऐसा करना कब तक उचित है जब तक कि उद्योग आकार और दक्षता में इतना विकसित नहीं हो जाता कि वह विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला कर सके।

इस तर्क को चित्र 10.1 से समझाया गया है जहां OPw उस वस्तु की विश्व कीमत है जिसमें अल्पविकसित देश को सम्भावित तुलनात्मक लाभ होता है। परन्तु प्रारम्भ में अल्पविकसित देश में इस वस्तु की उत्पादन लागत OPL है जो कि उसकी विश्व कीमत OPw से अधिक है। यही कारण है कि विदेशी प्रतियोगिता के विरूद्ध बिना संरक्षण के यह उद्योग अल्पविकसित देश में स्थापित या विकसित नहीं हो सकता है। अतः इस उद्योग का संरक्षण देने के लिए इस वस्तु पर इतना आयात प्रशुल्क लगाया जाए जो Pw PL से अधिक हो।

चित्र 10.1

समय बीतने पर जब शिशु उद्योग फैलाता है , उत्पादन बढ़ता और पैमाने की मितव्ययिताओं के लाभ प्राप्त होते हैं तो उद्योग की उत्पादन लागत कम होनी प्रारम्भ हो जाती है जैसा कि चित्र में OQ1 मात्रा के बाद दिखाया गया है। जब धीरे-धीरे उद्योग और प्रसार करता है तथा उत्पादन OQ2 पर उसकी उत्पादन लागत E बिन्दु पर विश्व कीमत के बराबर हो जाती है तो इस उद्योग पर से संरक्षण हटाया ज सकता है। इस E बिन्दु के बाद उत्पादन लागत विश्व कीमत से कम होने के कारण अल्पविकसित देश इस वस्तु का निर्यात कर सकता है।

शिशु उद्योग तर्क घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए होता है। यह इस धारणा पर आधारित है कि “शिशु का पालन करो, बालक की रक्षा करो और व्यस्क को स्वतन्त्र कर दो”। इसका अभिप्राय यह है कि जब तक एक उद्योग विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला करने की क्षमता प्राप्त नहीं कर लेता उसे संरक्षण देना चाहिए परन्तु जब वह ऐसी क्षमता प्राप्त कर लेता है तो उस पर से संरक्षण हटा लेना चाहिए। परन्तु ऐसा अनुभव है कि जब एक बार किसी उद्योग को संरक्षण प्रदान किया जाता है तो उद्योग ‘शिशु’ही रहना पसन्द करता है। फिर , एक बार जब किसी उद्योग को आयात टैरिफ द्वारा संरक्षण दिया जाता है तो उसको हटाना कठिन हो जाता है। इसलिए अर्थशास्त्रियों का मत है कि जो कार्य एक आयात प्रशुल्क कर सकता है उससे अच्छा संरक्षण उत्पादन सहायिकी प्रदान कर सकती है।

परन्तु अल्पविकसित देश सहायिकी की अपेक्षा आयात प्रशुल्क को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि सहायिकी देने के लिए राजस्व चाहिए जिसकी इनके पास कमी होती है। दूसरी ओर , आयात प्रशुल्क ऐसे देशों को राजस्व प्रदान करते हैं। इसलिए अल्पविकसित देश शिशु उद्योग को संरक्षण प्रदान करने के लिए आयात स्थानापन्नता की नीति अपनाने के लिए तथा अपनी योजनाओं के लिए राजस्व प्राप्त करने हेतु आयात प्रशुल्क को अधिक उपयुक्त मानते हैं और उसको अपनाते है। अर्थशास्त्रियों ने संरक्षण के पक्ष में दिए गए शिशु उद्योग तर्क की बहुत कटु आलोचना की है।

1. यह निर्णय करना कठिन है कि किस उद्योग को संरक्षण की जरूरत है क्योंकि प्रारम्भ में तो प्रत्येक उद्योग शैशवावस्था में भी होता है। वास्तव में , असली शिशु उद्योगों को चयन करना ही कठिन होता है क्योंकि इसके लिए उद्योग के संभाव्य लागत ढांचे और उसकी स्थापित प्रतियोगिता का पूर्वानुमान लगाने की जरूरत होती है।
2. किसी शिशु उद्योग को संरक्षण इस आश्वासन पर दिया जाता है कि जब उद्योग बढ़ा हो जाए और विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला कर सकेगा, तो संरक्षण समाप्त कर दिया जाएगा। परन्तु किसी विश्वसनीय कसौटी के अभाव के कारण इस सम्बन्ध में निर्णय कर पाना कठिन है।
3. प्रो. लाकड़ावाला के अनुसार , शिशु उद्योग को दिए जाने वाले संरक्षण की मात्रा तथा अविध का निर्णय करना कठिन है।
4. यदि किसी उद्योग का कोई भाग अपने पैरों पर खड़ा भी हो जाए , तो भी प्रशुल्कों की आड़ में अनेक कम दक्ष फर्म स्थापित हो जाती हैं जिनके कारण शुल्क समाप्त करना कठिन हो जाता है।
5. जब किसी उद्योग को एक बार संरक्षण दे दिया जाता है तो निहित स्वार्थ उत्पन्न हो जाते है जो यही नहीं चाहते कि शुल्क समाप्त किए जाएँ। इस प्रकार जैसा कि हैबरलर ने लक्ष्य किया है "अस्थायी शिशु उद्योग शुल्क कुछ समय बाद स्थायी शुल्क बन जाते हैं ताकि उन उद्योगों को बनाए रखा जा सके जिन्हें वें शुल्क संरक्षण प्रदान करते हैं।"
6. हैबरलर इस बात से सहमत नहीं है कि शिशु उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप उत्पादन की आन्तरिक तथा बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं। उसने स्पष्ट किया है कि शिशु उद्योग संरक्षण के अन्तर्गत बाह्य मितव्ययिताओं की तथाकथित संभावनाएं अस्पष्ट उलझी हुई तथा सन्देहपूर्ण हैं।
7. नर्क्से के अनुसार, आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए अकेला शिशु उद्योग संरक्षण एक निष्फल साधन है क्योंकि यह पूंजी-पूर्ति की समस्या की उपेक्षा कर देता है।
8. कुछ उद्योगपति संरक्षण के अन्तर्गत एकाधिकार लाभ उठाने लगते हैं और वे नहीं चाहते कि शुल्क समाप्त किए जाएं। इसलिए वे विधायकों को रिश्वत देते हैं और देश की सामान्य राजनीति को भ्रष्ट बना देते हैं।
9. शिशु-उद्योग संरक्षण तब तक न दिया जाए , जब तक कि उद्योग वास्तव में स्थपित न हो जाए। जैसा कि नर्क्से ने कहा है, "शिशु-संरक्षण से पहले शिशु का जन्म तो हो।"

इन आलोचनाओं के बावजूद अल्पविकसित देशों में औद्योगीकरण के लिए शिशु उद्योग तर्क एक महत्वपूर्ण साधन है।

10.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरों:-

1. विकसित देश .... के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है।
2. उद्योग शब्द लैटिन भाषा के शब्द.................. से बना है,
3. औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए उद्योगों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।................ , ... तथा .... है।
4. प्राथमिक क्षेत्र में पृथ्वी से सम्बन्धित संसाधनों-.................. उद्योग को शामिल किया जाता है।

5. द्वितीयक क्षेत्र में प्राथमिक उद्योगों के प्रसंस्करण उत्पादों को शामिल किया जाता है , जिसमें .... उद्योग आते है।

6. तृतीयक क्षेत्र में सेवायें - .... सम्बन्धी सेवाओं को शामिल किया जाता है।

7. औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्कों की व्याख्या की जाती हैं: .... तर्क और .... तर्क।

8. अल्पविकसित देश भुगतान-शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। भुगतान-शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका .... है।

9. .... तर्क इस धारणा पर आधारित है कि "शिशु का पालन करो, बालक की रक्षा करो और व्यस्क को स्वतन्त्र कर दो।"

10.7 सारांश(Summary)

औद्योगिक प्रगति तीव्र आर्थिक विकास की एक आवश्यक शर्त है। विकसित देश औद्योगिक विकास के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है। औद्योगीकरण विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में कृषि में आगतों की पूर्ति , रोजगार प्रदान करना , शहरों और रोजगार और आय में वृद्धि , विविध वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग,पूँजी में वृद्धि , कृषि का व्यापारीकरण, व्यापार की शर्तें सुधारना, शहरीकण, शीघ्र आर्थिक विकास एवं शीघ्र आर्थिक विकास करके मुख्य भूमिका निभाता है। औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्क आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क। तीव्र औद्योगिक विकास हेतु आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क दिये जाते है। विकास के आयोजित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अल्पविकसित देश भुगतान-शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। भुगतान-शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका आयात स्थानापन्नता है। 'शिशु उद्योग'तर्क अल्पविकसित देशों को उनके औद्योगीकरण की गति बढ़ाने में काफी प्रेरणा देता है।

10.8 शब्दावली(Glossary)

परम्परागत (Traditional)-पुरानी परम्पराओं के अनुसार

छिपी बेरोजगारी (Hidden Unemployment)-ऐसी बेरोजगारी जो दिखाई न दे अर्थात जहाँ व्यक्ति काम में लगा दिखता है परन्तु उत्पादन में उसका योगदान लगभग शून्य होता है।

अर्द्ध बेरोजगारी (Semi-Unemployment)-ऐसी बेरोजगारी जिसमें व्यक्ति को केवल कुछ दिनों या महीनों के लिए या योग्यता से कम काम मिले।

श्रम प्रतिस्थापन(Labor Substitution)-ऐसी व्यवस्था जहाँ श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग किया जाये।

एकाधिकार (Monopoly) -ऐसी व्यवस्था जहाँ किसी वस्तु की खरीदारी या बिक्री पर एक संस्था या व्यक्ति का अधिकार हो।

करारोपण(Taxation)-कर लगाना

पूर्णकालिक (Full Time)-पूरे वर्ष के लिए अर्थात् लम्बे समय के लिए

अनुदान (Grant)-सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।

प्रमापीकरण(Standardization)-मानक या मापदण्ड अनुसार वस्तुओं को विभिन्न वर्गों में बांटना।

आधारभूत संरचना (Infrastructure) -विकास में सहायक आधार जैसे-सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।

10.9 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थान भरों:-

(1) औद्योगिक विकास (2) Industria

(3) प्राथमिक या कृषि उद्योग, माध्यमिक, द्वितीयक या विनिर्माण तथा तृतीय या सेवाएं

(4) कृषि, खनन तथ मत्स्य (5) निर्माण, विनिर्माण तथा प्रसंस्करण

(6) शिक्षा, प्रबन्धन व व्यापार (7) आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग

(8) आयात स्थानापन्नता (9) 'शिशु उद्योग'

10.10 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

Singh, S.P. (2010),"Economics of Development and Planning and Practics", S and Chan Publicshing House.

Jhingan, M. L. (2000),"Economics of Development and Planning", Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.

Seth, Ranjana (2010), "Industrial Economics", Ane Books Pvt. Ltd.New Delhi.

Mishra, S.K. and Puri, V.K. (2007), "Economics of Development and Planning Theory and Practice", Himalaya Publishing House.

Dhingra, I. C. (2009), "Development Economics", sultan Chand and Sons.

10.11 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "Development Economics", Oxford University Press India.

Barthwal, R. R. (2004), "Industrial Economics: An Introductory Text Book", New Age International (P) Ltd, Publishers, New Delhi.

Dr. Barthwal, Industrial Economics, New Age International (P) Ltd, Publishers, New Delhi.

10.12 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

1. औद्योगिक विकास का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. औद्योगीकरण में आयात स्थानापन्नता की भूमिका का वर्णन करो।
3. शिशु उद्योग और आर्थिक विकास में भूमिका पर प्रकाश डालिए

इकाई 11- सरकारी संस्थान, बाजार,और विकास (Government Institute, Market and Development)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)
11.2 उद्देश्य (Objectives)
11.3 सरकारी संस्थान बाजार और विकास(Government Institute, Market and Development)
11.4 विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य (Government Work related to Promoting Development)
11.5 बाजार और आर्थिक विकास (Markets and Economic Development)
11.6 बाजार के आकार के निर्धारक तत्व (Factors Determining Market Size)
11.7 विकास तथा बाजार की अपूर्णतायें (Development and Market Imperfections)
11.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)
11.9 सारांश(Summary)
11.10 शब्दावली(Glossary)
11.11 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)
11.12 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)
11.13 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)
11.14 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई से पहले आप आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है। इस इकाई में आर्थिक विकास में सरकारी संस्थान और बाजार के योगदान की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आपको आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप:-

आर्थिक विकास में सरकारी संस्थान और बाजार के महत्व की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य को समझ सकेगें।

आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका को जान सकेंगे।

11.3 सरकारी संस्थान बाजार और विकास(Government Institute, Market and Development)

प्रारम्भ में आर्थिक विकास में राज्य सरकार की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती थी। सरकार का मुख्य काम केवल देश की सुरक्षा मान जात था परन्तु धीरे -धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन आया और एक वर्ग राज्य सरकार के आर्थिक क्रियाओं में सहयोग का समर्थन करने लगा , इसलिए दो प्रकार की विचारधारायें पायी जाने लगी।

प्रथम विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएँ राज्य सरकार के नियन्त्रण के अन्तर्गत होनी चाहिए अर्थात् विकास की सम्पूर्ण योजनाएँ सार्वजनिक क्षेत्र के द्वारा संचालित की जानी चाहिए। ताकि निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के सभी दोषों का उन्मूलन करके तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को शीघ्रतर पूरा किया जा सके।

द्वितीय विचाराधारा के समर्थक पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप के पक्षपाती नहीं है। इनकी दृष्टि में बाजार-यन्त्र और निजी उपक्रमों को जीवित रखना आवश्यक है क्योंकि अल्प-विकसित देशों में पूँजी के अभाव के कारण सरकारें विस्तृत पैमाने पर विनियोग नहीं कर सकतीं।

संक्षेप में, यह विचारधारा 'धीरे चलने की नीति' अथवा 'राज्य हस्तक्षेप के क्रमिक विकास सिद्धान्त' में विश्वास रखनी है। आज अधिकांश अल्प-विकसित देशों में द्वितीय विचाराधारा को ही मान्यता प्रदान की गयी है। मिश्रित अर्थ व्यवस्था के रूप में कुछ आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व व संचालन सरकार के हाथ में होता है और शेष उद्योगों पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व बना रहता है। ध्यान रहे, निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों का संचालन भी सरकार के कठोर नियन्त्रण में होता है।

प्रो. मायर एवं बाल्डबिन का कहना है कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य सरकार के हस्तक्षेप की क्या सीमा हो इसका कोई सिद्धान्त नहीं है। इसके लिए सरकार को देश में विकास की गति , वांछित उद्देश्य, विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियाँ, अपनी प्रशासनिक शक्ति व विद्यमान संस्थाओं के आधार पर ही सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में सीमांकन करना होगा।

आज के युग में विश्व के सभी राष्ट्रों का अन्तिम लक्ष्य आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त करना है जिसके लिये आर्थिक नियोजन की प्रणाली की स्वीकार कर लिया गया है। योजनाओं के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना और बड़े पैमाने के उत्पादन हेतु विशाल धनराशि की आवश्यकता होती है जिसे व्यक्तिगत साधनों से पूरा नहीं किया जा सकता। विशेषकर अल्प-विकसित देशों में पूँजी का अभाव , तकनीकी ज्ञान की कमी , कुशल श्रमिकों , प्रबन्धकों एवं उद्यमकर्ताओं का अभाव, विषैले वृत्त तथा बाजार अपूर्णताएँ आदि ऐसी समस्याएँ विद्यमान होती

हैं जो आर्थिक विकास के मार्ग को अवरूद्ध बनाये रखती हैं। चूँकि निजी क्षेत्र के द्वारा इन समस्याओं का उपयुक्त समाधान नहीं किया जा सकता इसलिये सरकार को स्वयं आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है।

इस बात का समर्थन प्रसिद्ध विकासवादी अर्थशास्त्री प्रो. डब्ल्यू आर्थर लुइस ने भी किया है। उनके शब्दों में "कोई भी देश आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग और साझेदारी के बिना आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है।"

11.4 विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य (Government Work related to Promoting Development)

अब यह सर्वथा माना जाता है कि एक अल्पविकसित देश में निहित कठोरताओं पर काबू पाने के लिए सरकार को निश्चियात्मक कार्य करना होगा। वह निष्क्रिय दर्शक बनकर नहीं रह सकता। अल्पविकसित देशों की समस्याएँ इतनी अधिक होती हैं कि उन्हें आर्थिक शक्तियों के स्वतंत्र कार्यकरण पर नहीं छोड़ा जा सकता। निजी उद्यम उन्हें हल नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे देशों के आर्थिक विकास के लिए सरकारी कार्य अनिवार्य है। फिर , ऐसे देशों को गतिहीनता के निर्जीव केन्द्र से हटाने के लिए शीघ्र सामाजिक-आर्थिक सुधारों की जरूरत होती है।

विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उन दिशाओं में निवेश करना पड़ेगा , जो बाह्य मितव्ययिताओं को बढ़ावा दें , अर्थात विद्युत , परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यदि आर्थिक तथा सामाजिक उपरि सुविधाओं का निर्माण करें। इन क्रियाओं के लिए निजी उद्यम आगे आने का तैयार नहीं होता क्योंकि इनमें जोखिम अधिक होता है और लाभ कम। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि के संतुलन की जरूरत होती है ताकि पूर्ति का माँग से समायोजन किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि वस्तुओं के उत्पादन , वितरण तथा उपभोग पर नियन्त्रण किया जाए।

इसके लिए सरकार को भौतिक नियन्त्रणों और मौद्रिक तथा राजकोषीय विधियों की युक्तियाँ निकालनी पड़ती है। फिर , अल्पविकसित देशों में व्याप्त रहने वाली आर्थिक तथा सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए ऐसी विधियाँ अनिवार्य हैं। "ऐसे देशों में, सामाजिक मतभेदों को तोड़ना और आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त मनोवैज्ञानिक आदर्श सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का निर्माण करना राज्य सरकार का सर्वोपरि कर्त्तव्य बन जाता है।"

प्रो. आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को नौ वर्गोंमें विभाजित किया है। लेकिन मोटे तौर पर आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने और समाज के आर्थिक जीवन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी संस्थानों व सरकार द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य इस प्रकार है:-

1. संस्थानिक ढाँचे में परिवर्तन करना (Change Institutional Structure):-आर्थिक विकास की आवश्यक विधियों में से यह एक है कि अल्पविकसित देशों में लोगों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक वृत्तियों में परिवर्तन लाया जाए। ऐसे समाजों में धार्मिक तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ आर्थिक विकास की प्रेरक नहीं होतीं। संस्थानिक ढाँचा, विचारशील व्यक्तिवादी व्यवहार को , प्रतियोगिता तथा उद्यम की भावना को प्रोत्साहन नहीं देता। यदि आर्थिक विकास करना है तो संयुक्त परिवार , जाति या बिरादरी और धार्मिक विश्वास की खाई में घिरी सामाजिक वृत्तियों, मूल्यों और संस्थाओं को बदलना पड़ेगा। इनके लिए सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है। पर, 'सामाजिक क्रान्ति'का यह अभिप्राय नहीं कि वर्तमान संस्थाओं को एकदम उखाड़ फेंका जाए। परिवर्तन को विकास सम्बन्धी होना होगा अन्यथा तीव्र सामाजिक परिवर्तनों से असंतोष , निराशा, अशान्ति और हिंसा फैलेगी। फिर ये कारण आर्थिक वृद्धि में बाधक होंगे।

यदि सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन शुरू हो जाए , तो लोग नए अवसरों को ग्रहण कर लेंगे और वे फिर संस्थाओं में और अधिक परिवर्तन करेंगे। परन्तु ऐसी स्थिति में परिवर्तन के आधारभूत कारण का पता लगाना कठिन है। नए अवसर कई तरह से आ सकते हैं। "नए अविष्कार नई वस्तुओं का निर्माण कर सकते हैं, अथवा पुरानी वस्तुओं की उत्पादन-लगातें घटा सकते है। नई सड़के , नए जहाज-मार्ग अथवा संचार में अन्य सुधार, व्यापार के नए सुवअसर प्रदान कर सकते है। युद्ध अथवा स्फीति नई माँगें उत्पन्न कर सकती है। देश में विदेशी आ सकते हैं , जो धंधे ला सकते हैं , नई पूँजी लगा सकते हैं या रोजगार के नए मौके दे सकते हैं। "इस प्रकार के नए अवसर संस्थाओं में परिवर्तन लाते हैं। ऐसे परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं और लक्ष्य किए जा सकते हैं। इनको नवप्रवर्तक , 'नए व्यक्ति'चालू करते हैं जो अतीत से सम्बन्ध तोड़ने का साहस करते हैं और पुराने संस्थानिक ढाँचे को नए परिवेश में ढाल देते हैं।

ये नवप्रवर्तक शहर में रहने वाले होते हैं। ये राजनैतिक तथा सामाजिक शक्तियों का मुकाबला तथा विरोध करते हैं। आर्थिक क्षेत्र में अधिक बड़े तथा नाए अवसर प्रदान करके , ये अन्ततः पुराने विश्वासों तथा संस्थाओं को बदलने में सफल होते हैं। इसी प्रकार विदेशियों में सम्पर्क समाज के संस्थानिक ढाँचे को बदलने का कारण बन सकता है। भारत में 19वीं शताब्दी में रेल-मार्गों के निर्माण, पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना ने सामाजिक तथा पारिवारिक बंधनों को शिथिल करने में सहायता दी थी। सामाजिक विवेकाशीलता की नई वृत्ति ने ही देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता से प्रमुख आन्दोलनों को जन्म दिया था। सबसे बढ़कर, संस्थानिक ढाँचे को प्रभावित करने में सरकार की महत्वपूर्ण कार्य करती है।

2. संगठनात्मक परिवर्तन करना (Making Organizational Changes):-अल्पविकसित देशों के विकास में संस्थानिक परिवर्तनों के साथ-साथ संगठनात्मक परिवर्तनों का भी बहुत महत्व है। इसके अन्तर्गत बाजार में आकार का विस्तार करना तथा श्रम-बाजार को संगठित करना शामिल है। ये दोनों कार्य राज्य द्वारा ही सम्भव हो सकते है।

(क) बाजार का विस्तार (Market Expansion) - सरकार ही बाजार के विस्तार के लिए यातायात एवं संचार के साधनों का विकास कर सकती है क्योंकि निजी उद्यम की इनको बढ़ने की समर्थ नहीं होती है। इसके अतिरिक्त उद्योगों एवं कृषि विकास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु संस्थाओं का निर्माण एवं विकास भी सरकार ही कर सकती है जैसे , राज्य सहकारी बैंक, भूमि बन्धक बैंक, औद्योगिक बैंक, वित्तीय तथा निवेश निगम आदि।

(ख) श्रम-बाजार का संगठन (Labor Market Organization)-दूसरी ओर, श्रम-बाजार को संगठित करना भी सरकार का कार्य होता है। संगठित श्रम-बाजार से उत्पादन में वृद्धि होती है। श्रम संघों को सरकार मान्यता देकर श्रम को संगठित होने में सहायता करता है। काम करने के घण्टे , मजदूरी भुगतान, औद्योगिक झगड़ों को निपटाना, सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित अधिनियम बनाना सरकार के कार्यभाग में ही आते हैं। ऐसे अधिनियमों के ठीक प्रकार पालन से श्रमिकों एवं मालिकों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित होते हैं , श्रम की कार्यकुशलता बढ़ती है , उत्पादन में वृद्धि होती है तथा लागतों में कमी। जिससे आर्थिक विकास की गति तीव्र होती है। ऐसी अर्थव्यवस्था में श्रम अगतिशील होता है। अधिकतर लोग ग्रामीण होते हैं और कृषि में संलग्न होने के कारण शहरों में जाना पसन्द नहीं करते और न ही उन्हें शहरों में रोजगार सम्बन्धी सूचना प्राप्त होती है। गाँवों में रोजगार सम्बन्धी सूचना केन्द्र तथा शहरों में रोजगार दफ्तर खोलकर सरकार श्रम की गतिशीलता

बढ़ाने में सहायक हो सकती है। विकास के साथ-साथ जब श्रमिक-वर्ग की गाँवों, से शहरों की ओर प्रस्थान करता है तो शहरीकरण की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जैसे निवास , जल, बिजली, गंदी बस्तियों का निर्माण, परिवहन आदि जिनका समाधान केवल सरकार ही कर सकती है। श्रमिकों के लिए भवन-निर्माण, चिकित्सा, शिक्षा, पार्क, परिवहन, जल, बिजली आदि की सुविधाओं का प्रबन्ध सरकार द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

3. कृषि का विकास करना (Develop Agriculture):-अल्पविकसित देशों में प्रमुख व्यवसाय कृषि होती है और राष्ट्रीय आय के आधे से अधिक भाग का योगदान देती है। इसके बावजूद , कृषि गतिहीनता की स्थिति में रहती है। कृषि में संलग्न व्यक्तियों की संख्या के सम्बन्ध में राष्ट्रीय आय का भाग आनुपातिक रूप से कम है। अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का 70 प्रतिशत से अधिक भाग कृषि में लगा है, जबकि वह राष्ट्रीय आय में 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत के लगभग योगदान देता है। इसका आधारभूत कारण यह है कि प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता बहुत कम होती है। कम उत्पादन के कारण हैं: जो जोतों का अनार्थिक आकार , भूमि-जोतों का बिखरा होना, दोषपूर्ण भूमि-पट्टा व्यवस्था जिसे ऊँचे लगान विशिष्टता प्रदान करते हैं , और पट्टे की असुरक्षिता, समुचित ऋण सुविधाओं का अभाव और ऋण बोझ , सिंचाई-सुविधाओं का अभाव और वर्षा पर निर्भरता , उत्पादन के प्राचीन तरीकों का प्रयोग तथा भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव। अल्पविकसित देशों में कृषक दरिद्र, निरक्षर तथा अबोध होते हैं। उनमें संगठन का अभाव होता है। उनके पास भूमि में सुधार करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं होती। प्रथाएँ तथा परम्पराएँ उनके जीवन का नियमन करती है। इसलिए भूमि-सुधार करने और कृषि विकास के लिए योजनाएँ बनाने का काम सरकार के कार्य के अन्तर्गत आता है।

(क) उत्पादकता में वृद्धि (Increase Productivity)- योजना की सफलता अन्ततः इस बात पर निर्भर रहेगी कि कृषि उत्पादकता कहाँ तक बढ़ती है। कृषि उत्पादन में वृद्धि इसलिए आवश्यक है ताकि उद्योग की कच्चे माल की आवश्यकताओं को पूरा किया जाए, खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता प्राप्त की जाए, कीमत-वृद्धि को रोका जाए, विकास के लिए अधिक साधन जुटाए जाएँ और अर्थव्यवस्था के अप्रयुक्त तथा अल्प-प्रयुक्त मानव-शक्ति साधनों का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जाए।

ग्राम-स्तर पर कृषि उत्पादन योजनाएँ तैयार करने में ये प्रमुख तत्व आते हैः

1. सिंचाई सुविधाओं का पूर्ण उपयोग, जिसमें लाभ उठाने वालों के लिए खेत की नालियों को अच्छी हालत में रखना, उनकी मरम्मत, और समुदायिक सिंचाई निर्माण कार्य की देखभाल शामिल है;

2. अनेक फसलें उगाने के क्षेत्र में वृद्धि करना;

3. गाँव में सुधारे हुए बीजों को बढ़ाना और सब काश्तकारों में उनका वितरण;

4. उर्वरकों का वितरण;

5. मिश्रित खाद और हरी खाद के प्रयोग के लिए प्रोग्राम;

6. सुधारे हुए कृषि तरीकों को अपनाना ; उदाहरणर्थ, भूमि-संरक्षण, परिधि-बाँध बनाना, शुष्क खेती करना, भूमि को कृषि योग्य बनाना, पौधों का संरक्षण आदि;

7. गाँव में नए छोटे-छोटे सिंचाई निर्माण-कार्य प्रोग्राम शुरू करना सामुदायिक और व्यक्तिगत आधार दोनों के माध्यम से;

8. सुधारे हुए कृषि औजारों के लिए प्रोग्राम;

9. सब्जियों तथा फलों के उत्पादन बढ़ने के प्रोग्राम;

10. अण्डों, मछली, तथा दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के प्रोग्राम;

11. पशु-पालन, उदाहरणार्थ, अभिजनक साँडों की पूर्ति , कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों की स्थापना और बेकार साँडों की बधिया करना; और

12. गाँव में ईंधन-बागानो तथा चरागाहों के विकास के प्रोग्राम।

(ख) भूमि-सुधार (Land Reform)- कृषि विकास प्रोग्रामों की सफलता इस बात पर निर्भर रहेगी कि सरकार किस सीमा तक भूमि-सुधार विधियाँ अपनाती है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार , भूमि-सुधार विधियों के उद्देश्य दोहरे हैं

1."कृषि उत्पादन की वृद्धि में स्थित उन बाधाओं को दूर करना , जो अतीत से विरासत में प्राप्त कृषि-ढाँचे से उत्पन्न होती हैं। इसे दक्षता तथा उत्पादकता के ऊँचे स्तरों वाली कृषि-व्यवस्था के यथासम्भव शीघ्रतम विकास के लिए स्थितियाँ उत्पन्न करने में सहायक होना चाहिए।"और

2.''कृषि-व्यवस्था के भीतर शोषण तथा सामाजिक अन्याय के सब तत्वों को समाप्त करना , कृषक को सुरक्षा प्रदान करना और ग्राम जनसंख्या के सब वर्गों को प्रतिष्ठा पद तथा अवसर की समानता का विश्वास दिलाना।''

भूमि-सुधार में निम्नलिखित तत्व आते हैं:

1. मध्यवर्तियों की समाप्ति;

2. मुजारों के पटटे की सुरक्षा;

3. मुजारों को भूमि खरीदने का अधिकार देना जिसकी वे काश्त करते हैं;

4. मुजारों द्वारा भूमि पर किए गए स्थायी सुधारों के मुआवजे का प्रबन्ध;

5. भू-स्वामियों द्वारा वसूल किए जाने वाले लगान सीमित करना;

6. कृषि जोतों की सीमा निर्धारित करना; तथा

7. जोतों की चकबन्दी करना

भूमि सुधारों की गड़बड़ में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के सतत विकास के लिए हमें कृषि-कीमतों में अनुसचित उतार-चढ़ावों से बचना है और उचित मात्रा में स्थिरता बनाए रखनी है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि कृषि वस्तुओं की कीमतें नीचे स्तर पर रखी जाएँ क्योंकि नीची कीमतें उत्पादन को हतोत्साहित करती हैं। इसलिए, कृषि-वस्तुओं की उचित कीमतें नियत की जाएं जिनकी गारंटी सरकार दे।

4. प्राकृतिक संसाधनों का विकास (Development of Natural Resources):-अल्पविकसित देशों मे प्राकृतिक संसाधन कम विकसित या अविकसित होते हैं। जो देश उपनिवेश रहे हैं उनमें विकसित राष्ट्रों ने प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध तथा विनाशकारी उपयोग निजी स्वार्थ के लिए किया है। ऐसी हालत में प्राकृतिक संसाधनों विकास में निजी उद्यम पर छोड़ना राष्ट्रहित में नहीं है। इसलिए सरकार का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि देश के आर्थिक विकास के लिए खनिज , वन आदि संसाधनों का सर्वेक्षण करवाएं और उनके उपयोग के लिए उचित नीति अपनाए तथा उनसे सम्बन्धित उद्योग स्थापित करे या करने में सहायता दे। सरकारी

अधिकारी संरक्षण सम्बन्धी अनेक उपायों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की गति एवं जीवन-काल को प्रभावित कर सकते हैं।

5. औद्योगिक विकास करना (To Develop Industries):-विश्व का आर्थिक इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि आज के युग में विकसित कहे जाने वाले देशों में आधारभूत उद्योगों की स्थापना की पहल वहाँ की सरकार द्वारा की गयी है। सच तो यह है कि यदि सार्वजनिक क्षेत्र का विकास न हुआ होता तो अधिकांश भारी उद्योग पृथ्वी की गोद में खनिज पदार्थों की तरह छिपे पड़े रहते है विश्व की अर्थ-व्यवस्थाओं का तब स्वरूप ही कुछ और होता। श्री गरशनक्रोन का इस सम्बन्ध में कहना है कि "विकास कार्यों को प्रारम्भ करते समय कोई देश जितना अधिक पिछड़ा हुआ होता है उसे उतना ही अधिक सरकारी संरक्षण तथा सरकारी उपक्रों के विस्तार की आवश्यकता होती है।"आज विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ वाणिज्यिक एवं औद्योगीक उपक्रमों की स्थापना व संचालन में सरकार द्वारा सक्रिय भूमिका न निभाई जाती हो।

अल्पविकसित देशों में निजी उद्यम केवल उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में ही पाया जाता है। भारी तथा आधारभूत उद्योगों में पूँजी-निवेश बहुत अधिक मात्रा में करना पड़ता है तथा उनसे उत्पादन दीर्घ-अवधि में प्राप्त होता है। इसलिए निजी उद्यम में ऐसे उद्योग स्थापित करने की क्षमता नहीं पाई जाती। फिर , कई उपभोक्ता उद्योग (जैसे कपड़ा , चीनी, आदि) पुराने होने के कारण उनमें नवीनीकरण की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, निर्यात प्रोत्साहन तथा आयात स्थानापन्नता करने वाले उद्योगों की स्थापना आर्थिक विकास के लिए बहुत आवश्यक होती है। ऐसे देशों में उद्योग केवल कुछ बड़े नगरों में ही केन्द्रित होते हैं , जबकि देश का अधिकतर भाग उद्योगरहित और पिछड़ा होता है। ऐसा इसलिए कि उपरिसुविधाओं के अभाव के कारण निजी उद्यम उन क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने का साहस नहीं करता।

इन सभी कमियों को दूर करना और एक सुनिश्चित राष्ट्रीय औद्योगिक नीति को अपनाना सरकार का कार्यभाग होता है। छोटे , बड़े और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करना , उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना, विदेशों से उद्योगों के लिए कच्चा माल , पूँजी पदार्थ एवं तकनीकों को आयात करना , लोक उद्योग एवं संयुक्त उद्योग स्थापित करना तथा राष्ट्रीय हित में विदेशी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना , ये सभी सरकार के कार्य के अन्तर्गत आते हैं।

सरकार ही लोहा और इस्पात, भारी इन्जीनियरिंग, भारी बिजली, भारी रसायन, रासायनिक खाद आदि जैसे आधारभूत उद्योगों को स्थापित करने के क्षमता रखता है। कई प्रकार की आवश्यकता उपभोक्ता वस्तुओं से सम्बन्धित नवीन उद्योग निजी उद्यम को आकर्षित एवं प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर सकती है , जैसे, यातायात एवं संचार के साधन , सस्ती भूमि, जल, विद्युत, करों में छूट , आदि। अन्तिम, देश के सन्तुलित विकास के लिए सरकार प्रत्येक प्रदेश की भौतिक स्थिति एवं साधन सम्पन्नता के अनुरूप औद्योगिक नीति अपना सकती है जैसे, कृषि- प्रधान प्रदेश में कृषि से सम्बन्धित उद्योग स्थपित करने तथा लोहा प्रधान क्षेत्र में इस्पात उद्योग स्थापित करने। इस प्रकार , सरकार का देश के औद्योगीकरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

6. सामाजिक ढाँचों का विकास (Development of Social Sructures):-सरकार को चाहिये कि प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक सेवाओं के विकास की योजना बनाए। यदि आवश्यकता यह हो कि सिंचाई-सुविधाएँ तुरन्त प्रदान की जाएं तो बड़ी नदियों पर बाँध बनाने की अपेक्षा छोटी सिंचाई सुविधाओं पर संकेन्द्रण करके उसे पूरा किया जाए। फिर , सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने का आवश्यक रूप में यह अर्थ नहीं है कि

सरकार उनकी मालिक हो और उनका चालन करें। सरकार एक विशिष्ट परियोजना की योजना स्वीकार कर सकती है और किसी निजी संस्था को वित्त तथा अन्य निर्माण-सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान कर सकती है , जोकि उसका निर्माण करे और उसकी मालिक हो। हाँ , उसके कार्यकरण का नियमन सरकार कर सकती है। वास्तव में , किसी योजना का स्वामित्व तथा संचालन सरकार करे या निजी उद्यम, यह उसकी प्रवृत्ति तथा महत्व पर निर्भर रहता है। भारत में, परिवहन तथ संचार साधनों का विकास सरकारी क्रियाओं के अन्तर्गत आता है। भारत जैसे विशाल देश में उनके महत्व को ध्यान में रखते हुए रेल-मार्गों , वायु- मार्गों तथा संचार के साधनों का स्वामित्व सार्वजिनक तथा निजी, दोनों ही, क्षेत्रों के हाथों में है, भले ही समस्त प्रचालनों का नियमन सरकार करती है।

(क) शिक्षा (Education)-शिक्षा के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं है। जैसाकि प्रोफेसर मिर्डल ने कहा है , “बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास प्रयोग शुरू करने की बात मुझे निरर्थक मालूम होती है”आर्थिक विकास के लिए श्रम का गुण ही अधिक महत्वपूर्ण है। यदि अकुशल श्रमिक अधिक देर तक भी काम करें, तो भी उनकी प्रति व्यक्ति आय कम होगी। निरक्षर तथा अप्रशिक्षित व्यक्तियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे जटिल मशीनरी का चालन और देख-रेख कर लेंगे। उनमें निवेश करके ही उनकी उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। शिक्षा के माध्यम से ही राज्य प्रभावशाली श्रम-पूर्ति और राष्ट्र की उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है। शिक्षा प्रोग्राम विस्तृत तथा विविध होना आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा की जरूरत है ताकि स्कूल जाने की आयु वाला प्रत्येक बालक अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर सके। विश्वविद्यालयों के लिए विद्यार्थी प्रदान करने और अपेक्षाकृत अधिक शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ देने के लिए और अधिक माध्यमिक स्कूल खोलने की जरूरत है। इसके साथ ही बिजली , वर्करों, शिल्पियों, अध्यापकों, कृषि सहायकों इत्यादि को शिक्षा देने के लए प्रशिक्षण संस्थाओं की जरूरत है। उच्चतर शिक्षा-श्रेणीकरण में विश्वविद्यालयशिक्षा तथा अनुसंधान संस्थाएँ आती हैं , जो डॉक्टरों, प्रशासकों, इन्जीनियरों और सब प्रकार के प्रशिक्षित व्यक्तियों की निरन्तर अधिक संख्या निकालें। अल्पविकसित देशों में, शिक्षा जैसे विस्तृत तथा अनेक रूप में निवेश केवल राज्य की छत्रछाया में ही सम्भव है।

ऐसे देशों में शिक्षा पर निवेश के महत्व पर आवश्यकता के सम्बन्ध में दो मत हैं। मानव पूँजी में निवेश अत्यधिक उत्पादक होता है। एक अल्पविकसित देश को कृषि तथा औद्योगिक वर्करों , डॉक्टरों, इन्जीनियरों, अध्यपकों, प्रशासकों आदि की जरूरत होती है , जोकि वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को अधिक बढ़ाएँ। परन्तु वित्तीय साधनों की कमी के कारण बहुसंख्यक लोगों को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करने की समस्या अल्पविकसित देशों की क्षमता के बाहर की बात है। जो भी विधियाँ उपलब्ध होती हैं , उन्हें प्राथमिकताओं के आधार पर विभाजित करना पड़ता है और प्राथमिकताओं के प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। शिक्षा उपभोक्ता सेवा भी है और निवेश सेवा भी , जहाँ तक शिक्षा निवेश है , यह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादकता बढ़ाती है।

शिक्षा और डॉक्टरों , इन्जीनियरों, अध्यापकों, प्रशासको के शिक्षण पर खर्च की गई मुद्रा भी उतना ही निवेश है , जितना कि बाँध बनाने में खर्च की गई मुद्रा। परन्तु जब कृषकों को शिक्षित करने के साक्षरता-आन्दोलन पर मुद्रा खर्च की जाती है , तो प्रोफेसर लुईस के अनुसार यह प्रत्यक्षतः उत्पादन नहीं होती। उनकी धारणा है कि “शिक्षा का वह भाग , जोकि लाभदायक निवेश नहीं है , अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के -यथा वस्त्र, मकान, या ग्रामोफोन के - बिल्कुल बराबर होता है ,”क्योंकि वह कृषकों , नाईयों, घर के नौकरों को ‘‘कुछ

अधिक (पुस्तकों, समाचार पत्रों का) आनन्द लेने या कुछ अधिक समझने में " सहायक होता है। पर , प्रोफेसर गॉलब्रेय जनसाधारण को शिक्षित करने में निवेश को भी उतना ही उत्पादक मानता है। उसका तर्क है कि "कृषकों तथा श्रमिकों को निरक्षरता से बचाना अने आप में एक ध्येय हो सका है। परन्तु किसी भी प्रकार की कृषि प्रगति के लिए यह एक अनिवार्य कदम भी है। दुनिया में कहीं भी ऐसा निरक्षर कृषक वर्ग नहीं है , जो प्रगतिशील हो और कहीं भी ऐसा साक्षर कृषि वर्ग नहीं है जो प्रगतिशील न हो। इस दृष्टि से शिक्षा , निवेश का अत्यधिक उत्पादक रूप् धारण कर लेती है।"

(ख) लोक स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन (Public Health and Family Planning) -एक अन्य क्षेत्र , जिसमें राज्य ठोस कदम उठा सकता है , लोक स्वास्थ्य का है। उत्पादकता तथा श्रम की दक्षता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि लोगों का स्वास्थ्य बराबर सुधारा जाए। लोक स्वास्थ्य विधियों के अन्तर्गत ग्राम तथा नगर , दोनों ही क्षेत्रों में वातावरण सम्बन्धी स्वच्छता में सुधार-थमे हुए गंदे पानी को हटाना , गंदी बस्तियों की स्वच्छता, अच्छे मकानों का प्रबंध, स्वच्छ जल की पूर्ति, मल प्रवाह की अच्छी सुविधाएँ, छूत रोगों का नियंत्रण, चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-सेवाओं का प्रबन्ध करना - विशिष्ट रूप से मातृ एवं शिशु कल्याण और स्वास्थ्य शिक्षा तथा परिवार नियोजन और सबसे बढ़कर, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा- सेविवर्ग के प्रशिक्षण के लिए प्रबन्ध करना। इस सबके लिए लोक प्राधिकारियों की ओर से योजनाबद्ध प्रयत्न आवश्यक है।

अल्पविकसित देशों में लोक स्वास्थ्य विधियाँ मुख्यतः दो कारणों से बहुत महत्व धारण कर लेती हैं। प्रथम, वे श्रम की उत्पादकता तथा दक्षता बढ़ाकर विकास प्रक्रिया में सहायता होती हैं ; और दूसरे, वे मृत्यु-दर घटाकर जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ती हैं और इस प्रकार सरकार के लिए आवश्यक बना देती हैं कि वह परिवार नियोजन तथा शीघ्र विकास प्रोग्राम अपनाए। परन्तु यदि जनसंख्या की वृद्धि नहीं रोकी जाती , तो विकास के सब प्रत्यन व्यर्थ होंगे क्योंकि अल्पविकसित देशों मे मृत्यु-दर पहले ही घट रही है , प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने और जीवन का स्तर सुधारने के लिय यह अनिवार्य है कि जनंसख्या वृद्धि की दर रोकी जाए और परिवार नियोजन प्रोग्रामो को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाए। परिवार नियोजन का मतलब है सोच-समझ कर जन्म-दर घटाना। भारत पहला अल्पविकसित देश है जिसने सरकारी स्तर पर परिवार नियोजन प्रोग्राम अपनाया है। परिवार नियोजन नीति के निम्न तत्व हो सकते हैं:

परिवार नियोजन के सम्बन्ध में शिक्षित करना , जिससे सैक्स शिक्षा, विवाह सम्बन्धी परामर्श तथा बालक देख-रेख के विषय में मार्ग-दर्शन शामिल हों। सामाजिक संगठन, फिल्में, रेडियो तथा साहित्य इसके माध्यम हो सकते हैं। परिवार नियोजन सेवाएँ बहुत ही बड़े पैमाने पर प्रदान की जाएँ। परिवार नियोजन सेवा को सामान्य स्वास्थ्य तथ चिकित्सा सेवाओं के साथ जोड़ दिया जाए। ग्राम क्षेत्रों, औद्योगिक तथा अन्य संस्थाओं में परिवार नियोजन अस्तपा खोले जाएँ। परिवार नियोजन की कला जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए चलती-फिरती यूनिटें हों। स्वेच्छाकृत संगठनों की सहायता भी ली जा सकती है। परिवार नियोजन केन्द्रों को चाहिए कि मुफ्त परामर्श दें। निरोधों का वितरण और यहाँ तक कि नसबन्दी भी मुफ्त करें।

7. आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाना (Making Distribution of Income Fairer):- अल्प विकसित देशों में राज्य का एक प्रमुख कार्य आय-वितरण की विषमताओं को कम करना है। फिर , समाजवादी समाज के आदर्श के लिये आर्थिक असमानताओं को कम करना और भी जरूरी हो जाता है। सरकार को चाहिए कि वह ऐसे कदम

उठाये कि जिससे उत्पादन की प्रेरणाओं को कम किये बिना , धन एवं आय के वितरण की विषमताओं को दूर किया जा सके। यद्यपि लुइस के अनुसार "आय का वितरण अल्प-विकसित देशों के लिये विभिन्न प्रकार की कठिनाईयाँ पैदा करता है क्योंकि ये देश समानता को , प्रोत्साहनों और बचत के उच्च स्तर के साथ मिलने की प्रवृति रखते है किन्तु सशक्त राजकोषीय नीति द्वारा इन समस्याओं का हल खोजा जा सकता है।"

8. निवेश की दर में वृद्धि करना (Increasing the Rate of Investment) -अल्प विकसित देशों में बचत की दर निवेश की आवश्यकता की तुलना में नीची होती है। अपर्याप्त बचत-निवेश के कारण सरकार के लिये यह जरूरी हो जाता है कि पूँजी निर्माण के कार्य को बढावा दिया जाये। इसके लिये राज्य करारोपण तथा मुद्रा-स्फीति द्वारा लोगों को अधिक बचत करने के लिये मजबूर कर सकता है। हाँ! निजी बचतों की अपर्याप्तता की दशा में सरकारी बचतों को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिये और साथ ही उपयुक्त मौद्रिक तथा राजकोषीय उपायों द्वारा निजी बचतों को गतिशील करना चाहिए।

9. उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता में वृद्धि करना (Increasing Mobility of Means of Production):- अल्प विकसित देशों की मुख्य समस्या विकास के वांछित साधनों की कमी व उनकी सापेक्षिक अगतिशीलता की है जबकि विकास की इन सभी बाधाओं को दूर करना सरकार के लिए अत्यावश्क हैं इसलिये राज्य को चाहिये कि शिक्षा प्रणाली एवं प्रशिक्षण सुविधाओं द्वारा श्रमिकों को वांछित दक्षता व तकनीकी ज्ञान प्रदान कराया जाये। जहाँ तक पूँजी की कमी और उसकी अगतिशीलता का प्रश्न है , सरकार इस सम्बन्ध में विदेशी पूँजी का आयात और घरेलू बचतों को गतिशील बनाने हेतु वित्तीय व बैकिंग संस्थाओं की स्थापना भी कर सकती है।

10.मौद्रिक नीति बनाना (Making Monetary Policy):-मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से मुद्रा की मात्रा का नियमन , साख-सृजन, मुद्रा-स्फीति को रोकना एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना आदि कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। विकास की बढ़ती हुई गति के साथ-साथ मुद्रा व साख की मात्रा को संतुलित बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। अर्थव्यवस्था में राज्य मौद्रिक नीति अपनाकर बैकिंग प्रणाली का विस्तार , साख विस्तार , साख नियंत्रण और कीमतों मे स्थिरता लाती है। ये सब कार्य राज्य का केन्द्रीय बैंक करता है। इस नीति के लोगों में बचत करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है और इस बचत को सरकार देश के विकास कार्य पर खर्च करती है।

11. राजकोषीय नीति (Fiscal Policy):- राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकारी आय , सरकारी व्यय , सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ-प्रबन्धन आदि को सम्मिलित किया जाता है। सरकार की आय-व्यय सम्बन्धी नीति आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निम्न पाँच रूपों में प्रभावित करती है -

1. पूँजी संचयन में वृद्धि करने हेतु,
2. आय के वितरण में परिवर्तन लाने हेतु
3. साधनों के वितरण को प्रभावित करने हेतु,
4. मुद्रा-स्फीति पर रोक लगाने हेतु, और
5. मन्दी तथा बेरोजगारी आदि को दूर करने के लिए।

इसके अतिरिक्त राजकोषीय नीति का उपयोग विदेशी व्यापार पर नियंत्रण रखने , निर्यातों, को प्रोत्साहित करने, विलासताओं के आयात का नियमन करने और विदेशी विनिमय कोष को बढ़ाने के लिए भी किया जा सकता है। राजकोषीय नीति द्वारा सरकार बचत, निवेश तथा पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाकर राष्ट्रीय

आय और रोजगार में वृद्धि करती है। इसके लिए सरकार उचित कर , बजट तथा सार्वजनिक व्यय एवं उधार-ग्रहण नीतियां अपनाती हैं। जो राजकोषीय नीति के अंग हैं। इस नीति के अन्तर्गत ही राज्य भुगतान शेष एवं विदेशी विनिमय की समस्याओं का समाधान करके, स्फीति को रोककर, देश में आर्थिक विकास की दर को बढ़ने में सहायक होता है।

12. मूल्य नीति (Pricing Policy):-विकास की प्रारम्भिक अवस्था में भारी मात्रा में विनियोग किये जाने के कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ने लगती है। यह कीमत-स्फीति प्रायः मुद्रा स्फीति (हीनार्थ प्रबन्धन) को परिणाम होती है। मूल्य-स्तर में होने वाली यह वृद्धि योजनाओं की विकास लागत को बढ़ा देती है जिससे आर्थिक विकास के अर्थ-प्रबन्धन में कठिनाई होने लगती है। फिर , इस मूल्य-वृद्धि का सामान्य जता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह एक उपयुक्त एवं समन्वित मूल्य-नीति द्वारा कीमत स्थायित्व रखकर विकाय कार्य को तरलता प्रदान करें।

13. विदेश व्यापार की नीति (Foreign Trade Policy):-विदेशी व्यापार की नीति का उद्देश्य विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देना और विदेशी विनिमय कोषों की सुरक्षा करना है। देश का भुगतान संतुलन अनुकूल बना रहे और विदेशी विनिमय कोषों को अपव्यय न हो सके , इस दृष्टि से सरकार प्रायः विनिमय नियन्त्रण की विभिन्न रीतियाँ अपनाती रहती है। अल्पविकसित देशों में विदेशी व्यापार का आकार बहुत सीमित होता है क्योकिं ऐसे देश कुछ प्राथमिक वस्तुओं जैसे खनिज पदार्थ, कच्चा माल, कृषि पदार्थ आदि का निर्यात करते हैं और उनके बदले अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित उपभोक्ता वस्तुएँ तथा पूँजी पदार्थ आयात करते हैं। कच्चे माल की अपेक्षा निर्मित माल और पूँजी पदार्थों का मूल्य अधिक होने के कारण आयातें नियातों से अधिक होती हैं जिससे भुगतान सन्तुलन तथा विदेशी विनिमय की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें राज्य की हल कर सकता है।

इनके समाधान के लिए विदेशी सहायता विकसित देशों की सरकारों से तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त करना , राज्य का कार्यभाग होता है। इसके अतिरिक्त अनावश्यक अर्द्ध-विलासताओं एवं विलासताओं के आयात पर सरकार ही प्रतिबन्ध लगा सकती है। आयात-प्रतिस्थापन तथा निर्यात-प्रोत्साहन के लिए उचित नीतियाँ अपना कर सरकार भुगतान सन्तुलन एवं विदेशी विनिमय की समस्याओं को हल कर सकती है। इनके लिए , राज्य आयात प्रतिस्थापना उद्योगों को स्थापित करने हेतु वित्तीय , तकनीकी आदि सहायता प्रदान करती है। दूसरी ओर , निर्यात-प्रोत्साहन के लिए निर्यात उद्योगों को पूँजी पदार्थ , कच्चा माल, वित्त आदि अनेक सुविधाएँ देकर बढ़िया एवं सस्ता माल बनाने मे सहायक सिद्ध होती है। इसके लिए सरकार निर्यात करों में छूट द्वारा , विदेशों के साथ द्विपक्षीय समझौतों द्वारा राज्य व्यापार निगत की स्थापना करके , विदेशों में औद्योगिक मेलों एवं प्रदर्शनियों में भाग लेकर भी सहायता करती है। इस प्रकार राज्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा बाजार का विस्तार करके साधनों के उचित प्रयोग द्वारा आय , निवेश तथा रोजगार को बढ़ाने में सहायत होता है।

अल्पविकसित देशों में सरकार के कार्य में स्वच्छ प्रशासन स्थापित करना , निर्धन-वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाना , प्रदूषण को रोकना , स्वच्छ जल की व्यवस्था करना , और बेरोजगारी दूर करना इत्यादि सम्मिलित हैं। प्रो. हरमन फाइनर ने राज्य के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "यदि अल्पविकसित देश आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना चाहते हैं तो इन देशों की सरकारों को चाहिए कि समाज को निम्न सेवायें प्रदान करें - व्यवस्था , सामाजिक, न्याय, पुलिस, प्रशासन, प्रतिरक्षा, उत्पादन में योग्यता ,

निवेश के लिए अनुकूल वातावरण, सम्पत्ति सम्बन्धी उचित व परिभाषित कानून व अधिकार, स्थिर सुदृढ़ मुद्रा व्यवस्था तथा मुड़ा के उचित प्रताप तथा राजनैतिक स्थिरता व शान्ति।''

11.5 बाजार और आर्थिक विकास (Markets and Economic Development)

आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। इसमें जो कुछ निर्णय लिए जाते हैं और उनके आधार पर जो क्रियाकलाप होते हैं उनका बाजार से सीधा सम्बन्ध होता है। बाजार दरअसल वस्तु विशेष के विक्रेताओं और क्रेताओं का संगठन होता है। जो आपस में प्रतियोगिता करते हुए व्यवहार करते हैं। इन्हीं के व्यवहारों से या हम कह सकते हैं कि मांग और पूर्ति की दशाओं के आधार पर कीमतें निर्धारित होती है।

किसी भी देश के बाजार जितने अच्छे संगठित होते है वहां पर कीमतें सही निर्णय लेने में उतनी ही अधक सहायक होती है। लाभ की प्रेरणा से काम करने वाले उत्पादक उन्हें उद्योगों में साधनो में लगाते हैं जहां मांग की प्रबलता के कारण कीमतें आकर्षक होती है। बाजार संगठन अच्छा होने पर देश के सभी भागों में एक-सी कीमतें होती है और फिर इनके आधार पर साधनों का जो आंवटन होता है। वह विवकेपूर्ण होता है। परन्तु जब आय असमानताएं अधिक होती है तो बाजार संगठन अच्छा होते हुए भी साधनों का उचित आवंटन नहीं होता। इन परिस्थितियों में गैर-जरूरी वस्तुओं का उत्पादन अधिक होता है जबकि जरूरी वस्तुओं की भारी कमी बनी रहती है। विकसित देशों में प्रायः बाजार संगठन अच्छा होता है और उसके द्वारा साधनों का जो आवंटन होता है वह विवेकपूर्ण और कुशल होने के साथ-साथ विकास में सहायक भी होता है।

एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nation'में लिखा था कि "श्रम-विभाजन बाजार के आकार के द्वारा सीमित होता है। "आलिन ए. यंग ने एडम स्मिथ के उपरोक्त कथन की अपने ढंग से व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि निवेश-प्रेरणा बाजार के आकार द्वारा सीमित होती है। रेग्नरनर्क्से इस विचार को न केवल स्वीकार करते हैं, बल्कि वे इसके आधार पर अल्प-विकसित देशों के गरीबी के दुष्चक्र की व्याख्या भी करते है। अल्प-विकसित देशों में क्रय-शक्ति का अभाव होता है और घरेलू बाजार बहुत छोटा होता है। उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं की मांग थोड़ी होती है। इसलिए उनके उत्पादन के लिए पूँजी की मांग भी थोड़ी होनी स्वाभाविक है।

बाजार का आकार पूँजी के निवेश से सम्बन्धित प्रेरणा को सभी तरह की अर्थव्यवस्था में प्रभावित करता है। विनिमय पर आधारित अर्थव्यवस्था में बाजार का छोटा आकार पूँजी के अधिक प्रयोग को हतोत्साहित करता है। उद्यमकर्ता हमेशा ही बाजार में वस्तु की मांग को ध्यान में रखकर प्लांट का आकार तय करते है। उदाहरण के लिए यदि कार बनाने वाले प्लांट तीन आकार के है जिनमें वार्षिक क्षमताएँ 1 लाख, 5 लाख और 10 लाख कार उत्पादन कर सकने की हैं तो स्पष्ट है कि मॉरीशस , नेपाल, सूडान, मोरक्को, कीनिया आदि जैसे छोटे देशों में मोटर कार उत्पादित करने वाला कारखाना स्थापित ही नहीं किया जाएगा, क्योंकि इन देशों में कारों का बाजार सीमित है। आज वस्तुस्थिति यह है कि अल्प-विकसित देशों में राष्ट्रीय आय के स्तर बहुत नीचे होने के कारण उपभोग की वस्तुओं पर कुल व्यय बहुत कम होता है और इसलिए किभी भी उद्योग में भारी पूँजी लगाकर बड़े पैमाने पर कारखाने की स्थापना के लिए निवेशकों को प्रेरणा नहीं मिलती।

विनिमय प्रणाली पर आधारित अर्थव्यवस्था में उद्यमकर्ता जब वस्तु विशेष के बाजार को छोटा देखता है, तो वह उस उद्योग में प्रवेश नहीं करता। उसको लगता है कि यदि वह पूंजी-प्रधान ढंग से उत्पादन करने वाले बड़े कारखाने की स्थापना करेगा तो वह तकनीकी दृष्टि से कुशल होने पर भी आर्थिक दृष्टि से लाभदायक सिद्ध नहीं होगा। कभी-कभी इस विश्वास के साथ कुछ उद्यमकर्त्ता निवेश करते हैं कि वे विज्ञापन द्वारा अपनी वस्तु के प्रति लोगों को आकर्षित कर लेंगे और इस प्रकार उनकी वस्तु का बाजार वर्तमान में सीमित होते हुए भी भविष्य में बढ़ जायेगा लेकिन इस प्रकार कुल प्रभावक मांग को बढ़ा पाना आसान नहीं होता। अल्प-विकसित देशों में

जहां बहुत सारे लोग जीवन-निर्वाह के स्तर पर ही होते है , कुल प्रभावक मांग को बढ़ा पाना तो दूर रहा , किसी भी वस्तु के बाजार को फैला पाना भी कठिन होता है। अतः नर्क्से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "कम आय वाले देश में घरेलू बाजार का छोटा आकार उस बाजार के लिए माल पैदा करने वाली फार्मों तथा उद्योग में पूँजी निवेश में बाधक होता है और इस अर्थ में सामान्य रूप से विकास कार्य में भी रूकावट होता है।"

11.6 बाजार के आकार के निर्धारक तत्व (Factors Determining Market Size)

अल्प-विकसित देशों में बाजार का आकार छोटा होता है। इसलिए वहां पर निवेश प्रेरणा का अभाव होता है जो पूँजी-निर्माण की दर को नीचा रखता है। यह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है कि बाजार के विस्तार द्वारा निवेश-प्रेरणा को बढ़ा पाना सम्भव होता है जिससे गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ा जा सकता है।

कुछ लोग समझते है कि अल्प-विकसित देशों में मौद्रिक विस्तार द्वारा बाजार को बढ़ाया जा सकता है। नर्क्स के अनुसार यह विचाराधारा गलत है। इस गलत धारणा का कारण केंस के सिद्धान्त को अल्प-विकसित देश की परिस्थितियों में लागू करने की कोशिश है। नर्क्से का विचार है कि अल्प-विकसित देशों में केंसवादी अर्थशास्त्र के अर्थ में प्रभावक माँग की कमी नहीं होती। सभी अल्प-विकसित देशों में परम्परागत अर्थशास्त्र के अर्थ में क्रय-शक्ति का अभाव होता है। मतलब यह है कि इन देशों में उत्पादिता कम होने के कारण वास्तविक क्रय-शक्ति कम होती है और इसे मुद्रा के विस्तार द्वारा बढ़ा पाना सम्भव नहीं होता। देश की जनसंख्या का उसका भौगोलिक क्षेत्र भी घरेलू बाजार का आकार निश्चित नहीं करते। किसी देश की जनसंख्या अधिक है परन्तु उत्पादिता का स्तर नीचा होने के कारण प्रति व्यक्ति आय कम है तो वहां बाजार का आकार छोटो होगा। इसी तरह किसी अत्यन्त गरीब देश का भौगोलिक क्षेत्र बड़ा होने पर भी वहां बाजार का आकार छोटा ही रहेगा।

निस्संदेह परिवहन लागत तथा व्यापार अवरोध बाजार के विस्तार में बाधक होते हैं। सीमाशुल्क आयात कोटा प्रणाली , विनिमय-नियन्त्रण आदि व्यापार में बाधा उत्पन्न करते हैं। इससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार छोटा हो जाता है। परिवहन लागत अधिक होने पर बहुत सारी वस्तुओं के बाजार स्थानीय रह जाते हैं। अतः निवेशकों को निवेश के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं मिलती और पूँजी निर्माण का स्तर नीचा रहता है। 1951 में संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि कुछ अल्प-विकसित देश इतने छोटे हैं कि वहां के घरेलू बाजारों के आधार पर बड़े उद्योगों की स्थापना नहीं हो सकती। उन्हें अन्य विधियों के द्वारा अपने बाजारों का विस्तार करना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं है कि उपरोक्त रीतियों से बाजार का थोड़ा विस्तार होगा। सीमा-शुल्क हट जाने पर वस्तुओं के मूल्य कम होने पर उनकी मांग बढ़ेगी। लेकिन नीची उत्पादिता और थोड़ी राष्ट्रीय आय वाले देशों में इस प्रकार बाजार का विस्तार बहुत अधिक नहीं हो सकेगा। जहां तक परिवहन लागत में कमी द्वारा बाजार को फैलाने का प्रश्न है , इससे कुछ सफलता मिल सकती है। लेकिन परिवहन लागत में कमी का बाजार के विस्तार पर ठीक वही असर होता है जो दूसरी लागतों में कमी का होता है। इसलिए बाजार का विस्तार पर ठीक वही असर होता है जो दूसरी लागतों में कमी का होता है। इसलिए बाजार का विस्तार बढ़ने के लिए परिवहन लागत में कमी पर जोर देना ठीक नहीं है। चूँकि व्यक्तिगत उत्पादक विज्ञापन तथा विक्रय-कला द्वारा अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ा पाने में सफल हो जाते हैं , इसलिए कुछ लोगों की यह धारणा बन जाती है कि इस प्रकार बाजार का विस्तार हो सकता है , जो बाद में पूँजी निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। लेकिन जो बात किसी एक फर्म के विषय में सही है, वह संपूर्ण देश के विषय में ठीक नहीं है।

नर्क्से के अनुसार बाजार का आकार मुख्य रूप से उत्पादिता के स्तर पर निर्भर होता है। कुल मिलाकर समस्या पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादन की मात्रा द्वारा न केवल बाजार का आकार

निर्धारित होता है, बल्कि बाजार के विस्तार की सीमा भी निश्चित होती है। किसी भी देश में जनसख्या स्थित रहने पर भी न तो वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन स्थिर रहता और न ही उपभोग की मात्रा का का स्थिर रहना आवष्यक है। उत्पादिता के स्तर में सुधार द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह में वृद्धि होती है और उपभोग का स्तर भी ऊपर उठाता है। ध्यान दिया जाना चाहिए। कृषि में भूमि सुधारों और तकनीकी परिवर्तनों से उत्पादिता के स्तर में सुधार होता है जिससे किसनों की क्रय-शक्ति बढ़ती है। उनका जीवन-स्तर ऊपर उठता है और वे कई प्रकार की औद्योगिक वस्तुओं , जैसे रेडियो, साइकिल, घड़ी, जूते, वस्त्र, इत्यादि की अधिक मांग करने लगते है।

इस प्रकार बाजार के विस्तार से निवेशकों को निवेश करने के लिए प्रेरणा मिलती है। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के समय फ्रांस , इग्लैंड आदि देशों में भूमि सुधारों पर उद्योगपतियों ने इसलिए जोर दिया था क्योंकि वे जानते थे कि इससे कृषि क्षेत्र में उत्पादिता में वृद्धि होगी और फिर उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बाजार का भी विस्तार होगा।

उत्पादन की प्रक्रिया जितनी अधिक घुमावदार होती है , अन्य साधनों की तुलना में पूँजी का अनुपात उतना ही अधिक होता है और उत्पादिता का स्तर भी उतना ही अधिक होती है। इस प्रकार पूँजी-प्रधान रीतियों और मशीनों तथा अन्य उपकरणों के प्रयोग द्वारा उत्पादिता को बढ़ा पाना सम्भव होता है। पश्चिमी देशों के अनुभवों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि उत्पादिता को बढ़ाने में तकनीकी नवप्रवर्तनों की भूमिका पूँजी के भारी प्रयोग से कम महत्वपूर्ण नहीं है। परन्तु साथ ही यह भी सच है कि पूँजी की मात्रा नव-प्रवर्तनों की सीमा निर्धारित करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, स्वीडन, फ्रांस, जर्मनी आदि में उत्पादिता के स्तर ऊचे हैं।

कारण यह है कि इन सभी देशों में पूँजी-प्रधान रीतियों द्वारा उत्पादन किया जाता है। साथ ही नव-प्रवर्तन की प्रक्रिया नियमित रूप से चलती रहती है। फलतः वहां के सामान्य व्यक्ति के पास भी इतनी क्रय-शक्ति होती है कि वह सुविधा की सभी वस्तुएं , जैसे टेलीविजन, स्कूटर, धुलाई की मशीन, भोजन बनाने की मशीन, रेफ्रिजरेटर इत्यादि खरीद सकता है। उसका मांस , मक्खन, शराब, पुस्तकों आदि का उपभोग भी अधिक होता है। इस तरह उत्पादिता का ऊँचा स्तर बाजार के विस्तार को बढ़ाकर उत्पादकों को पूँजी निवेश करने के लिए प्रेरित करता है।

बाजार के आकार का विश्लेषण करते हुए अक्सर यह कहा जाता है कि यदि लोगों की मौद्रिक आय स्थिर रहे तो बस कीमतों में कमी करके ही बाजार के विस्तार को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यह उसी समय सम्भव होगा जबकि लोगों की उत्पादिता और वास्तविक आय में वृद्धि हो। बाजार का आकार एक अन्य प्रकार से भी बढ़ सकता है। यदि स्थिर कीमतों की दशा में लोगों की मौद्रिक आय अधिक हो जाती है तो भी बाजार का विस्तार फैल जाता है परन्तु यह भी उसी स्थिति में संभव हो पायेगा जबकि लोगों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि से उनकी वास्तविक आय में वृद्धि हो।

नर्क्से का विचार है कि अल्प-विकसित देशों में जे. बी. से का बाजार का नियम लागू होता है। वहां पर उत्पादन अपनी मांग स्वयं उत्पन्न कर लेता है और बाजार का आकार उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। अंतिम विश्लेषण में उत्पादिता में बहुमुखी वृद्धि द्वारा ही बाजार का विस्तार हो सकता है। खरीदने की क्षमता का अर्थ उत्पादन करने की क्षमता होता है।

उत्पादिता और बाजार के आकार के बीच संबंध के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि किसी उद्योग विशेष में पूँजी के निवेश द्वारा उत्पादिता के स्तर में सुधार का उत्पादन बढ़ा लेने से ही उसके बाजार का क्षेत्र नहीं बढ़ सकेगा। उदाहरण के लिए , ऊनी स्वेटर बनाने वाली मिल में नई मशीनें लगाई जाती है। इससे मिल के श्रमिकों की उत्पादिता और उनकी वास्तविक आय अधिक हो जाती है। लेकिन दूसरे उद्योगों में

उत्पादिता का स्तर ऊँचा नहीं उठता और लोगों की वास्तविक आय पहले की भांति रहती है। इस स्थिति में स्वेटर की मिल में उत्पादन अधिक होने पर पर्याप्त मांग उत्पन्न नहीं हो सकेगी। इसका कारण यह है कि स्वेटर की मिल में काम करने वाले व्यक्तियों की आय में जो भी वृद्धि होगी उस सम्पूर्ण आय को वे स्वेटर पर व्यय नहीं करेंगे और दूसरे क्षेत्रों में उत्पादिता स्थिर रहने के कारण स्वेटर की मांग स्थिर रहेगी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि बाजार के आकार में विस्तार के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के सभी क्षेत्रों में उत्पादिता में सुधार हो।

11.7 विकास तथा बाजार की अपूर्णतायें (Development and Market Imperfections)

प्रो. मायर एवं बाल्डविन ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण बाजार की अपूर्णतायें को माना है। अल्प-विकसित देशों में बाजार की अपूर्णतायें, अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, उत्पत्ति के साधनों की अगतिशीलता, कीमत दृढ़ता, बाजार दशाओं का कम ज्ञान, दृढ़ सामाजिक ढाँचा, विशिष्टीकरण एवं प्रमापीकरण का अभाव तथा अविकसित तकनीक। बाजार अपूर्णताओं के विद्यमान होने पर सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि उत्पत्ति के साधनों का समुचित वितरण तथा सर्वोत्तम ढंग से उपयोग नहीं हो पाता है जिससे इन देशों में वास्तविक उत्पादन सम्भाव्य उत्पादन से नीचा बना रहता है।

श्रम-शक्ति की अगतिशीलता और उसका कुशलता के साथ उपयोग न होने के कारण बेरोजगारी बढ़ने लगती है। श्रमिकों की उत्पादकता में कमी होती है। सामाजिक व सांस्कृतिक बाधाओं के कारण, श्रम व पूँजी का कुशलता के साथ वितरण नहीं हो पाता, जिसके फलस्वरूप एक तरफ पूँजी की सीमान्त-क्षमता गिरने लगती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। इन सब घटकों का एक सम्मिलित प्रभाव यह भी होता है कि इन देशों में बाजार अत्यन्त सीमित बने रहते है और यह देश अपनी उत्पादन-सीमाओं पर पहुँच नहीं पाते।

आर्थिक विकास के लिए पिछेड़ हुए देशों की अर्थ-व्यवस्था की बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएं समाप्त की जानी चाहिये जिससे कि साधनों का सर्वोत्तम ढंग से उपयोग सम्भव हो सके। चूँकि बाजार अपूर्णतायें , साधनों की अगतिशीलता एवं क्षेत्रीय असंतुलन को उत्पन्न करती हैं इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि -

1. सामाजिक व आर्थिक संगठनों के वैकल्पिक स्वरूपों का निर्माण किया जाये,
2. विद्यमान साधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाये,
3. एकाधिकार, प्रवृत्तियों पर रोक लगाई जाये,
4. पूँजी व साख संस्थाओं का विस्तार किया जाये तथा
5. छोटे व्यापारियों को उत्पादन की नई तकनीक व क्षेत्रों का ज्ञान कराया जाए।

लेकिन स्मरण रहे, बाजार की अपूर्णताओं को दूर करना आर्थिक विकास को केवल आंशिक रूप से प्रभावित करता है। मायर एवं बाल्डबिन का कहना है कि "पिछड़े देशों में साधनों के अनुकूलतम आवंटन के लिए बाजार अपूर्णताओं को दूर करना ही केवल पर्याप्त नही है, अपितु मुख्य समस्या साधनों के सर्वोपयुक्त युक्त उपयोग एवं संरचनात्मक परिवर्तनों की है, न कि विद्यमान साधनों की करीने से व्यवस्थित करने की। दूसरे शब्दों में , मुख्य आवश्यकता उत्पादन सीमाओं (लक्ष्यों) को आगे बढ़ाने की न कि केवल उन सीमाओं पर पहुँचने की।"

संरचनात्मक परिवर्तनों से आशय, कृषि पर जनसंख्या के भार को कम करना तथा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आदि लाने से है। प्रो. सिंगर ने इस सम्बन्ध में सुझाव देते हुए कहा है कि अल्प-विकसित देशों में

कृषि पर निर्भर 70 प्रतिशत जनसंख्या को घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया जाये तथा गैर-कृषि क्षेत्रों में लगी जनसंख्या के वर्तमान 30 प्रतिशत अनुपात को बढ़ाकर 80 प्रतिशत कर देना चाहिये। परन्तु यह सब कुछ तभी सम्भव हो सकता है जबकि समाज में व्यापक भूमि सुधार, गतिशील बाजार व्यवस्था, नूतन साख संस्थायें, जन-जागृति तथा मानवीय मूल्यों में नई प्रेरणायें उदित हो सकें। मायर एवं वाल्डविन ने इसी तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा है "यदि राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि करनी है तो इसके लिये नूतन आवाश्यकताएँ , नयी अभिरूचियाँ, नवीन उत्प्रेरणाएँ, उत्पादन के नये ढंग व नयी संस्थाओं का नव-निर्माण करना जरूरी होगा।"

11.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थान भरों:-

1. प्रारम्भ में आर्थिक विकास में .... की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती थी।

2. प्रो. मायर एवं बाल्डबिन का कहना है कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की क्या सीमा हो इसका .... है।

3. .... के शब्दों में "कोई भी देश आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग और साझेदारी के बिना आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है।"

4. प्रो. आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को .... वर्गों में विभाजित किया है।

5. अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का ....से अधिक भाग कृषि में लगा है।

6. अल्पविकसित देशों में निजी उद्यम केवल .... के क्षेत्र में ही पाया जाता है।

7. परिवार नियोजन का मतलब है सोच-समझ कर ....घटाना।

8. .... नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से मुद्रा की मात्रा का नियमन , साख-सृजन, मुद्रा-स्फीति को रोकना एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना आदि कार्याें को सम्मिलित किया जाता है।

9. .... नीति के अन्तर्गत सरकारी आय , सरकारी व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ-प्रबन्धन आदि को सम्मिलित किया जाता है।

10. आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में .... क्षेत्र बहुत बड़ा होता है।

11. अल्प-विकसित देशों में बाजार का आकार .... होता है।

12. नर्क्स के अनुसार बाजार का आकार मुख्य रूप से .... के स्तर पर निर्भर होता है।

13. प्रो. मायर एवं बाल्डविन ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण .... को माना है।

11.9 सारांश(Summary)

प्रारम्भ में राज्य सरकार का मुख्य काम केवल देश की सुरक्षा मान जात था परन्तु धीरे - धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन आया और एक वर्ग राज्य सरकार के आर्थिक क्रियाओं में सहयोग का समर्थन करने लगा, इस दो प्रकार की विचारधारायें पायी जाने लगी। प्रथम विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएँ राज्य के नियन्त्रण के अन्तर्गत होनी चाहिए । द्वितीय विचाराधारा के समर्थक पूर्ण राजकीय हस्तक्षेप के

पक्षपाती नहीं है। अब यह सर्वथा माना जाता है कि एक अल्पविकसित देश में निहित कठोरताओं पर काबू पाने के लिए राज्य को निश्चियात्मक कार्य करना होगा।

प्रो. आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को नौ वर्गों में विभाजित किया है। लेकिन मोटे तौर पर आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने और समाज के आर्थिक जीवन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी संस्थानों व सरकार द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य इस प्रकार है कृषि का विकास करना , उत्पादकता में वृद्धि भूमि-सुधार , प्राकृतिक संसाधनों का विकास ,औद्योगिक विकास करना , सामाजिक ढाँचों का विकास, शिक्षा, लोक स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन, आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाना , निवेश की दर में वृद्धि करना, उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता में वृद्धि करना ,मौद्रिक नीति , राजकोषीय नीति ,मूल्य नीति और विदेश व्यापार की नीति बनाना ।

आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका का महत्व है। आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। इसमें जो कुछ निर्णय लिए जाते हैं और उनके आधार पर जो क्रियाकलाप होते हैं उनका बाजार से सीधा सम्बन्ध होता है। बाजार का आकार पूँजी के निवेश से सम्बन्धित प्रेरणा को सभी तरह की अर्थव्यवस्था में प्रभावित करता है। अल्प-विकसित देशों में बाजार का आकार छोटा होता है। इसलिए वहां पर निवेश प्रेरणा का अभाव होता है।

प्रो. मायर एवं बाल्डविन ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण बाजार की अपूर्णतायें को माना है। पिछड़े देशों में साधनों के अनुकूलतम आवंटन के लिए बाजार अपूर्णताओं को दूर करना ही केवल प्र्याप्त नही है , अपितु मुख्य समस्या साधनों के सर्वोपयुक्त उपयोग एवं संरचनात्मक परिवर्तनों की है ।

11.10 शब्दावली(Glossary)

पलायन (Migration)-काम की तलाश में अपने गांव या शहर को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाना।

आधारभूत संरचना (Infrastructure)-विकास में सहायक आधार जैसे-सड़क , परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।

उद्यम (Enterprise) -उद्योग लगाने का जोखिम उठाना

रियायतें (Concessions) -छूट देना

पुनगर्ठन(Restructuring)-ऐसा उद्योग जो संगठन में दोष के कारण हानि में चल रहे हो उनका संगठन व्यवस्था में सुधार

श्रम प्रतिस्थापन (Labor Substitution) -ऐसी व्यवस्था जहाँ श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग किया जाये।

गतिशील उद्यमी(Dynamic Entrepreneur)- ऐसे उद्यमी जिनकी विचार धारा आधुनिक हो और जो नवीन तकनीक को बढ़ावा दें।

संवर्धन(Promotion)-वृद्धि या विकास करना

11.11 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

रिक्त स्थान भरों:-

(1) राज्य अर्थात सरकार (2) कोई सिद्धान्त नहीं (3) प्रो. डब्ल्यू आर्थर लुइस

(4) नौ वर्गों (5) 70 प्रतिशत (6) उपभोक्ता वस्तुओं

(7) जन्म-दर (8) मौद्रिक नीति (9) राजकोषीय नीति

(10) निजी क्षेत्र (11) छोटा (12) उत्पादिता

(13) बाजार की अपूर्णतायें

11.12 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

Dhingra, I. C. (2009), "Development Economics", Sultan Chand and Sons.

Jhingan, M. L. (2000),"Economics of Development and Planning", Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.

Mishra, S.K. and Puri, V.K.(2007), "Economics of Development and Planning Theory and Practice", Himalaya Publishing House.

Singh, S.P. (2010),"Economics of Development and Planning and Practics", S Chand Publishing House.

11.13 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

Allan C. Reddy, David P. Campbell (1994), "Marketing's Role in Economic Development", Greenwood Press

Brace, Paul (1994). "State Government and EconomicPerformance", The Johns Hopkins University Press Ltd. London.

Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "Development Economics", Oxford University Press India.

Jhingan, M. L. (2000),"Economics of Development and Planning", Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.

11.14 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

1. सरकारी संस्थान का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य पर प्रकाश डालिए।
3. आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका का वर्णन करो।

इकाई12- अधोसंरचना
(Infrastructure)

12.1प्रस्तावना (Introduction)

12.2 उद्देश्य (Objectives)

12.3 अधोसंरचना सुविधाओं के उपादान (Infrastructure Facilities)

12.4 स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का विकास (Development of Infrastructure after Independence)

12.5 ऊर्जा या शक्ति संसाधन (Energy or Power Resource)

12.5.1 परम्परागत साधन (Traditional Means)

12.5.2 गैर परम्परागत साधन (Unconventional Means)

12.5.3 भारत में ऊर्जा संकट के कारण एवं उनके समाधान हेतु सुझाव (Causes of Energy Crisis in India and Suggestions for their Solution)

12.5.4 भारत सरकार द्वारा ऊर्जा को विकास करने की नीति (Energy Development Policy by the Government of India)

12.6 भारत में परिवहन साधन (Means of Transport in India)

12.6.1 आर्थिक विकास में परिवहन का महत्व (Importance of transportation in economic development)

12.6.2 सड़क परिवहन के साधन (Means of Road Transport)

12.6.3 भारत में रेल परिवहन (Rail Transport in India)

12.6.4 जल परिवहन (Water Transport)

12.6.5 वायु परिवहन (Air Transport)

12.6.6 संचार (Communications)

12.6.7 बैंक, बीमा एवं वित्त (Bank, Insurance and Finance)

12.7आधार संरचना में निजी निवेशः दृष्टि और भविष्य (Private Investment in Infrastructure: Vision and Future)

12.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

12.9 सारांश(Summary)

12.10 शब्दावली(Glossary)

12.11 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

12.12 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

12.13 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

12.14 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

12.1प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाई में मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास के परस्पर सम्बंध का अवलोकन किया गया। प्रस्तुत इकाई में आधार संरचना सुविधाओं के अन्तर्गत आर्थिक विकास से सम्बंध को समझाया गया है। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये आधार संरचना का विस्तार करना आवश्यक है। क्योंकि किसी भी देश की समृद्धि एवं विकास उस देश के कृषि एवं उद्योग के विकास पर निर्भर करती है।

जहाँ कृषि उत्पादन के लिये संचालन शक्ति वित्त एवं परिवहन सुविधाओं आदि की आवश्यकता होती है वहीं औद्योगिक उत्पादन के लिये केवल मशीनरी एवं संयंत्र ही नहीं चाहिये बल्कि कुशल श्रम शक्ति , प्रबन्ध, ऊर्जा, बैंकिंग एवं बीमा सुविधाओं की भी जरूरत होती है। साथ ही साथ विपणन सुविधाओं , परिवहन सेवाओं की भी आवश्यकता होती है जिनमें रेलवे , जहाज, संचार सुविधाएँ आदि शामिल की जाती है। ऐसे सभी सुविधाओं एवं सेवाओं को सामूहिक रूप में आधार संरचना अथवा अधोसंरचना कहा जाता है।

औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति के कारण परिवहन एवं संचार क्रान्ति फलीभूत हुयी। जहाँ ऊर्जा का स्त्रोत पहले कोयला, बाद में तेल और विद्युत हुआ वहीं वित्त जुटाने के लिये बैंकिंग , बीमा एवं अन्य वित्त संस्थानों का भी विकास होता गया।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेंगे किः-

आधार संरचना में किन उपादानों को सम्मिलित किया जाता है

स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का कितना विकास हुआ

ऊर्जा संसाधन के परम्परागत एवं गैर परम्परागत स्त्रोत क्या है एवं इनको भारत में कितना विकास हुआ

परिवहन के अंतर्गत सड़क एवं रेल एवं वायु परिवहन का आर्थिक विकास से सम्बंध

अन्य वित्तीय संस्थाओं के विस्तार का भारत के आर्थिक विकास में भूमिका

अधोसंरचना का आर्थिक विकास में क्या महत्व है।

12.3 अधोसंरचना सुविधाओं के उपादान (nfrastructure Facilities)

अधोसंरचना सुविधाओं को प्रायः आर्थिक एवं सामाजिक उपरि व्यय भी कहा जाता है।
इनमें निम्नलिखित उपादानों को सम्मिलित किया जाता हैः-

(1) ऊर्जा- कोयला, बिजली, खनिज तेल और अन्य गैर-परम्परागत स्त्रोत-सौर ऊर्जा , अणु शक्ति, वायु एवं गैस आदि।

(2) परिवहन- रेल, सड़के, जहाजरानी और नागरिक उड्डयन

(3) संचार- डाक एवं तार, टेलीफोन, टेली संचारआदि।

(4) सेवाए -बैंकिंग, वित्त एवं बीमा

(5) मानव संसाधन विकास- शिक्षा एवं स्वास्थ्य

12.4स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का विकास (Development of Infrastructure after Independence)

इस कथन से कदापि इंकार नहीं किया जा सकता कि अधोसंरचना के विकास के अभाव में देश का विकास सम्भव नहीं है। इसी कारण भारत की आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया में अधोसंरचना के विकास पर बल दिया गया। 62 वर्षों की नियोजन प्रक्रिया में आधार संरचना का अच्छा विकास हुआ। 11 पंचवर्षीय योजनाएं, तीन वार्षिक योजनाएं व तीन वर्ष का अन्तरकाल का नियोजन इस बात की पुष्टि भी करता है।

भारत में अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में योजना व्यय का लगभग 50 प्रतिशत आधारभूत संरचना पर व्यय किया है। परिणामस्वरूप भारत का आधारभूत संरचना उपलब्ध हो सका। यह एक विडम्बना ही है कि आधारभूत संरचना की उपलब्धता मात्र शहरों एवं नगरों में ही उपलब्ध है और गाँवों में इनका विकास तुलनात्मक दृष्टि से नहीं हो सका। इसी कारण जनसंख्या का पलायन गाँवों से शहरों की ओर हो रहा है और परिणामस्वरूप शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रहीं है।

निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता पश्चात भी भारत में आधारभूत संरचना का काफी विकास हुआ है।

विवरण	इकाई	वर्ष 1950-51	वर्ष 2008-09
1) ऊर्जा या शक्ति			
1.कोयले का उत्पादन	लाख टन में	322	
2.विद्युत का उत्पादन	विलियन KWH में	5	4933
3.कच्चे तेल का उत्पादन	लाख टन में	3	746.6
2) परिवहन			
1.रेलों की लम्बाई	1000KM में	53.6	335
2.सड़कों की लम्बाई	लाख KM में	4	63.3
3. जहाजों की क्षमता	लाख GRT में	3.7	33.4
3) संचार			
1.डाकखाने	हजार में	3.6	115.3
2.टेलीफोन	करोड़	0.017	30.05
4) बैंक एवं वित्त			
1.बैंक कार्यालय		2600	76885

अब हम एक करके सभी मदों का विस्तार से उल्लेख करेंगें।

12.5ऊर्जा या शक्ति संसाधन (Energy or Power Resource)

जिस देश में सस्ते व पर्याप्त माँग में शक्ति संसाधन उपलब्ध होते है वह देश अपना विकास आसानी से व तीव्र गति से कर सकता है। इसका कारण है कि सभी क्षेत्रों- कृषि , उद्योग, परिवहन आदि में शक्ति संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। इसके विपरीत जिस देश में शक्ति संसाधन अपर्याप्त होते है या अविकसित होते है वह देश अन्य सभी आवश्यक सुविधाओं के होते हुये भी विकास मन्द गति से कर पाता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश अपनी आर्थिक योजनाएं बनाते समय शक्ति संसाधनों के विकास पर विशेष जोर देता है।

यह माना जाता है कि जिस देश में शक्ति संसाधन की प्रति व्यक्ति खपत जितनी अधिक होगी उस देश में प्रति व्यक्ति आय भी उतनी ही अधिक होगी। इस दृष्टि से देखा जाय तो भारत दोनों में ही पीछे है। यहाँ प्रति व्यक्ति शक्ति संसाधनों की खपत भी कम है और प्रति व्यक्ति आय भी कम है।

भारत में विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है , लेकिन यहाँ पर कुल विश्व खपत की 1.5 प्रतिशत शक्ति ही खर्च होती है। आर्थिक सर्वेक्षण 2008-09 के अनुसार यहाँ प्रति व्यक्ति खपत लगभग 90.4KWH वार्षिक है जो बहुत कम है।

भारत में शक्ति संसाधन कई है , जैसे मनुष्य, पक्षी, लकड़ी, कोयला, वायु, जल, परमाणु, खनिज तेल, आदि इन संसाधनों को दो प्रकार में विभाजित किया जा सकता है।

(1) परम्परागत साधन

1. कोयला 2. विद्युत 3.खनिज तेल या पेट्रोलियम

(2) गैर परम्परागत साधन

1. परमाणु शक्ति 2.वायु शक्ति 3. सूर्य शक्ति 4. गैस भाप विद्युत गृह आदि।

12.5.1 परम्परागत साधन (Traditional Means)

1.कोयला (Coal)-

कोयला को ईंधन का बादशाह माना जाता है। औद्योगिक क्रान्ति की शक्ति का माध्यम कोयला को ही माना जाता है। चाहे मानव सभ्यता का विषय हो या कियी देश के आर्थिक विकास का प्रथम चरण कोयला का स्थान सर्वोपरि है। इसी कारण से इसे काला सोना (Black Gold) या काला हीरा (Black Diamond) का नाम दिया गया है।

कोयले के उपयोग में न मात्र शक्ति उत्पादन बल्कि ईंधन का रूप भी उतना ही महत्व रखता है। इससे निकले कई रासायनिक पदार्थ जैसे- तेल, बेजोल, नेफ्था का प्रयोग रासायनिक उद्योगों में होता है। बिजली उपकरणों के निर्माण में भी कोयले का प्रयोग किया जाता है। कोलतार भी बनाया जाता है जिससे सड़क का निर्माण होता है। इससे डायल भी बनाया जा सकता है जिससे अमोनिया द्रव निकलता है जो खाद बनाने वाले कारखानों के काम आता है।

भारत में कोयले के कुल 264.54 करोड़ टन के भण्डार है। यह विश्व के कुल कोयला भण्डार का 8 प्रतिशत ही है। तीसरे स्थान की श्रेणी में भारत के पास मात्र 2 प्रतिशत ही बढ़िया किस्म का कोयला है जबकि 7 प्रतिशत मध्यम किस्म और 91 प्रतिशत गैर कोंकिंग किस्म का।

भारत में मात्र तीन क्षेत्र ही है जो कोयला उत्पादन क्षेत्र में आते है- पश्चिम बंगाल एवं झारखण्ड , एवं अन्य छुटपुट क्षेत्र। पश्चिम बंगाल एवं झारखण्ड कुल मिलाकर 61 प्रतिशत कोयला का उत्पादन करते है। आज भारत में 22 प्रतिशत कोकिंग कोयला व 78 प्रतिशत गैर कोकिंग कोयला का उत्पादन हो रहा है।

2. विद्युत (Electricity)-

किसी भी देश का आर्थिक विकास विद्युत शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। चाहे गाँव हो या शहर , उद्योग हो या खेत, शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है जहाँ विद्युत की आवश्यकता न हो। एक आवश्यक इनपुट के रूप में विद्युत का उपयोग पीने के पानी के लिए, परिवहन साधनों को चलाने के लिये, संचार सुविधाओं के लिये घरों व सड़कों पर

रोशनी के लिये किया जाता है। विकसित देशों की तीव्र विकास के पीछे विद्युत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।विद्युत का उत्पादन पानी, कोयला, डीजल, परमाणु शक्ति से होता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विद्युत का उत्पादन भारत में 1900 से प्रारम्भ हुआ। पहला पन बिजलीघर कर्नाटक राज्य में शिवसमुद्रम में बनाया गया हालाँकि इसके पश्चात अनेक पन बिजलीघर बनाये गये परन्तु यह शहरी क्षेत्र तक ही सीमित थे।

1950-51 में विद्युत की कुल उत्पादन क्षमता 22 लाख टन थी जबकि 2008-09 में बढ़कर 1750 लाख ज्ञॅ हो गयी। वहीं 1950-51 में इसकी कुल वास्तविक उत्पादन 7 विलियन KWH थी जो 2008-09 में बढ़कर 842 विलियन KWH हो गयी।

विकसित देशों की तुलना में भारत में विद्युत का प्रति व्यक्ति उत्पादन 55KW वार्षिक ही है जबकि अमेरिका में 7998KW है। यहाँ तक कि इटली में 2186KW है।

विद्युत शक्ति के उत्पादन का 37.6 प्रतिशत भाग उद्योगों द्वारा खपत किया जाता है जबकि 21.7 प्रतिशत भाग कृषि द्वारा खपत किया जाता है। विद्युत शक्ति का विकास सम्पूर्ण भारत में समुचित रूप से हुआ है। हिमाचल प्रदेश, जम्मू व काश्मीर, कर्नाटक, केरल व मेघालय मुख्य रूप से जल विद्युत पर निर्भर है। दिल्ली , बिहार व पश्चिम बंगाल कोयले द्वारा उत्पादित बिजली पर निर्भर है तो वहीं आन्ध्र प्रदेश , असम, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश को जल विद्युत व कोयला से उत्पादित विद्युत दोनों ही मिलती है।

अब तक भारत के गाँवों का लगभग 84 प्रतिशत विद्युतीकरण हो चुका है।

3. खनिज तेल या पेट्रोलियम (Mineral Oil or Petroleum)

खनिज तेल या पेट्रोलियम, शक्ति साधन के रूप में ही नहीं वरन् बहुत से उद्योगों के लिये आधार भी है। पेट्रोलियम दो शब्दों से मिलकर बना है- पेट्रो + ओलियम। पेट्रो का अर्थ है-चट्टान एवं ओलियम शब्द का अर्थ है-तेल। अर्थात् चट्टान का तेल (Rock Oil) भूरे या पीले या हरे रंग का यह पदार्थ तरल रूप में होता है एवं गहरे कुएं से निकले अशोधित तेल को (Crude Oil)कहते है।

भारत में खनिज तेल भण्डार 35 करोड़ टन का है। यह भण्डार असम , गुजरात, नाहरकटिया, रवम्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, सूरमाघाटी, कच्छ की खाड़ी, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, केरल, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाये जाते है।

भारत में तेल के स्त्रोत सर्वप्रथम 1866 में देखे गये थे और 1867 में सर्वप्रथम असम में तेल निकाला गया। डिगबोई क्षेत्र की स्थापना के साथ ही 1895 में असम ऑयल कम्पनी ने इसका कार्य भार सम्भाल लिया। 1956 में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग की स्थापना की गयी। तत्पश्चात निजी क्षेत्र के लिये भी यह क्षेत्र खोल दिया गया जिसके फलस्वरूप Relience व Easer Group इस ओर अग्रसर हुये। जहाँ 1950-51 में भारत का खनिज तेल का उत्पादन 3 लाख टन था वही, 2008-09 में 335 लाख टन रहा।

इस समय देश में 13 करोड़ 25 लाख टन तेल शोधन क्षमता के 18 तेलशोधक कारखाने है। इनमें मान 1 निजी क्षेत्र में है जो कि Refiners Reliance Industries limited, Jamnagar में स्थित है।

12.5.2 गैर परम्परागत साधन (Unconventional Means)

(1) परमाणु शक्ति (Nuclear Power)-

होमी जहाँगीर भाभा को भारत में परमाणु शक्ति का विकास करने का श्रेय जाता है। इन्होंने 1945 में टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान (Tata Institute of Fundamental Research- TIFR) की स्थापना की। 1948 में परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन किया गया। 1954 में केन्द्र सरकार द्वारा परमाणु ऊर्जा विभाग स्थापित किया गया जिसका नाम डॉ. भाभा की मृत्यु के पश्चात् 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र'पर रखा गया। इस केन्द्र में चार अनुसन्धान रिऐक्टर है-1. अप्सरा, 2. साइकस, 3. जरलीना, 4. ध्रूव 5.कामिनी।

आज देश में परमाणु विद्युत केन्द्र तारापुर परमाणु केन्द्र (महाराष्ट्र) , रावतमाड़ा परमाणु शक्ति केन्द्र (राजस्थान), कलपक्कम परमाणु केन्द्र (तमिलनाडु) , नरौरा परमाणु शक्ति केन्द्र (उत्तर प्रदेश) , का करपारा परमाणु शक्ति केन्द्र (गुजरात) तथा कैगा परमाणु केन्द्र (कर्नाटक) में स्थित है।

भारत में परमाणु शक्ति का विकास (Development of Nuclear Power in India)-

भारत में इस समय 2225 मेगावाट परमाणु शक्ति की उत्पादन क्षमता के परमाणु विद्युत गृह है जो अपनी पूरी क्षमता पर उत्पादन कर रहे हैं।

परमाणु शक्ति के विकास की परम आवश्यकता है क्योंकि देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में सस्ती शक्ति की जरूरत होती है। जहाँ पर जल शक्ति अपर्याप्त है वहाँ परमाणु शक्ति इस कमी को पूरा करने में समर्थ है। कोयले के विकल्प के रूप में परमाणु शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि कोयले के भण्डार सीमित है। भाखड़ा नागल , चम्बल आदि योजनाओं से भारी जल की आवश्यकता पूरी करके परमाणु शक्ति को उत्पन्न किया जा सकता है।

2. वायु शक्ति (Wind Power)

इस शक्ति का भी प्रयोग देश के विकास के लिये किया जा सकता है। नीदरलैण्ड जैसे देशों ने इसका उपयोग पवन चक्कियां लगाकर किया है। हालाँकि भारत के गाँवों में किसानों द्वारा अनाज को भूसे से अलग करने के लिये इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है परन्तु अभी तक वृहत रूप से इसका उपयोग नहीं किया गया है। राष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसंधानशाला बंगलौर के अनुसार भारत में भी वायुशक्ति का उपयोग बिजली उत्पन्न करने के लिये किया जा सकता है।

भारत अपनी 45000 मेंगावाट वायु शक्ति की क्षमता का महज 13000 मेगावाट का ही उपयोग कर पा रहा है। विश्व में इसका स्थान पाँचवा है- जर्मनी, अमेरिका, डेनमार्क व स्पेन।

3. सूर्य शक्ति (Solar Power)

सूर्य से प्राप्त शक्ति , शक्ति का ऐसा साधन होगा जो कभी समाप्त नहीं होगा।भारत का प्रथम सौर ऊर्जा बिजलीघर लद्दाख के छोंग्लेश्वर नामक गाँव में स्थापित किया गया जो विश्व में इस प्रकार की बिजली का दूसरा गाँव है। भारत में BHEL कम्पनी की हरिद्वार स्थित कैन्टीन में सूर्य शक्ति का प्रयोग धोने के लिये गर्म पानी के लिये किया जाता है। वहीं आनन्द (गुजरात) स्थित अमूल फैक्टरी में इसका प्रयोग सूखा दूध बनाने के लिये किया जाता है। भावनगर (गुजरात) में पीने का पानी इसी शक्ति से साफ किया जाता है। दिल्ली के सुपर बाजार व उत्तर प्रदेश में भी सूर्य शक्ति के हीटर बेचे जा रहे है।

4. गैस भाप विद्युत गृह (Gas Steam Power Plant)-

भारत का पहला गैस भाप विद्युत गृह राजस्थान में कोटा के पास अन्त में बनाया गया है जिसमें गैस से विद्युत बनना प्रारम्भ हो गया है। भारत का इस सम्बंध में यह पहला परीक्षण है।

12.5.3 भारत में ऊर्जा संकट के कारण एवं उनके समाधान हेतु सुझाव (Causes of Energy Crisis in India and Suggestions for their Solution)

ऊर्जा संकट का अर्थ है ऊर्जा के साधनों का अभाव। देश के आर्थिक विकास में ऊर्जा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। यह संकट मात्र भारत तक ही सीमित नहीं है वरन् विश्वव्यापी है। हालाँकि भारत में 1950-51 से लेकर वर्तमान तक की अवधि में विद्युत कोयला एवं कच्चे तेल के उत्पादन पर्याप्त वृद्धि हुयी है। फिर भी यह संकट विद्यमान है। बढ़ती हुयी ऊर्जा की माँग हर क्षेत्र में बनी हुयी है , चाहे वह क्षेत्र औद्योगिक हो या कृषि।

संक्षेप में ऊर्जा संकट के मुख्य कारण निम्नलिखित है-

(1) तीव्र गति से होता हुआ औद्योगिक विकास

(2) गाँवों के विद्युतीकरण एवं कृषि का बढ़ता हुआ यन्त्रीकरण

(3) कोयले का समय पर भारी मात्रा में उपलब्ध न होने के कारण रेलों आदि में तेल का उपयोग बढ़ गया। देश में इसका उत्पादन 335 लाख टन वार्षिक है जबकि इसकी खपत 1000 लाख टन वार्षिक पहुँच गयी है। यह आयात द्वारा पूरा किया जाता है।

(4) कोयले का बढ़ता हुआ अभाव जिससे ताप विद्युत गृहों को समय पर उपलब्ध नहीं हो पाता है।

(5) जल विद्युत उत्पादन में कमी के कारण जल विद्युत योजनाओं को कार्यरूप में परिणत होने में देर हो जाती है और उनके निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाते।

(6) आवश्यक पदार्थ, तकनीक आदि होते हुये भी भारत के परमाणु शक्ति का विकास धीमी गति से हो रहा है।

(7) विद्युत उत्पादन की चोरी से वित्त का बहुत नुकसार हो जाता है जिसका उपयोग विद्युत उत्पादन की क्षमता बढ़ाने में किया जा सकता है। भारत में लगभग 1/3 उत्पादन की चोरी हो जाती है जिससे करीब 24000 करोड़ रूपये प्रति वर्ष का नुकसान हो जाता है। यदि यह उत्पादन में लगाया जाय तो 5000 मेगावाट की क्षमता वाली विद्युत उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष बढ़ाई जा सकती है।

सुझाव (Suggestions)

(1) पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन बढ़ाना एवं आन्तरिक उपभोग को कम करना।

(2) गैस का उत्पादन बढ़ाना एवं नवीन स्थानों की खोज करना जहाँ इसकी मिलने की सम्भावना हो।

(3) विद्युत उत्पादन के चार साधन- कोयला , तेल, पानी व परमाणु शक्ति में परमाणु शक्ति का विकास होने के समय लग सकता है। कोयले एव तेल की भारी मात्रा में माँग के कारण इसकी उपलब्धता कम होती जा रही है। ऐसे में मात्र जल विद्युत का उपयोग ही सम्भव है जो वर्षा के पानी को रोककर नदियों का पानी प्रयोग कर बनायी जा सकती है।

(4) विद्युत ग्रहों की पूर्ण क्षमता के उपयोग को बढ़ाने की आवश्यकता है।

(5) विद्युत की बरबादी एवं चोरी में कमी से 1/3 उत्पादन का भी समुचित प्रयोग किया जा सकता है।

(6) कोयले के उत्पादन को बढ़ाने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिये जिससे तेल के स्थान पर उससे विद्युत उत्पादित हो सके।

(7) गैर परम्परागत ऊर्जा के विकास जैसे परमाणु ऊर्जा , वायु ऊर्जा, सौर ऊर्जा, गोबर गैस ऊर्जा व ज्वारीय ऊर्जा के विकास से तेल एवं कोयले दोनों की ही बचत हो सकती है।

12.5.4 भारत सरकार द्वारा ऊर्जा को विकास करने की नीति (Energy Development Policy by the Government of India)

1981 में केन्द्र सरकार द्वारा एक ऊर्जा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग के तीन मुख्य कार्य है-

1. ऊर्जा के नये एवं पुराने स्त्रोतों को विकसित करने के लिये विभिनन कार्यक्रम एवं नीतियां बनाएं,
2. इनसे सम्बन्धित अनुसंधान और विकास कार्यो में तीव्रता लाये,
3. ऊर्जा के इन स्त्रोतो के बारे में सरकार की नीति को क्रियान्वित करें।

12.6 भारत में परिवहन साधन (Means of Transport in India)

परिवहन को परिभाषित करते हुये अमरीकी विद्वान फेयर एवं विलियम्स (Fair & Williams)के अनुसार, “परिवहन का अर्थ मनुष्यों अथवा सम्पत्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन से है।”

परिवहन मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की सुविधा प्रदान करती है। सस्ते और शीघ्रगामी साधन को आधुनिक परिवहन की संज्ञा दी जाती है जिसके अन्तर्गत रेल , मोटर, पानी के जहाज , हवाई जहाज आदि आते है।

परिवहन का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देखा जा सकता है। इससे कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि , विविधकरण एवं विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे व्यापार का ही विस्तार नहीं होता बल्कि मूल्यों में भी स्थिरता आती है। देश की सुरक्षा एवं रक्षा को बढ़ावा मिलता है एवं सरकारी आय भी बढ़ती है।

12.6.1 आर्थिक विकास में परिवहन का महत्व (Importance of transportation in economic development)

(1) कृषि क्षेत्र में (In Agricultural Sector)- परिवहन के माध्यम से किसान अपने उत्पादन को शहरों में बेचने के लिये जा सकते है। ऐसे कई उत्पाद जैसे- तरकारी, फल, डेरी उत्पाद, मछली आदि को शहर में बेचने के लिये परिवहन की सुविधा लाभप्रद होती है। इन साधनों के विकास से कृषि उत्पादन बढ़ता है क्योंकि शहरों से अच्छे बीज रासायनिक खादें व कृषि यन्त्र प्राप्त किये जा सकते है।

(2) औद्योगिक क्षेत्र में (In Industrial Sector)- परिवहन साधनों का विकास होने से उन स्थानों पर नये-नये कारखाने स्थापित हो पाते है जो सड़कों , रेलों, बन्दरगाहों आदि से जुड़ जाते है। इसी के कारण खान उद्योग व वन उद्योगों का विकास हुआ है। ये साधन श्रम में गतिशीलता ला देते है। इससे उद्योगों को श्रमिक उचित मात्रा में मिल जाते है।

(3) व्यापारिक क्षेत्र में (In Commercial Sector)- परिवहन साधन के विकास से व्यापारिक क्रियाओं में वृद्धि होती है, साथ ही साथ विदेशी व्यापार में भी वृद्धि होती है। मूल्यों के उतार चढ़ावों में कमी हो जाती है।

(4) सामाजिक क्षेत्र में (In Social Sector)- परिवहन साधन की सुविधा से विभिन्न क्षेत्र के लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते है जिससे संस्कृतियों के सम्बन्ध में ज्ञान की वृद्धि होती है। इससे अन्धविश्वास व रूढ़िवादिता को कम करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है एवं भाईचारे की भावना पनपती है।

(5) राजनीतिक क्षेत्र में (In Political Sector)- देश में शान्ति व सुरक्षा के लिये द्रुतगामी परिवहन साधनों की आवश्यकता होती है। सीमा क्षेत्र व विदेशों से रक्षा के लिये भी परिवहन साधन चाहिये।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि परिवहन साधनों के विकास से देश का आर्थिक विकास प्रभावित होता है।सभी देशों के विकास के लिये परिवहन साधन का विकास महत्वपूर्ण है।

परिवहन साधन को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

12.6.2 सड़क परिवहन के साधन (Means of Road Transport)

सिर पर बोझालट्ट पशु, बैलगाड़ी, मोटर ट्रक ,नल- नलों का प्रयोग खनिज तेलों व गैस उत्पादन केन्द्रों से वितरण केन्द्रों तक पहुँचाने के लिये किया जाने लगा है।

भारत में सड़को का विकास

स्वतंत्रता पश्चात् भारत में सड़कों के विकास पर काफी ध्यान दिया गया।

योजना करोड़ रूपये का व्यय

1-3 वर्षीय योजना 1135

4-6 वर्षीय योजना 9295

7 वर्षीय योजना 6180

8 वर्षीय योजना 15843

9 वर्षीय योजना 17748.82

10 वर्षीय योजना 62124.94

पिछले 58 वर्षों में सड़कों की लम्बाई आठ गुनी से अधिक हो गयी है परन्तु गम्भीर बात यह है कि आज भी भारत में सड़कें अन्य देशों की तुलना में कम है। करीब 54 प्रतिशत के लगभग सड़कें कच्ची ही है। 25 दिसम्बर, 2000 से केन्द्रीय सरकार में प्रधानमंत्री सड़क योजना की शुरूआत की है जिसके अन्तर्गत 60,000 करोड़ रूपये व्यय होने का अनुमान है। इस योजना का लक्ष्य अगले तीन वर्षों में एक हजार की आबादी वाले सभी गाँवों को अगले तथा 500 की आबादी वाले हर गाँव को सात वर्षों के भीतर पक्की सड़कों से जोड़ दिया जायेगा।

भारत में सड़क परिवहन का विकास

भारत में सड़क परिवहन के प्रमुख साधनों में बैलगाड़ियों , साइकिल तथा मोटन गाड़ियों को सम्मिलित किया जाता है। जहाँ भारत में 1947-48 में 3.61 लाख साइकिलें थी वहीं आज देश में प्रतिवर्ष 197 लाख साइकिलें बनती है।

भारत में प्रथम मोटनगाड़ी 1898 में आयात की गयी जहाँ 1920-21 में 37 हजार मोटरगाड़ियाँ थी, वहीं वर्तमान में 858.96 लाख हो गयी है। 1991 के बाद उदारीकरण के साथ ही आटोमोबाइल्स क्षेत्र में उत्पादकों की संख्या बढ़ी है। पैसेन्जर कारों का बहुउपयोगी वाहनों का , वाणिज्यिक वाहनों का दुपहिया व तिपहिया वाहनों का उत्पादन करने वाली कम्पनियां यहाँ तक की ट्रैक्टर का उत्पादन करने वाली कम्पनियां विकसित होती गयी है।

1950-51 में सड़क यातायात कुल यातायात का 11 प्रतिशत माल ढोता था जो वर्तमान में बढ़कर 60 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार 2 यात्री यातायात में 1950-51 में यह 20 प्रतिशत यात्री ले जाता था जो वर्तमान में बढ़कर 80 प्रतिशत हो गया।

12.6.3 भारत में रेल परिवहन (Rail Transport in India)

पहली रेल सेवा भारत में 1853 में बम्बई से थाना तक 21 मील मार्ग का सफर तय किया था। 1 अप्रैल 1951 के प्रथम पंचवर्षीय योजना से अब तक रेल के क्षेत्र में भी काफी विकास हो गया है। तब से अब तक यात्रियों की संख्या 128 करोड़ प्रतिवर्ष से 572 करोड़ प्रतिवर्ष के ऊपर चली गयी। मालगाड़ी द्वारा ढोये जाने वाले की मात्रा 9.3 करोड़ टन से 74.5 करोड़ टन हो गयी है। लगभग 58145 करोड़ रूप्ये से अधिक की पूँजी की मात्रा भी लगायी जा चुकी है। विद्युत रेलमार्ग 388 कि.मी. से बढ़कर 17,786 कि0मी0 हो गया।

रेलवे विकास के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य (Some Important Facts Regarding Railway Development)

(1) विद्युतीकरण (Electrification)- वर्तमान में विद्युत रेलमार्ग की दृष्टि से , भारत का एशिया में दूसरा व विश्व में ग्यारहवां स्थान है। कुछ ही वर्षों में देश के प्रमुख सात मुख्य मार्गों पर विद्युतीकरण का कार्य भी पूरा हो जायेगा।

(2) इंजन (Engine)- वर्तमान में रेलवे के पास 44 भाप इंजन, 4793 डीजल इंजन व 3188 बिजली के इंजन है

(3) संदेशवाहन व्यवस्था (Messaging System)- रेलवे ने Super high frequency & Channelling System पर आधारित सूक्ष्म तरंग पद्धति (Microwave System)लागू की है जो वर्तमान में 16,000 कि.मी. रेलमार्ग पर अपनायी जा रही है।

(4) सिग्नल व्यवस्था में सुधार (Improvement in Signal System)- पहले के यन्त्रीकृत सिग्नल की अपेक्षा अब बिजली सिग्नलो के प्रयोग में लाया जा रहा है जो अधिक विश्वसनीय है।

(5) रेलों की गति में वृद्धि (Increase in Speed of Trains) - सुपर एक्सप्रेस राजधानी एक्सप्रेस जैसे सुपरफास्ट एकसप्रेस रेलगाड़ियों के चलाने से रेलों को गति मिल गयी है। अब कई हजार किलोमीटर की यात्रा भी चन्द घण्टों में पूरी की जा सकती है। 20 रेलगाड़ियाँ शताब्दी एक्सप्रेस के नाम से चलायी जा रही है। 16 इण्टरसिटी जन शताब्दी एक्सप्रस 1 जुलाई, 2002 से चलाई गयी है।

(6) रेल निर्माणक इकाईयां (Railway Manufacturing Units)- रेल परिवहन के उपकरण, इन्जनों व डिब्बों के बनाने के लिये भारत में निम्न चार प्रमुख कारखाने है जिनकी स्थापना स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही हुयी है।

१. चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, कोलकाता- 1950 में स्थापित इस कारखाने में भाप के इंजन बनाये जाते थे परन्तु अब बिजली व डीजल इन्जन बनने लगे है। वर्तमान में इसकी क्षमता लगभग 170 बिजली इन्जन व 81 डीजल इन्जन वार्षिक है।

२. इण्टीग्रल कोच फैक्टरी, पैराम्बूर (तमिलनाडु)- डब्बा बनाने से लेकर सजाने तक का काम भी इस कारखाने के सुपुर्त है। पहला डिब्बा 1955 में तथा पहला सुसज्जित डिब्बा 1975 में बनकर निकला। वर्तमान में इसकी क्षमता 1600 डिब्बे प्रतिवर्ष है।

३. इण्टीग्रल कोच फैक्ट्ररी कपूरथला

४. डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी

(7) माल परिवहन व्यवस्था में उन्नति (Advances in Freight Transportation System)- इसका भी विकास क्रमशः होता गया। शीघ्रता से माल पहुँचाने के लिये प्रमुख शहरों के मध्य सीधी 'सुपर एक्सप्रेस मालगाड़ियों'चलायी जा रही है। 1969 में 'फ्रेट फारवर्ड स्कीम'लागू की गयी है जिसके अन्तर्गत ये छोटे-छोटे सामान को एकत्रित कर रेलवे को वैगन माल के रूप में देता है।

रेल परिवहन का आर्थिक महत्व (Economic Importance of Rail Transport)

(1) कृषि का विकास (Development of Agriculture)- रेल परिवहन के विकास से अब किसान अपनी आवश्यकता के फसल के अतिरिक्त उन उत्पादों का भी उपज करता है जिसका वह निर्यात कर सकता है। जैसे- चाय, तम्बाकू, कपास आदि।

(2) नाशवान वस्तुओं की ब्रिकी (Sale of Perishable Goods)- ऐसी वस्तुओं जैसे फल , तरकारी दूध, मक्खन, घी, गन्ना, मछलियाँ आदि जो नाशवान प्रकृति की होती है, रेल द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान भेजना आसान हो गया है जिससे इनके उत्पादन एवं बिक्री में भी वृद्धि हुयी है।

(3) अकालों पर नियन्त्रण (Control Famines)- रेल विकास ने इस प्राकृतिक आपदा पर नियन्त्रण का कार्य किया है। रेलों द्वारा खाद्यान्न एक स्थान से दूसरे स्थान पर अति शीघ्र भेजना सम्भव हो गया है।

(4) मूल्यों में स्थिरता (Price Stability)- मूल्यों की विषमता को रेल का विकास ने बहुत हद तक सीमित कर दिया है। आसानी से सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने से मूल्यों की अस्थिरता पर नियन्त्रण लग गया है।

(5) उद्योगों का विकास (Development of Industries)- आज रेले कोयला , लोह-इस्पात, सीमेण्ट, जूट, सूती वस्त्र आदि उद्योगों के विकास में योगदान दे रही। कच्चे माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने से उद्योगों के विकास में सहायता मिली है।

(6) नगरों में वृद्धि (Growth in Cities)- रेलों की स्थापना एवं इनके विकास से सैकड़ों गाँव व कस्बे नगरों में परिणत हो गये है , समुद्री बन्दरगाहों का विकास हुआ है। एक ज्वलन्त उदाहरण के रूप में कानपुर का नाम लिया जा सकता है जो एक छोटा सा कस्बा था परन्तु जिसकी आबादी 27.17 लाख तक पहुँच गयी। यह रेलों के विकास के कारण ही सम्भव हो सका।

(7) डाक सेवा (Postal Service)- डाक सेवा का विकास रेल विकास पर निर्भर करता है। संदेशवाहन एवं संचार व्यवस्था में वृद्धि भी रेलों द्वारा सम्भव हो सका है।

(8) निर्यात संवर्द्धन (Export Promotion)- रेलों के द्वारा निर्यात होने वाली वस्तुएँ बन्दरगाहों के स्टेशनों तक आसानी से पहुँच जाता है।

(9) पर्यटन को प्रोत्साहन (Tourism Promotion)- रेलवे द्वारा सरकुलर टुअर टिकट बेचे जाते है जो अधिकाधिक 90 माह की अवधि के होते है। इससे रमणीक , धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक स्थानों का भी विकास हुआ है।

(10) श्रम की गतिशीलता (Mobility of Labor)- रेलों के विकास से श्रमों की गतिशीलता भी प्रभावित हुयी है जिससे उनके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

12.6.4जल परिवहन (Water Transport)

जल परिवहन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उस समय एक महत्वपूर्ण साधन था जब रेलों का जन्म भी नहीं हुआ था। उस समय वायु परिवहन का कहीं नाम भी न था। और सड़क परिवहन अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था।

जल परिवहन का महत्व (Importance of Water Transport)

(1) परिवहन का सस्ता साधन (Cheap Means of Transportation)- यह सस्ता साधन इस कारज है क्योंकि न इसमें सड़क बनानी पड़ती है न ही रेल की पटरी और न ही इन्हें कार्यशील बनाने के लिये कोई व्यय करना पड़ता है। न पहियों की आवश्यकता होती है।

(2) कम पूँजीगत व्यय (Low Capital Expenditure)- रेल मार्ग और सड़क मार्ग बनाने में लाखों का खर्च आता है जबकि जल परिवहन के लिये कोई मार्ग बनाने की आवश्यकता नहीं होती।

(3) अधिक क्षमता (More Capacity)- जलयान की भार खीचने की क्षमता रेल या सड़क परिवहन साधनों से अधिक होती है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की जननी (Mother of International Trade)- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास का सर्वप्रथम माध्यम जल परिवहन ही बना। क्योंकि अन्य साधनों से लागत तुलनात्मक रूप से अधिक आती है।

(5) राष्ट्रीय सुरक्षा (National Security)- शत्रु के देश द्वारा पुलों , रेलमार्गों व सड़क मार्गों को नष्ट किया जा सकता है लेकिन जल मार्गों को नष्ट नहीं किया जा सकता।

(6) एकमात्र साधन (Sole Means)- पहाड़ी, ढालों, घने वनों आदि स्थानों पर जल परिवहन के अतिरिक्त कोई और साधन नहीं है जिससे माल एवं यात्री एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सके।

(7) थोक ढुलाई के लिये उपयुक्त (Suitable for Bulk Transportation)- सस्ता एवं सुविधाजनक होने के कारण यह थोक ढुलाई के लिये अति उपयुक्त है। इससे समय की बचत भी हो जाती है।

(8) तटीय व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण (Important from Coastal Trade Point of View) - तटीय जल परिवहन का विकास इस बात से पुष्ट होता है कि भारत का समुद्रतटीय क्षेत्र काफी विशाल है।

(9) आर्थिक विकास (Economic Development)- देश से माल बाहर भेजा जा सकता है जिससे देश का आर्थिक विकास सम्भव हो जाता है।

आन्तरिक जल परिवहन का विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सम्भव हो सका है। वर्तमान समय में भारत 3700 कि0मी0 के लगभग आन्तरिक जल मार्ग का उपयोग करता है। यह सस्ता साधन होने के साथ-साथ कम शक्ति का प्रयोग भी करता है। भारी माल को कम व्यय में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जा

सकता है। भारी माल के साथ सामग्री भी आसानी से पहुँचाया जा सकता है। बाढ़ जैसी आपदा में यह कारगर बना रहता है। भारतीय नदियाँ चौड़ी होने के कारण बड़ी-बड़ी नावें चलायी जा सकती है। यहाँ की भूमि समतल होने के कारण नदियाँ भी समतल है।

जहाजरानी परिवहन देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में प्रमुख भूमिका निभाता है। देश का लगभग 90 प्रतिशत व्यापार समुद्री मार्ग से होता है। जहाँ पहली पंचवर्षीय योजना में देश की जहाजरानी की क्षमता 3.7 लाख GRT थी वहीं आज वर्तमान में यह 82.9 लाख हो गयी। जहाजों की संख्या भी 94 से बढ़कर 707 हो गयी।

भारत के तटवर्ती इलाकों में 12 बन्दरगाह तथा 200 छोटे बन्दरगाह है। बड़े वाले केन्द्र सरकार के और छोटे राज्य सरकार के अंतर्गत आते है।

12.6.5वायु परिवहन (Air Transport)

भारत के लिये वायु परिवहन आर्थिक , सामाजिक, राजनीतिक व सभी दृष्टिकोणें से महत्वपूर्ण एवं लाभकारी है। आधुनिक युग नवीनतम एवं क्रान्तिकारी भेंट है जिससे भौगोलिक कठिन परिस्थितियों में भी कई हजारों कि.मी. का सफर कुछ ही घण्टों में तय किया जा सकता है। वायु परिवहन का आर्थिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(1) भौगौलिक बाधाओं से मुक्ति (Freedom from Geographical Barriers)- चाहे समुद्रा हो या रेगिस्तान, बर्फीला देश हो या नदी नाले, आज भी हजारों फुट की ऊँचाई पर भारतीय सेना अपने देश के प्रहरी का कार्य कर रही है।

(2) कृषि के विकास में सहायक (Helpful in Agricultural Development)- वायु परिवहन के माध्यम से खेतों में कीटनाशक दवाइयों को छिड़ककर टिड्डियों व अन्य कीटाणुओं का नाश करता है। 1954 से भारत इस सेवा का उपयोग कर रहा है।

(3) सुरक्षा एवं शान्ति (Security and Peace)- देश की सुरक्षा के लिये वायु परिवहन एक अचूक अस्त्र की तरह है। इससे विदेशी आक्रमण रोकने के साथ-साथ दुश्मन देश को सबक भी सिखाया जा सकता है। भारत पाक युद्ध में इस परिवहन ने अपना कौशल दिखा दिया है।

(4) वाणिज्य का विस्तार (Expansion of Commerce)- बहुत ही अल्प समय में मूल्यवान नाशवान था कलात्मक वस्तुओं को देश से विदेशों में भेजना आसान हो गया है। इससे व्यावसायिक दृष्टि से लाभ प्राप्त होता है।

(5) स्वास्थ्य में सुधार (Improvement in Health)- विमान परिवहन की सहायता से दवाइयों का छिड़काव व जनसाधारण के स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सकता है।

(6) वनों की रक्षा (Protection of Forests)- जब कभी वनों में भयंकर आग लग जाय , जिसे किसी भी माध्यम से रोकना कठिन है, ऐसे में वायु परिवहन से बचाव सम्भव हो जाता है।

(7) पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहन (Promotion of Tourism Industry)- इससे सरकार को रूप्ये में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। अतः वायु परिवहन पर्यटन के माध्यम से भी आर्थिक विकास करने में सहायक है।

फेयर और विलियम्स के अनुसार ,"मनुष्य को उपलब्ध विभिन्न साधनों में वायु परिवहन सबसे नवीनतम सबसे अधिक विकासशील, सबसे अधिक चुनौती देने वाला और हमारे आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में सबसे अधिक क्रान्ति उत्पन्न करने वाला है।"

भारत में वायु परिवहन का विकास

भारत में प्रयोगात्मक उड़ाने 1919 में प्रारम्भ हुयी थी , लेकिन आधुनिक विमान परिवहन का वास्तविक शुभारम्भ 1927 में हुआ जबकि भारत सरकार ने नागरिक उड्डयन की स्थापना की। 1929 में ब्रिटेन, हॉलैण्ड एवं फ्रांस में प्रथम बार साम्राज्य वायुसेवा (Empire Air Services) के वायुयान भारत में उतरे। इसी समय इम्पीरियल एअरवेज नामक ब्रिटिश कम्पनी ने कराची व दिल्ली के बीच नियमित हवाई सेवा प्रारम्भ की।

1932- स्वदेशी सेवा, कराची व मद्रास के बीच टाटा बन्धुओं द्वारा शुरू की गयी।

1933- इण्डियन नेशनल ऐअरवेज लिमिटेड नामक एक भारतीय संस्था बनी जिसने करांची व लाहौर तक विमान सेवा प्रारम्भ की।

1935- टाटा ने बम्बई-त्रिवेन्द्रम की हवाई सेवा शुरू की।

1936- एअर सर्विसेज ऑफ इण्डिया लिमिटेड नामक एक तीसरी संस्था भारत में बनी जो 1939 में बन्द हो गयी। द्वितीय युद्ध के पश्चात 1946 में कम्पनियों को अपनी उड़ान भारत में करने के लिये अनुज्ञापन (Licence) लेना अनिवार्य हो गया।

वायु परिवहन लाइसेंस बोर्ड की स्थापना की गयी।

1947- वायुमान सेवा की 27 कम्पनियाँ थी।

1948- विमान चालक प्रशिक्षण केन्द्र इलाहाबाद में स्थापित किया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात वायु सेवा के राष्ट्रीकरण पर विचार किया जाने लगा। परिणामस्वरूप् 1953 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। दो निगमों की स्थापना हुयी-

भारतीय विमान निगम (Indian Airlines Corporation) अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय विमान निगम (Air India Intellectual Corporation)

26 जनवरी, 1981 से एक तीसरी सेवा वायुदूत के नाम से प्रारम्भ की गयी।

वर्तमान में वायु सेवा की स्थिति

आज इस क्षेत्र में सार्वजनिक एवं निजी कम्पनियाँ दोनों ही हैं।

(1) सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ (Public Sector Companies)- इण्डियन एअरलाइन्स, एअर इण्डिया के विलय से 'दि नेशनल एवियशन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड ' बनी। मुख्यालय दिल्ली तथा निगमित कार्यालय मुम्बई में है। एअर इण्डिया का शुभंकर 'महाराजा' ही इस विलय कम्पनी का शुभंकर है। इस क्षेत्र की अन्य कम्पनियाँ है- एअर इण्डिया चाटर्स लिमिटेड (AICL) तथा एलायंस एअर।

(2) निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ (Private Sector Companies)- जेट एयरवेज, सहारा एयर लाइंस , कम एवियशन, स्पाइसजेट, गो एयरवेज , किंग फिशर एयर लाइंस , पैरामाउण्ड एयरवेज तथा इण्टर ग्लोब एवियेशन (इण्डिगों) आदि। 60 प्रतिशत से अधिक ट्रेफिक अब इनके हाथ में है।

उड़ान क्लब एवं ग्लाइडिंग क्लब- इनकी संख्या 25 है जो अनियमित विमान सेवाएं उपलब्ध कराती है।

भारतीय विमान पतन प्राधिकरण (AAI) - इसका गठन 1 अप्रैल, 1995 को राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण (ANI) तथा अन्तर्राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण (IAA) के विलय द्वारा हुआ। हवाई अड्डों के रखरखाव एवं संचालन की जिम्मेदारी इस प्राधिकरण की ही है।

पंचहंस हेलीकाप्टर्स लिमिटेड- देश के दुर्गम क्षेत्रों तथा ओ. एन. जी. सी. की सागर तटीय सेवाओं, राज्य सरकारों की सेवाओं तथा विशेष रूप से उत्तर पूर्व क्षेत्र में नियमित विमान सेवाएं उपलब्ध कराता है।

हवाई अड्डे- देश में 127 हवाई अड्डे है। 15 अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे है।

विमान निर्माण-1940 में भारत में बालचन्द हरिचन्द ने हिन्दुस्तान एअरक्राफ्ट लिमिटेड के नाम से एक विमान निर्माण करने का कारखाने खोला जिसे बाद में भारत सरकार व कर्नाटक सरकार ने मिलकर ले लिया। अब हवाई जहाज की यही एक कम्पनी है जो वायु सेना एवं नागरिक उड्डयन विभाग के लिये वायुयानों का निर्माण कर रही है।

वायु परिवहन की समस्याएँ एवं सुझाव (Air Transport Problems and Suggestions)

अधिक संचालन व्यय एवं पूर्णक्षमता का प्रयोग न होने के कारण वायु परिवहन का किराया अधिक होता है। कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों के बीच समय-समय पर संघर्ष होने से हड़ताल होती है। नये विमान विदेशों से क्रय करने पर विदेशी मुद्रा कोष पर दबाव पड़ता है। भारत में अन्वेषण एवं प्रशिक्षण हेतु सुविधाएँ भी सीमित है।

सुझाव के रूप में वायुयान अपनी पूरी क्षमता का प्रयोग करे और मितव्ययिता को अपनाये दुर्घटनाएं कम करने का प्रयास करे एवं अन्वेषण और प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दे। साथ ही साथ वायुयान निर्माण कार्य में तेजी भी लाये।

12.6.6संचार (Communications)

भारत में पहली संचार सेवा 1837 में प्रारम्भ हुयी। 1854 में यहाँ 700 डाकखाने थे। इस समय 1,55035 डाकखाने है।

(1) डाकखाना (Post Office)

आम जनता के लिये डाकखाना सेवा एक आधारशिला है। पोस्टकार्ड , लिफाफा, अर्न्तदेशीय रजिस्टर्ड पत्र आदि इसके माध्यम है। प्रतिवर्ष डाकखाने से 1578 करोड़ पत्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाता है। इसके अलावा स्पीड पोस्ट, रजिस्टर्ड डाक भी होते है।

डाकखाना पत्र पत्रिकाओं आदि को हवाई जहाज , रेल, व रोडवेज की बसों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है।

सुविधा व तुरन्त कार्यवाही के लिये बड़े शहरों के लिये विशेष सुविधा देने के उद्देश्य से डाक को निम्न प्रकार में बांटा गया है-

(1) राजधानी चैनल

(2) मेट्रो चैनल

(3) ग्रीन चैनल

(4) व्यापारिक चैनल

(5) बल्क मेल चैनल

(6) पीरिओडीकल चैनल

डाकखाने के माध्यम से अपने पत्र व छोटे-छोटे माल व नमूने के पैकिट भी शीघ्रता से भेजे जा सकते है जिसके लिये डाकखाना सामान्य दर से कहीं अधिक दर वसूल करता है लेकिन साथ ही यह वायदा करता है कि पत्र मात्र 48 घण्टे या निर्धारित समय सीमा मे पहुँचा दिया जायेगा जिसके लिये निम्न सेवाएं प्रदान की रखी है।

1. स्पीड पोस्ट

2. एक्सप्रेस सेवा

3. ई-पोस्ट एवं ई-बिल पोस्ट

2. तार (Telegraph)

भारतीय तार विभाग विश्व की सबसे पुरानी सरकारी सार्वजनिक उपयोगिता है। भारत में तारघरों की संख्या जो 1951 में 8500 थी बढ़कर 30,000 हो गयी है। फोनोग्राम सेवा , टेलेक्स सेवा, प्रत्यक्ष ट्रंक डायर्लिंग, जैसे सुविधाएं अब सामान्य जनता को उपलब्ध है।

3. दूरसंचार (Telecommunication)

वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा के लिये दूरसंचार अब एक महत्वपूर्ण आदान है और इससे ही भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में सफलता प्राप्त कर सकता है। इसके द्वारा देश के कोने में संचार के लाभ पहुंचाएं जा सकते है और यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने में भी लाभदायक हो सकती है।

4. टेली संचार नीति (Telecommunication Policy)

टेली संचार आधार संरचना को उपलब्ध कराने और उसके प्रबन्ध के बारे में काफी अस्पष्टता थी। टेली संचार सेवा (Dept.Telecom Services) और टेलीसंचार क्रियाओं का विभाग दो सेवाएं उपलब्ध कराने वाले विभाग थे। MTNL (Mahanagar Telephone Negain Limited) और भारत संचार निगम लिमिटेड (Bharat Sanchar Negain ltd.BSNL) जो दिल्ली और मुम्बई में बुनियादी टेलीफोन सेवाएं उपलब्ध कराती थी ;MTNL और शेष देश में BSNL यह सेवा उपलब्ध कराती हैं।

BSNL - दूर संचार क्षेत्र के सेवा प्रदान करने वाले दो विभाग का निगमीकरण कर दिया गया है।

5. फैक्स (Fax)-

यह एक प्रकार से लिखित सन्देश प्राप्त करने या भेजने का साधन है। इसके लिये एक फैक्स मशीन की आवश्यकता होती है। जिसे टेलीफोन नम्बर से जोड़ देते है। यह मशीन सन्देश को कागज पर प्राप्त कर छाप देती

है। साथ ही भेजने वाले का टेलीफोन नम्बर , नाम, पता व समय भी लिख देती है। इसमें टेलीफोन का व्यय लिया जाता है।

6. ई-मेल (E-Mail)-

कम्प्यूटर युग में ई-मेल के द्वारा संदेश को विश्व में कहीं भी भेजा जा सकता है। इसके लिये इन्टरनेट की सुविधा होनी चाहिये। संचार का यह साधन वर्तमान में अति लोकप्रिय साधन है।

7. इण्टरनेट (Internet)-

इण्टरनेशनल नेटवर्क का संक्षिप्त नाम इण्टरनेट देश विदेश के लोग के बीच संपर्क स्थापित कर सकता है। विश्व में होने वाली कोई भी घटना को देखा जा सकता है। इण्टरनेट द्वारा विश्वभर के कम्प्यूटर सूचना केन्द्रों से प्राप्त सूचनाओं व आँकड़ों को अपनी भाषा में बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि को इण्टरनेट प्रोटोकोल कहा जाता है।

भारत में इण्टरनेट का प्रवेश वर्ष 1987-88 में हुआ था। इण्टरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में पाँचवां स्थान है।

12.6.7 बैंक, बीमा एवं वित्त (Bank, Insurance and Finance)

आधारभूत संरचना के विकास के लिये बैंकों , बीमा कम्पनियों व वित्त संस्थाओं के विकास की भी आवश्यकता होती है। पहले भारत में बैंकों का कार्य सेठ, महाजन आदि के हाथ में था किन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने पर 1809 में Bank of Bengal स्थापित की गयी। तत्पश्चात कई बैंक स्थापित की गयी जो कारखानों एवं व्यावसायों को ऋृण देती थी।

बीमा जोखिमों के दुष्परिणामों से सुरक्षा प्रदान करने की एक व्यवस्था है। भारत में इसकी शुरूआत 1710 में कोलकाता में 'सन् इन्शोरेन्स ऑफिस' के नाम से हुयी थी। यह कम्पनी अंग्रेजों की थी। भारतीयों ने अपना प्रयास में 1850 में किया।

1885 तक भारत में लगभग 50 एजेंसी कार्यालय स्थापित हो चुके थे। बाद में भारत में 1905 में स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप अनेक भारतीय कम्पनियाँ स्थापित हुयी। 1938 में बीमा अधिनियम पारित किया गया। 1971 में इनका राष्ट्रीकरण कर दिया गया। 1972 में बना दिया गया। इस निगम की चार सहायक कम्पनियां है-

(1) नेशनल इन्शोरेन्स कम्पनी लि.

(2) न्यू इण्डिया कम्पनी लिमिटेड

(3) ओरिएण्टल इन्शोरेन्स कम्पनी लिमिटेड

(4) यूनाइटेड इंडिया इन्शोरेन्स कम्पनी लि.

अब वर्तमान में नई आर्थिक नीति के तहत निजी कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश कर लिया है। अब तक 13 निजी कम्पनियो को अपना साधारण बीमा करने की अनुमति दे दी गयी है।

12.7आधार संरचना में निजी निवेशः दृष्टि और भविष्य (Private Investment in Infrastructure: Vision and Future)

भारत सरकार ने यह बात स्वीकार कर ली है कि आधार संरचना को सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार बनाने की जरूरत नहीं। आधार संरचना की सुविधा को उपलब्ध कराने का दायित्व सरकार पर था क्योंकि

भारी पूँजी निवेश लम्बी परिपाक अवधि , उच्च जोखिम और निवेश पर निम्न प्रत्याय दर सरकार के माध्यम से सम्भव है। किन्तु सरकार के स्वामित्वाधीन आधारसंरचना अत्यन्त अकुशल और भ्रष्ट साबित हुयी।

आधार संरचना की माँग इनके संभरण से कहीं अधिक हैं। इसी कारण आधारसंरचना की क्षमता में दोष और अकुशलताएं व्यापक रूप धारण कर गयी है। सड़कों पर भीड़ पेयजल की असुविधा , पावर की विफलता रोजमर्रा का अनुभव बन गयी है। आधार संरचना के अभाव का आने वाले वर्षों में देश के अधिक विकास पर प्रभाव पड़ना निश्चित है।

1991 के पश्चात सरकार की रणनीति कुशल आधोसंरचना के विकास को उच्च प्राथमिकता देती है और इसके लिये एक अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहती है। इससे निजी क्षेत्रों का सहयोग अधोसंरचना विकास में बढ़ सका।

1997 में सरकार ने भारतीय कम्पनी अधिनियम के आधीन आधारसंरचना विकास वित्त कम्पनी की स्थापना की। ऐसी कम्पनियाँ जो आधार संरचना सुविधाओं के विकास एवं परिचालन का कार्य करती है , को कर अवकाश प्रदान किया गया। संलग्न कम्पनियों को आयकर में छूट भी प्रदान की गयी। सरकार ने आधार संरचना कम्पनियों को हिस्सों एवं ऋणपत्रों को निवेश पर कर कटौती की सीमाएं बढ़ा दी है।

आधार संरचना में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने हेतु देशीय पूँजी बाजारों का विकास अनिवार्य हैं। विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिये विदेशी हिस्से पूँजी के सहयोग के लिये 74 प्रतिशत तक स्वचालित स्वीकृति देने की इजाज़त दे दी है।

आधार संरचना के वाणिज्यिीकरण पर विशेषज्ञ दल ने प्रत्येक आधार संरचना क्षेत्र के लिये स्टॉक स्क्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया की भाँति एक स्वायत्त विनियामक संस्था की स्थापना का सुझाव दिया है।

योजना आयोग ने खुले रूप में यह बात स्वीकार कर ली है कि भारत के आर्थिक विकास में आधारसंरचना का अभाव एक मुख्य सीमा बंधन है। औद्योगिक विकास के लिये पावर क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसकी वास्तविक समस्या वितरण प्रणाली है जो राज्य सरकारों के हाथों में है। सार्वजनिक निजी साझेदारी आधार संरचना के निर्माण और कार्य प्रचालन का बेहतर ढ़ंग माना जाता है। वे निजी पूँजी को सार्वजनिक आधार संरचना और सेवाओं को प्रयोक्ताओं की उपलब्धि में कुशलता प्रोन्नत करने में महत्वपूर्ण लाभ देते है।

12.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) ICICI की स्थापना कब हुयी?

क. 1990 ख. 1995

ग. 1996 घ. 2000

(2) IDBI एवं EXIM बैंक की स्थापना कब हुयी?

क. 1962 - 1980 ख. 1964 - 1982

ग. 1966 - 1984 घ.1968 - 1986

(3) ऊर्जा आयोग की स्थापनी कब हुयी?

क. 1981 ख.1982

ग. 1983 घ.1984

(4) राजधानी एक्सप्रेस कब से चलनी शुरू हुई?

क. जनवरी 1969 ख. फरवरी1969

ग. मार्च 1969 घ.दिसम्बर 1969

(5) 16 इण्टरसिटी जन शताब्दी एक्सप्रेस किस वर्ष से चलाई गयी है।?

क. 1 जुलाई, 2000 ख. 1 जुलाई, 2002

ग. 1 जुलाई, 2006 घ. 1 जुलाई, 2005

12.9 सारांश(Summary)

कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये आधार संरचना का विस्तार करना आवश्यक है। औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति के कारण परिवहन एवं संचार क्रान्ति फलीभूत हुयी। जहाँ ऊर्जा का स्त्रोत पहले कोयला, बाद में तेल और विद्युत हुआ वहीं वित्त जुटाने के लिये बैंकिंग , बीमा एवं अन्य वित्त संस्थानों का भी विकास होता गया।

आधारभूत संरचना की उपलब्धता मात्र शहरों एवं नगरों में ही उपलब्ध है और गाँवों में इनका विकास तुलनात्मक दृष्टि से नहीं हो सका। इसी कारण जनसंख्या का पलायन गाँवों से शहरों की ओर हो रहा है और परिणामस्वरूप शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रहीं है। प्रत्येक देश अपनी आर्थिक योजनाएं बनाते समय शक्ति संसाधनों के विकास पर विशेष जोर देता है। कोयला को ईंधन का बादशाह माना जाता है। किसी भी देश का आर्थिक विकास विद्युत शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। विकसित देशों की तीव्र विकास के पीछे विद्युत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।खनिज तेल एक अत्यंत उपयोगी संसाधन है। किसी भी देश का औद्योगिक विकास, प्रतिरक्षा, व्यवस्था व परिवहन साधनों की उन्नति इस पर निर्भर होती है। परमाणु शक्ति के विकास की परम आवश्यकता है क्योंकि देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में सस्ती शक्ति की जरूरत होती है।

परिवहन से कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि , विविधकरण एवं विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे व्यापार का ही विस्तार नहीं होता बल्कि मूल्यों में भी स्थिरता आती है। देश की सुरक्षा एवं रक्षा को बढ़ावा मिलता है एवं सरकारी आय भी बढ़ती है। डाकखाना पत्र पत्रिकाओं आदि को हवाई जहाज , रेल, व रोडवेज की बसों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है। इसके अलावा तार , दूरसंचार, टेली संचार नीति, फैक्स, ई-मेल, इण्टरनेट आदि भी संचार के माध्यम है। आधारभूत संरचना के विकास के लिये बैंकों, बीमा कम्पनियों व वित्त संस्थाओं के विकास की भी आवश्यकता होती है।योजना आयोग ने खुले रूप में यह बात स्वीकार कर ली है कि भारत के आर्थिक विकास में आधारसंरचना का अभाव एक मुख्य सीमा बंधन है।

12.10 शब्दावली(Glossary)

परम्परागत साधन (Traditional Source)

निगम (Corporation)

विद्युतीकरण (Electrification)

खनिज तेल (Mineral Oil)

आवागमन (Movement)

12.11 अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर(Answer for Practice Questions)

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. ख. 1995, 2. ख. 1964 - 1982,
3. क. 1981 4. ग.मार्च 1969, 5. ख. 20 वां

12.12 सन्दर्भग्रन्थसूची(Bibliography)

डॉ. जे.पी. मिश्रा- संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन्स , आगरा 2012
दत्त एवं सुन्दरम- भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चंद पब्लिकेशन्स, नईदिल्ली, 2012
एल.एन. कोली- भारतीय अर्थव्यवस्था लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा 2007
कुमार सर्वेश-भारतीय अर्थव्यवस्था, सार्थकप्रकाशन,दिल्ली, 2011
डा. जे. सी. पन्त एवं जे. पी. मिश्रा - अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
डा. टी.टी. सेठी - समष्टि अर्थशास्त्र

12.13 सहायक या उपयोगी सामग्री (Helpful Text)

Arvind Panagariya: The Emerging Giant

Bimal Jalan : India's Economic Policy: Preparing for the Twenty-First Century Penguin Books India , 2000

Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India's New Economic Policy: Taylor &Francis US, 2010

Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952

R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis

Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India

Singh, S.P. (2010) Economics of Development & Planing theory & practice, S&Chand Publishing House

Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons

Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya

12.14 निबन्धात्मकप्रश्न(Essay Type Questions)

1. अधोसंरचना से क्या अर्थ है? इसके विकास के बारे में बताइये?
2. भारत के परिवहन संसाधनों की व्याख्या कीजिये?
3. निम्न पर टिप्पणी कीजिये

क. संचार संसाधन ख. वायु परिवहन संसाधन